अलकापुरी

लेखक
साहित्य शिरोमणि श्रीमन् राजा चक्रधरसिंह
(रायगढ़ नरेश)

प्रकाशक
पं० लक्ष्मणप्रसाद मिश्र
साहित्य समिति, रायगढ़

प्रथम संस्करण

मूल्य रु० ४.००

मैसर्स के० सी० त्रिवेदी एन्ड कम्पनी

पब्लिशर के लिए

शारदाप्रसाद खरे ने

हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग में छापा

तथा

साहित्य समिति, रायगढ़ ने

प्रकाशित किया ।

अलकापुरी

पहला परिच्छेद

धूप की तपन, लम्बी यात्रा तिस पर दो दो आदमियों का बोझ! बहादुरसिंह का घोड़ा बिलकुल थक चुका था। वे स्वयं पसीने से लथ-पथ हो रहे थे। केलो नदी के तट पर वन्य-तरुमालाओं की घनी छाया के नीचे कुछ देर विश्राम कर लेने के लिए उनका मन मचल पड़ा। पवन देव ने सहानुभूति पूर्वक नन्हीं नन्हीं टहनियों को झुला कर इस श्रान्त पथिक की थकावट दूर करने का उपक्रम किया।

हाथ का सहारा देकर बहादुरसिंह ने अचेत दस्यु को घोड़े से नीचे उतारा। घोड़े को एक झुकी हुई डाल से बाँध कर वे अपने इस रहस्यपूर्ण क़ैदी की तलाशी लेने लगे। उसकी जेब में एक लिफाफा यत्न पूर्वक रक्खा हुआ था। बहादुरसिंह ने कौतूहल

पूर्वक लिफाफा खोल कर एक छोटा-सा पत्र बाहर निकाल लिया। उसमें लिखा था:—

"इन्दुशेखर,

यद्यपि तुमने मेरा बहुत कुछ अपकार किया है—और तुम्हारी करतूतें क्षमा करने योग्य नहीं हैं—फिर भी यदि तुम 'नीले सन्दूक वाली अमूल्य वस्तु' मुझे लौटा दो तो तुम्हें इस दस्यु कारागार से छुट्टी मिल सकती है। नहीं तो स्मरण रखना, जीवन भर तुम्हें सूर्यदेव के दर्शन न हो सकेंगे। एक बात तुम्हें जनाये देता हूँ, इस समय मुझे केलो तटवर्ती उस छोटे-से गाँव का रहने वाला एक साधारण सैनिक न समझना, और न इस दस्यु-दल का एक मामूली डाकू! इस समय मेरे हाथ में शक्ति है। तुम्हें यह सुन कर आश्चर्य होगा—और शायद दुःख भी—कि जिस 'अलकापुरी' का रहस्य जानने के लिए तुमने बरसों सिर खपाया उसकी कुंजी इस समय मेरे पास है। और तुम्हें जब चाहूँ सहज ही रसातल पहुँचा सकता हूँ मैं समझता हूँ कि अब तुम सीधे रास्ते पर आना स्वीकार कर लोगे।

तुम्हारा वही

मोती बाग का माली।"

बहादुरसिंह ध्यान पूर्वक इस पत्र को बड़ी देर तक पढ़ते रहे। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उनकी समझ में न

आता था कि यह पत्र किसके प्रति लिखा गया है। 'मोती बाग' और 'नीला सन्दूक' ये दो शब्द उन्हें परिचित जान पड़े। उन्हें स्मरण हो आया भानुपुर में एक बार विक्रमसिंह ने मेघसिंह को 'मोती बाग वाले नीले सन्दूक' का संकेत करके चिढ़ाया था। उस समय उपेक्षा के साथ उन्होंने दोनों को फटकार कर चुप कर दिया था। आज इस पत्र में उन्हीं शब्दों की चर्चा पढ़ कर उनका हृदय कौतूहल से भर गया। वे हैरान थे कि मोती बाग का माली इस पत्र का लेखक यह कौन सा विचित्र पुरुष है और 'अलकापुरी' से इसका क्या सम्बन्ध है। वे अच्छी तरह जानते थे कि महाराज वीरसिंह ने कुमारी चन्द्रावती के विवाह के लिए 'अलकापुरी' के तिलिस्म से कोहेनूर नामक हीरा लाने की शर्त रक्खी है। यदि इस दस्यु का सचमुच ही 'अलकापुरी' से कोई घनिष्ठ सम्बन्ध है तो निस्सन्देह यह कोई रहस्यपूर्ण व्यक्ति है। बड़ी देर तक वे उस पत्र को पढ़ते रहे। अनेक प्रकार के विचार उनके मानस-पटल पर अंकित होने लगे। सहसा उन्हें ध्यान आया कहीं दस्युदल के उस श्वेतभवन का भी 'अलकापुरी' के तिलिस्म से कोई सम्बन्ध तो नहीं है? उन्हें अपना अनुमान सत्य सा जान पड़ने लगा। क्षणभर में ही डाकू सरदार के संन्यासी सहित कुएँ में अन्तर्धान होने, फिर श्वेत भवन में संन्यासी के प्रगट होने और अन्त में झाड़ी के भीतर से अनायास ग़ायब होजाने आदि की घटनाएँ उनकी आँखों के सामने

नाच गयीं। उन्हें निश्चय हो गया कि इन रहस्यपूर्ण घटनाओं की तह में अवश्य ही कोई तिलस्मी करामात है। वे डाकुओं के इस अड्डे का भेद जानने के लिए उत्सुक हो उठे। बड़ी देर तक वे इसी उधेड़बुन में पड़े रहे पर उन्हें कोई राह न सूझती थी। मोतीबाग के माली के पास भी उन्हें कोई और उल्लेख योग्य सामग्री न मिल सकी। वे मन ही मन कुछ गुनगुनाते हुए केलो नदी के तट पर टहलने लगे। सहसा उनके मन में न जाने क्या विचार उठा, वे इस रहस्यपूर्ण दस्यु को फिर पूर्ववत घोड़े की पीठ पर लाद कर एक ओर चल दिये।

अभी वे लगभग एक फर्लाङ्ग गए होंगे कि उन्हें पत्तों की खड़खड़ाहट का सा शब्द सुनाई दिया उन्होंने घूम कर पीछे की ओर देखा, पर कहीं कोई न दिखाई दिया। लापरवाही के साथ उन्होंने अपने घोड़े को फिर आगे की ओर बढ़ाया। क्षणभर बाद फिर वही शब्द! पर इस बार उन्हें ऐसा जान पड़ा मानों किसी ने सावधानी के साथ, पत्तों की चरमराहट को बचाते हुए पैर बढ़ाने का प्रयत्न किया हो। वे सशंक होकर चारों ओर देखने लगे। उन्हें सन्देह हुआ कि कहीं दस्यु-दल का कोई गुप्तचर ही तो उनका अनुसरण नहीं कर रहा है!

पलक मारते बहादुरसिंह ने अपना कर्तव्य स्थिर कर लिया। घोड़े को रोक कर वे झटपट नीचे उतर पड़े और सावधानी के साथ दस्यु को भी उतार कर उन्होंने एक झाड़ी के पास लिटा

दिया। उसके वस्त्रों को एक तरल औषधि से सींच कर वे, वृक्षों की आड़ में मानों इधर-उधर किसी को खोजते हुए, कुछ दूर निकल गये।

लगभग आधा घंटा के बाद उन्होंने देखा एक विशालकाय पुरुप चेहरे पर काली नक़ाब डाले बड़ी सावधानी के साथ उसी झाड़ी की ओर अग्रसर हो रहा है जहाँ उन्होंने दस्यु को लिटाया था। अपना अनुमान सत्य होते देख कर मानों बड़ी तत्परता के साथ किसी को खोजते हुए वे कुछ और दूर निकल गए। सहसा एक धमाके की आवाज़ सुनाई दी। बहादुरसिंह झटपट अपने शिकार के निकट आ पहुँचे उन्होंने देखा मोतीबाग़ के माली के पासही एक नक़ाब पोश औंधा पड़ा है। अपनी सफलता पर वे फूले न समाते थे। निकट पहुँच कर उन्होंने इस नवागन्तुक की नक़ाब उलट दी। उनके सामने वही डाकू सरदार बेसुध पड़ा था उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। बड़ी देर तक वे ध्यान पूर्वक डाकू सरदार की ओर देखते रहे। सहसा उन्हें श्वेत भवन का भेद जानने का एक उपाय सूझ पड़ा, उन्होंने डाकू सरदार से कई घंटे के लिए निश्चिन्त होकर उसे यत्न पूर्वक एक झाड़ी के भीतर सुला दिया। इसके बाद अपने चेहरे को कई प्रकार के रंगों से रँग कर स्वयं डाकू सरदार बन बैठे।

सन्ध्या होने में अब थोड़ी ही देर रह गई थी। मोती बाग़ के माली को घोड़े की पीठ पर लाद कर वे वेग पूर्वक उसी

सूखे कुएँ की ओर अग्रसर हुए जिसमें उन्होंने संन्यासी समेत डाकू सरदार को कूदते हुए देखा था। उन्होंने अनुमान के सहारे समझ लिया कि सूखा कुआँ उस स्थान से लगभग पन्द्रह मील की दूरी पर होगा। कई घड़ी रात बीतते तक वे अपना घोड़ा उसी ओर फेंकते हुए चले गए। सूखे कुएँ से लगभग एक मील के अन्तर तक पहुँचने पर उन्होंने घोड़े की चाल धीमी कर दी। आकाश की ओर देखते हुए वे घोड़े से नीचे उतरे और हाथ के सहारे मोतीबाग़ के माली को भी उतार कर उसे चैतन्य करने का प्रयत्न करने लगे। थोड़ी ही देर में दस्यु आँखें मलता हुआ उठ बैठा। सामने ही डाकू सरदार को देख कर उसके आश्चर्य की सीमा न रही। कई क्षणों तक अवाक् होकर वह सरदार की ओर घूर घूर कर देखता रहा। अकस्मात् उसके मुख से निकल पड़ा "हैं, मैं कहाँ हूँ और वह संन्यासी? मैं अपने सामने सरदार को ही देख रहा हूँ अथवा कोई स्वप्न?" बहादुर सिंह ने कुछ झिड़कते हुए कहा "कभी कभी तुम बड़ी नादानी कर बैठते हो। तुम्हें उस दुष्ट ऐयार से उलझने की क्या जरूरत पड़ी थी?" दस्यु ने आश्चर्य-चकित होकर घबराए हुए स्वर में कहा:—"कैसा ऐयार! मैं तो कुछ नहीं जानता!"

बहादुर सिंह ने कुछ रोष प्रकट करते हुए पूछा "तब फिर तुम इतनी देर तक कहाँ थे?"

दस्यु ने कुछ विचार करते हुए उत्तर दिया—"मैं कुछ नहीं

जानता। मैं तो संन्यासी को लेकर अड्डे पर गया था। संन्यासी को वहीं छोड़ कर मैं कुछ देर के लिए सुरंग के भीतर लौटा, पर जब मैं फिर अड्डे पर गया तो संन्यासी वहाँ नहीं था मकान का बाहरी ताला खुला पड़ा था। मैं घबराया हुआ बाहर निकला। पर कहीं कोई न दिखाई दिया। सारा समाचार आपको सुनाने के लिए मैंने भीतर लौटना चाहा। पर दरवाजे पर ही न जाने कैसी तेज़ दुर्गंध सी आ रही थी, मैं बेसुध होकर गिर पड़ा। और इसके बाद अभी आँखें खोल रहा हूँ।" बहादुरसिंह ने आँखें चढ़ा कर कहा, "तब यह कहो कि संन्यासी भी हाथ से निकल गया।" दस्यु ने सिर झुका लिया। कुछ देर विचार-मुद्रा धारण किये रहने के बाद बहादुरसिंह गम्भीर होकर कहने लगे, "देखो हमें अब बहुत सावधान रहना चाहिए। जान पड़ता है हमारे अड्डे पर किसी दुष्ट अय्यार की दृष्टि पड़ गई है और वह न जाने क्यों हाथ धोकर हम लोगों के पीछे पड़ गया है। मैंने तुम्हें अभी थोड़ी ही देर हुए एक झाड़ी के पीछे पड़ा हुआ पाया था। दुष्ट अय्यार तुम्हें झाड़ी के पीछे छिपा कर कहीं गया हुआ था इसी बीच संयोग वश मेरी दृष्टि तुम्हारे ऊपर पड़ गई। खैर हुई, नहीं तो वह धूर्त न जाने कौन सा उत्पात कर बैठता अब यहाँ हम लोगों का अधिक देर तक ठहरना उचित नहीं है। रात बहुत बीत चुकी है यहां से हमारा गुप्त पथ समीप ही है। अधिक विलम्ब किए बिना हमें अड्डे पर चलकर देखना

चाहिए, कहीं यह धूर्त अय्यार कोई दूसरा झमेला न खड़ा कर दे।"

दोनों घोड़े की पीठ पर चढ़ कर सूखे कुएँ की ओर अग्रसर हुए। देखते ही देखते घोड़ा एक घने जंगली बगीचे के पास जा पहुँचा। घोड़े से उतर कर बहादुरसिंह ने उसे एक निकटवर्ती वृक्ष से बाँधते हुए आदेश-सूचक स्वर में कहा "तुम चलकर द्वार खोलो मैं घोड़े को बाँध कर अभी आया" "दस्यु छलाँग मार कर कुएँ के भीतर जा पहुँचा। सहसा बहादुरसिंह को किसी के बोलने का सा शब्द सुनाई दिया। उन्हें ऐसा जान पड़ा मानों बगीचे के दूसरे किनारे पर दो व्यक्ति धीरे धीरे बातचीत कर रहे हों। एक बार उनकी इच्छा हुई कि चलकर इन लोगों का भेद लें पर समय न था डाकुओं के अड्डे का रहस्य जानने का अवसर वे हाथ से न जाने देना चाहते थे। वे नहीं जानते थे कि रात्रि के अन्धकार में इस प्रकार एक निराली जगह बैठकर बातचीत करने वाले व्यक्ति और कोई नहीं संन्यासी और कर्णसिंह थे। क्षण भर विचार करने के बाद वे दस्यु के पीछे ही पीछे सूखे कुएं के भीतर कूद पड़े। दस्यु द्वार खोले हुए उनकी प्रतीक्षा कर रहा था बहादुरसिंह ने दस्यु का अनुसरण करते हुए उस सुरंग के भीतर प्रवेश किया जिसका परिचय पाठक पिछले किसी परिच्छेद में पा चुके हैं। कुछ ही पग बढ़ने के बाद बहादुरसिंह ने देखा द्वार एकाएक बंद हो

गया; साथ ही उन्हें ऐसा जान पड़ा मानो कुएँ के भीतर एक धमाके का शब्द हुआ। दस्यु ने चौंक कर बहादुरसिंह की ओर देखते हुए कहा, "हैं! यह शब्द कैसा!" बहादुरसिंह भी आश्चर्य चकित हो रहे थे। तो भी उन्होंने, मानों कुछ उपेक्षा के साथ उत्तर दिया, "जान पड़ता है कोई हम लोगों का पीछा कर रहा है।" दस्यु ने संतोष पूर्ण स्वर में कहा, "द्वार बन्द हो चुका है इस लिए कोई चिन्ता की बात नहीं।" उस ओर से ध्यान हटा कर दोनों आगे बढ़े। बड़ी देर तक इस अँधेरी सुरंग में चलते रहने के बाद बहादुरसिंह दस्यु के साथ साथ चट्टानों से घिरी हुई चौकोर घाटी में जा पहुँचे। बहादुरसिंह बड़ी सावधानी के साथ प्रत्येक स्थल का निरीक्षण कर रहे थे। घाटी इस समय बिलकुल सूनी थी। परन्तु अनेक तेज़ बत्तियों के प्रकाश से आलोकित हो रही थी। बहादुरसिंह के मन में रह रह कर विचार आता था कि कहीं किसी विपत्ति में न फँस जायँ। कुएँ के भीतर होने वाला धमाके का शब्द अब तक उनके कानों में गूँज रहा था।

उनकी समझ में न आता था कि इतनी रात बीते उस निर्जन बगीचे में बैठ कर बात चीत करने वाले व्यक्ति कौन थे? शायद उन्हीं में से कोई कुएँ के भीतर कूदा हो! पर रात्रि के भयानक अंधकार में इस प्रकार का साहस करना सहज नहीं है। तब कहीं डाकू-सरदार ने ही तो उनका अनुसरण नहीं किया?

नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। यदि कुएँ में कूदने वाला व्यक्ति डाकू-सरदार होता तो वह अब तक रुका न रहता। जो हो, अब तो धैर्य पूर्वक सब प्रकार की विपत्तियों का सामना करना ही पड़ेगा।

बहादुरसिंह अनेक प्रकार की चिन्ताओं में पड़े ही हुए थे कि उनसे पथ-प्रदर्शक दस्यु ने नम्रता पूर्वक पूछा, "सरदार इस समय विश्राम करेंगे अथवा अभी श्वेत भवन वाले अड्डे का निरीक्षण करेंगे?"

बहादुरसिंह ने गम्भीर होकर उत्तर दिया—"जिसके घर में शत्रु घुसे हों उसे विश्राम कब सूझता है? मैं अभी श्वेत भवन चल कर अपने सन्देह की निवृत्ति करना चाहता हूँ।" दस्यु अब तक सहमा सा हुआ था। उसी की असावधानी से संन्यासी हाथ से निकल गया था। उसके इस अक्षम्य अपराध ने उसका मस्तक झुका दिया था। सरदार का आदेश पाकर वह घाटी की पश्चिमी चट्टान के समीप जा पहुँचा और न जाने किस युक्ति से दीवार में एक छोटी सी खिड़की निकाल कर सरदार की ओर देखने लगा। बहादुरसिंह उसका तात्पर्य समझ कर द्वार की ओर अग्रसर हुए। दोनों ने क्रमशः भीतर प्रवेश किया। इस बार भी दस्यु आगे आगे चल रहा था और बहादुरसिंह उसका अनुसरण कर रहे थे। लगभग घंटा भर तक अनेकों द्वार खोलते बन्द करते तथा अनेकों कमरों और सुरंगों को पार करते हुए

दोनों बढ़ते गये। अन्त में कई सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद दस्यु ने कोई विचित्र सा यंत्र दबा कर ऊपर का एक पत्थर हटा दिया। बहादुरसिंह ने देखा कि वे श्वेत भवन की पश्चिमी दालान में आ निकले हैं। दस्यु बिना कुछ कहे सुने मुख्य द्वार की ओर चला गया, और क्षणभर बाद लौट कर बोला–"द्वार पहले की भाँति बन्द है। कहीं......"।

दस्यु अभी वाक्य पूरा भी न कर पाया था कि सहसा श्वेत भवन के दक्षिणी भाग से कुछ घड़घड़ाहट का सा शब्द आता सुनाई दिया। बहादुर सिंह अभी कुछ कहना ही चाहते थे कि दस्यु यकायक घबराए हुए स्वर में बोल उठा-"आप यहीं ठहरें सरदार, मैं अभी आया।" कहता हुआ दस्यु वेगपूर्वक श्वेतभवन के दक्षिणी भाग की ओर लपका, और देखते ही देखते एक कमरे में जा कर अन्तर्द्धान हो गया। बहादुरसिंह उसके इस व्यवहार से आश्चर्य-चकित हो, क्षण भर ठिठक कर उसी ओर देखते रहे। पर अधिक देर तक वे अपने कौतूहल को दबा कर न रख सके और विलम्ब किये बिना वे भी तेजी के साथ उसी कमरे की ओर अग्रसर हुये।

कमरे के दूसरे छोर पर एक छोटी सी खिड़की खुली हुई थी। बहादुरसिंह ने खिड़की से झाँक कर बाहर की ओर देखा। एक विस्तृत प्राङ्गण में बना हुआ एक छोटा सा तालाब था।

चन्द्रमा के क्षीण प्रकाश में बहादुरसिंह ने देखा दस्यु तालाब में कूद पड़ने के लिये अपने कपड़े समेट रहा है। उनके कौतूहल की सीमा न रही। तीर की भाँति खिड़की से कूद कर वे दस्यु की ओर लपके। पर उनके पहुँचते न पहुँचते दस्यु उनकी ओर ध्यान दिये बिना तालाब में कूद पड़ा।

पल भर में ही बहादुरसिंह ने भी एक छलाँग भर कर दस्यु का अनुसरण किया।



"पल भर में ही बहादुरसिंह ने भी एक छलाँग भर कर दस्यु का अनुसरण किया।"

दूसरा परिच्छेद

पाठक ! चलिये ज़रा काननपुर राज्य की भी सैर कर लीजिये। यहाँ के विचित्र मनुष्य, विचित्र स्त्रियाँ, विचित्र वेष-भूषा, विचित्र रीति नीति, विचित्र प्राकृतिक दृश्य सभी आकर्षक और मनोरंजक जान पड़ेंगे। यह राज्य अजयगढ़ से बहुत दूर उत्तर की ओर समतल पहाड़ियों पर स्थित है। इसकी राजधानी का दुर्गम दुर्ग गढ़ पर्वत पर बना हुआ है। गढ़ पर्वत "यथा नाम तथा गुणः" है। जान पड़ता है कि निसर्ग ने स्वयम् ही इसे एक गढ़ का रूप देकर खड़ा कर दिया है। अन्य पर्वतमालाओं से घिरा हुआ परन्तु साथ ही सबसे अलग अकेला ऊँचा उठा हुआ यह पर्वत किसी महामुनि के समान जान पड़ता है। चारों ओर खड़ी चट्टानों और केवल एक ओर पतली पगदण्डी से संशोभित होकर विहंगों के कलरव द्वारा मानों यह अपनी अभेद्य अवस्था का उच्च स्वर से उद्घोषण कर रहा है। ऊपर भाँति भाँति के वृक्ष गर्व से मस्तक ऊँचा

किये हुये खड़े हैं। उनसे लिपटी हुई लतायें वन्य गार्हस्थ्य का परिचय दे रही हैं। सहस्र सहस्र पुष्प-प्यालों में सौरभ का आसव भर भर कर दोनों एक दूसरे के सामने उपस्थित हैं। दोनों तो मस्ती में झूम ही रहे हैं परन्तु दोनों के पल्लव-करों से जो रस छलका पड़ रहा है वह पशु पक्षियों को भी मस्त किये दे रहा है।

प्रकृति की इस सुरम्य क्रीड़ा-भूमि में बड़े ही भद्दे घरों की एक बस्ती बसी हुई है। मोटी मोटी बेढंगी दीवारें! उन पर बड़ा ही बेहूदा टेढ़ा मेढ़ा फूस का छप्पर। खिड़कियों का कहीं नाम नहीं। और खिड़कियों के समान ही छोटा प्रधानद्वार! कहीं कहीं तो बस भृंगी कीट के घरौंदे के समान स्तूप सदृश अर्द्धगोलाकार मिट्टी का ढेर और उसमें एक खिड़कीनुमा दरवाज़ा। बस ऐसे ही घरों से काननपुर राज्य की राजधानी बसी हुई थी। कहीं अद्भुत चहार दीवारी थी तो कहीं ऊँचे ऊँचे खंभे गड़े हुये किसी अदृश्य देवता का परिचय दे रहे थे। कहीं पूजा के स्थान पर रक्त की नदी बह रही थी तो कहीं भोजनालय से सुरा के पनारे निकल रहे थे। अनेक प्रकार की दुर्गन्धियों को पार करने के बाद कोई राज-द्वार तक पहुँच सकता था। राज-भवन भी बस देखने ही लायक़ था। उसे राज-भवन कहें या किसी आखेट प्रिय राजा की जंगली घुड़साल! लम्बे लम्बे कोठे यहाँ से वहाँ तक फैले हुए थे। किसी

में अन्न था तो किसी में अस्त्र-शस्त्र! कहीं शराब के मटके थे तो कहीं मांस के लिए महिष अज और मेष बंधे हुए थे। मुर्गियों ने बीट देकर सम्पूर्ण आँगन चितकबरा कर दिया था। दीवारों से प्राचीनता की परिचायक एक बास सी उठ रही थी। घर में अनेक सर्प कुलों ने संभव है अपने नाती पन्ती तक देखने का सौभाग्य प्राप्त कर लिया हो।

इसी भव्य अथवा भयावह भवन में राज्य की रानी ताड़का देवी निवास करती थीं। और इसी के पास ही किन्तु इससे कुछ छोटे भव्य भवन में यहाँ के दीवान दिग्गज दलनसिंह जी रहा करते थे। श्रीमती रानी साहिबा शायद लगभग पचीस वर्ष की होंगी। परन्तु वे अब तक अविवाहित थीं। उनके धर्म-पुरोहितों—वैगों—को यह अभीष्ट नहीं था कि उनकी रानी के सिवा कोई और पुरुष राजा बनकर उनपर आधिपत्य करे। इसीलिए कई बार अनेक मुर्गे बकरे और मेढ़े प्रसाद रूप में पाकर तथा देवावेश के नाट्य में ज़मीन तक सिर हिला हिला कर भी उन्होंने बहुत समय तक यह नहीं बताया था कि अमुक अथवा अमुक मनुष्य से ताड़का देवी का सम्बन्ध स्थापित हो जाना उत्तम होगा। ताड़का देवी के माँ बाप उसके बाल्यकाल ही में पितृलोक-वासी हो चुके थे। बूढ़े दिग्गजदलन पर ही उनके लालन-पालन का भार था। कुटुम्ब में और कोई नहीं था। दिग्गजदलन भी

दूर के कुटुम्बी से ही थे। इसलिए उन्होंने ताड़का को अपनी ही कन्या के समान पाल-पोस कर बड़ा किया था। ताड़का— युवती ताड़का—बहुत दिनों तक तो शान्त रही इसके बाद एक दिन निश्छल भाव से उन्होंने दिग्गजदलन के समक्ष कह ही दिया कि वे एक न एक दिन किसी न किसी के घर बैठ जाना चाहती हैं। अब दिग्गजदलन को भी चिन्ता हुई। इसलिए नहीं कि ऐसा घर बैठना किसी तरह अनुचित है, क्योंकि यह प्रथा तो काननपुर राज्य में भलीभाँति प्रचलित थी; बल्कि इसलिए कि ऐसा हो जाने से फिर राज्य की क्या अवस्था होगी और बैगा लोग क्या कहेंगे। बस रात भर सोच विचार के उपरान्त उन्होंने बैगा लोगों की एक बड़ी सभा कराने का निश्चय कर लिया।

दूसरे ही दिन इधर उधर धावन दौड़ाए गए। नियत समय पर पशुमेध यज्ञ की पूरी तैयारी के साथ बैगा लोगों की सभा प्रारंभ हुई। पहिले तो उस अगाध कूप में घी गुड़ की धुनी दी गई जो कहा जाता है, पितर लोक तक चला गया है और जिससे निकल निकल कर पितर लोग रात्रि में अपने अपने बच्चों को देखने के लिए अपने अपने घरों को जाया करते हैं। फिर उस दरवाजे की पूजा हुई जो कहा जाता है कि किसी असंख्य सुवर्णराशि से भरे हुए तहखाने का सिंहद्वार है। फिर इतना हो चुकने पर क्रम क्रम से सब देवी देवताओं का आवाहन हुआ। पहिले बूढ़ा

देव के नाम आहुति दी गई। धुवें का ज़ोर बढ़ने ही एक बैगा मस्त होकर झूमने लगा और चिल्ला चिल्लाकर कहने लगा "हूँ हूँ, मैं बूढ़ा देव, हूँ हूँ हूँ" आदि। फिर आहुतियाँ पड़ीं। कोई मरी माता के नाम, कोई पहड़िया देव के नाम, कोई इमली देवता के नाम कोई बाघराज के नाम और कोई लोमड़ी माता के नाम। अब विभिन्न ढंगों पर अनेक बैगे अपना अपना सिर और धड़ हिलाने लगे और किसी ने किसी देवी का नाट्य किया तो किसी ने किसी देवता का। इस प्रकार उन दानवों की सभा में जब सब देव-समाज जुड़ गया तब दिग्गजदलन ने हाथ जोड़ कर कहा, "हे देवी देवतागण! रावण वंशिनी रानी ताड़का देवी के लिए कोई योग्य वर ढूँढ़ दो।" देवी देवताओं ने बड़ा हो-हल्ला किया। पहिले तो कह दिया कि रानी विवाह न करे। परन्तु जब दिग्गजदलन ने कहा कि वह आप लोगों की बात न मानकर किसी के घर बैठना चाहती है और यदि ऐसा हो गया तो आप लोगों की पूजा ही बन्द हो जायगी। तब तो देवताओं ने पुनर्विचार प्रारंभ कर दिया और बोले "अच्छा सौ बकरे और दो सौ घड़े शराब पाने पर हमलोग बतावेंगे।" दिग्गजदलन ने फौरन सारी सामग्री की व्यवस्था कर दी। उन लोगों ने कहा, "अच्छा अजयगढ़ के कुमार मदनसिंह से इनका ब्याह होगा।" बस फिर क्या था। चारों ओर आनंद के बाजे बजने लगे। सब ओर हर्ष के बादल छा गये। प्रसन्नता का कुहराम सा मच गया। कुछ बैगों ने किसी

साधू से सुन रक्खा था कि किसी दिन अजयगढ़ के कुमार मदनसिंह ही काननपुर के अगाध कूप और तहखाने का रहस्य खोलेंगे। इसीलिए उन्होंने वह नाम ले लिया। उन बेचारों को यह कहाँ मालूम था कि ऐसा करके उन्होंने काननपुर के नाश का सूत्रपात ही कर दिया है।

ताड़का रानी धाँगर जाति की थीं। दिग्गजदलन कोरबा थे। बैगा लोग तथा काननपुर निवासी विभिन्न जातियों के थे। धन राशि के संरक्षक होते हुए भी वे थे सब के सब लँगोटीधारी। द्रव्य की उन्हें कोई आवश्यकता ही न थी। सामान्य अन्न और चावल के माँड़ से उनका उदर पोषण होता था। चावल तथा महुआ से वे बढ़िया शराब तैयार करके मस्त रहा करते थे। मुर्गी और बकरे उनके लिए देव भोग के समान थे। एक लँगोटी, चाहे कम्बल की हो चाहे कपड़े की, और यदि वह भी न मिले तो पत्ते की ही सही, उनके लिए पर्याप्त थी। स्त्रियों के लिए ज़रा बड़ी लँगोटी बस थी। पुरुषों का तो चार अंगुल कपड़ा मिलने से भी गुज़ारा होता था। इतना होते हुए भी ये लोग अद्वितीय वीर और सदाचारी थे। व्यभिचार का बदला प्राणदण्ड था। चोरी का अंग भंग और झूठ का जिह्वोच्छेदन। राज भक्त भी ये एक नम्बर के थे क्योंकि इनका जन्म-सिद्ध विश्वास था कि खेती की ज़मीन राजा की बेटी है। और इस बेटी का

उपभोग करने वाले को इसके पिता का ग़ुलाम होना ही पड़ता है।

इस गांव के बड़े बूढ़े यह कहा करते थे कि "सतजुग में नवागढ़ के राजा ने ताड़का देवी के पुरखों को यह राज्य दे दिया था और कह दिया था कि जब तक इस वंश की रखवाली में अगाध कूप और पाताल तहखाना रहेगा तब तक दोनों राज्य अचल रहेंगे।" इसलिए उन दोनों की रक्षा के लिए ये लोग सदैव तत्पर रहा करते थे। पर उनके भीतर जाने की उन्हें सख़्त मनाही थी क्योंकि कहा जाता है कि वहाँ पितरों का वास था। एक बार महामारी का ऐसा प्रकोप हुआ कि अनेकों अबलाओं की टोनही के भ्रम में जघन्य और अमानुषिक हत्या हो जाने पर भी राज-परिवार की रक्षा न हो सकी और ताड़का को छोड़ बाक़ी सब दिव्य लोक को सिधार गए। ताड़का सीधी सादी स्त्री थी। दिग्गज-दलन कुछ सभ्य और सुयोग्य थे पर वे संसार से कुछ विरक्त रहा करते थे। इसीलिए बैगा लोग इस राज्य में परम स्वतंत्र होगये थे। यही कारण था कि वे लोग ताड़का का विवाह न होने देना चाहते थे। पर जब स्वयं उनकी प्रतिष्ठा पर आ बनी तब उन्हें अनुमति देनी ही पड़ी। यह अनुमति भी ऐसी हुई जो एक प्रकार से असंभव ही थी। क्योंकि अजयगढ़ राज्य बड़ा समृद्ध था और मदनसिंह सुसभ्य राजगोंड़-क्षत्रिय-कुलतिलक थे।

कहाँ मदन सिंह और कहाँ ताड़का देवी! उनका वह अर्धचन्द्राकार ललाट, वे कमलायत विशाल लाल लोचन, वह शुक चंचूपम सुघर नासिका, वे आजानुलम्बित ललाम बाहु, वह मनोज्ञमुख माधुरी और सर्वोपरि वह पाटल दर्पहारी रोचक रंग और इनकी वह केशकुंचित ललाट लेखा, वह रक्त शोण सूकरी नेत्र-प्रभा, वह पकौड़ी सी पचकी नाक, वे लोहदण्डायत कर्कश कर, वह शीतला संदग्ध मधुचक्र सा मुख-मंडल और सर्वोपरि वह कज्जल कालिमा जहाँ पता ही न चलता था कि केश और कपाल का मिलाप किस जगह हुआ है! भला इन दोनों का जोड़ कैसा? उन्हें देखकर फूल खिल उठते थे, पक्षी चहचहा उठते थे, वायु मंद मंद बहने लगता था और मदन अपने को मदन सिंह के रूप में खड़ा पाता था। इन्हें देखकर पत्ते झड़ पड़ते थे, जानवर भाग खड़े होते थे, हवा साँय साँय करने लगती थी, और सुबाहु मारीच की माता अपने को जीता जागता पा जाती थी। वे कमल थे तो ये मेण्डकी। वे इन्द्र धनुष थे तो ये काक माला। वे आम्र वृक्ष थे तो ये वहीं बनी हुई बाँबी। इन दोनों का मेल भला हो ही कैसे सकता था। फिर भी मनसिज की प्रबल प्रेरणा के वशीभूत होकर ताड़का देवी ने विवाह-प्रस्ताव भेजना स्थिर कर लिया। बड़े अनुसन्धान के बाद एक लेखक और एक चित्रकार बुलाये गए। दोनों एक दूसरे से बढ़कर थे। जैसे तैसे पत्र और चित्र तैयार हुए। और एक विश्वस्त दूत के

हाथ वे अजयगढ़ महाराज के पास भेजे गए। पाठक पिछले किसी परिच्छेद में इसी पत्र और चित्र की चर्चा पढ़ चुके हैं।

इधर गांव में उस दिन खूब आनन्दोत्सव रहा। गोल गोल नगाड़ों के किनारे लम्बे लम्बे सींग और फिर उनके भी आगे लम्बी लोहे की छड़ें लगाकर कौड़ियों और चिन्दियों की तथा फूलों और पत्तों की वेष-भूषा पहिने हुए वाद्य-कला-पटु लोग चमड़े की बद्धियों से उन बेचारे नगाड़ों को उछल उछल कर बेतहाशा पीटने लगे। ताल और स्वर कहाँ तक बिगाड़े जा सकते हैं इसका प्रत्यक्ष अभिनय वहाँ दिखाया जाने लगा। शराब के दौर चल पड़े। शादी का अभी कहीं ठिकाना नहीं परन्तु शादी की सब खुशी पहिले ही मना डाली गई। ताड़का देवी भी अपनी जीवन-नौका के मल्लाह का पता पाकर सन्तोष का अनुभव करने लगीं।



तीसरा परिच्छेद

प्रभात की सुनहली किरणें भानुपुर की सघन अमराई के भीतर झाँकने का प्रयत्न कर रहीं थीं। पक्षियों के सम्मिलित कलरव से समूची अमराई मुखरित हो उठी थी। रात्रि भर की सुखद-निद्रा से उठ उठ कर भानुपुर के किसान अपने अपने धन्धों पर जाने लगे थे। अनेक अद्‌भुत स्वप्नों को मानों हृदय में लुकाए हुए भानुपुर की अमराई प्रभातकालीन किरणों में स्नान कर रही थी।

इसी समय हमारे चिर परिचित ऐयार मेघसिंह अपना घोड़ा फेंकते हुए भानुपुर की ओर बढ़े चले आ रहे थे। उनकी अलसाई हुई आँखें कहे दे रही थीं कि उन्हें रात्रि भर विश्राम नहीं मिल सका।

अमराई के समीप पहुँच कर घोड़े की गति का अवरोध करते हुए उन्होंने सामने की ओर देखा। अमराई में चारों ओर

निस्तब्धता थी। बाएँ हाथ में घोड़े की लगाम थाम कर दाहिने हाथ से सिर खुजलाते हुए वे मन ही मन बड़बड़ाने लगे, "इसी अमराई में तो पड़ाव डालने की बात थी! पर यहाँ तो कोई दिखाई नहीं देता! तब क्या वे लोग कूच कर गये? पर मेरे लिए उन्हें प्रतीक्षा तो करनी चाहिये थी! मुझे पहुँचने में देर भी तो नहीं हुई!"

सशंकित हृदय से मेघसिंह ने धीरे धीरे अमराई के भीतर प्रवेश किया। अमराई के दूसरे छोर पर उन्हें पाँच सात सैनिक व्यग्रतापूर्वक इधर-उधर टहलते हुए दिखाई दिए। अत्यन्त आतुरता के साथ मेघसिंह उसी ओर अग्रसर हुए। कुछ और आगे बढ़ने पर उन्होंने देखा सैनिकदल के नायक मंत्री अजितसिंह कुछ सैनिकों से घिरे हुए उदास-भाव से राख के एक ढेर के पास खड़े हैं।

घोड़े से उतर कर वे धड़कते हुए हृदय से सैनिक दल के समीप जा पहुँचे। उन्हें देखते ही मंत्री अजितसिंह तथा सैनिक उन्हें घेर कर खड़े हो गये। मेघसिंह ने देखा मंत्री अजितसिंह सहमे हुए हैं। वे समझ गये कि लक्षण अच्छे नहीं हैं। मंत्री की ओर देखते हुए उन्होंने पूछा—"बात क्या है? यह राख का ढेर कैसा है?"

मंत्री अजितसिंह ने निराशापूर्ण स्वर में उत्तर दिया "एक अद्भुत घटना हो गयी है मेघसिंह! हमलोग तुम्हारी राह देख

ही रहे थे। पिछली रात न जाने कैसे यकायक महाराज कर्णसिंह के खेमे में आग लग गयी। हम लोग भोजन के उपरान्त अपने अपने डेरों में विश्राम कर रहे थे। मैं तो इतना थका हुआ था कि लेटते ही गहरी नींद में सो गया। कुछ सैनिकों ने आग बुझाने का प्रयत्न किया पर आग की लपटों से न जाने कैसा दुर्गन्धिपूर्ण धुआँ निकल रहा था बेचारे सैनिक बेसुध होकर इधर-उधर गिर पड़े। उसके बाद हम लोग अभी उठकर देख रहे हैं। खेमा जलकर भस्म हो चुका है। कर्मागढ़-नरेश का कहीं पता तक नहीं है। राख के इस ढेर में मिली हैं केवल कुछ जली हुई हड्डियाँ !"

कहते हुए मंत्री अजितसिंह बाँस की एक छड़ी की सहायता से राख फैला फैला कर मेघसिंह को हड्डियाँ दिखाने लगे। मेघ-सिंह ध्यानवर्पूक अजितसिंह की बातें सुनरहे थे। सैनिक उनका आदेश पाकर दूर हट गये। उन्होंने कई हड्डियाँ हाथ में उठाकर भलीभाँति देखीं। बड़ी देर तक वे चुप चाप खड़े हुए कुछ चिन्तन करते रहे। सहसा मंत्री अजितसिंह की ओर देखते हुए उन्होंने पूछा "तब क्या आप समझते हैं ये महाराज कर्णसिंह की हड्डियाँ हैं ?" अजितसिंह ने अभी तक इस विषय पर बारीकी के साथ विचार न किया था। मेघसिंह के प्रश्न से कुछ सकपका कर उन्होंने उत्तर दिया। "हाँ...नहीं...वास्तव में मैं तो अभी तक इस सम्बंध में कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं कर सका हूँ।"

मेघसिंह ने कुछ आवेशपूर्ण स्वर में कहा—"पर मैं तो निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि ये मनुष्य की हड्डियाँ हैं ही नहीं। सच तो यह है कि इन सबका कभी एक शरीर में संयोग रहा होगा इसमें भी सन्देह है। भला सोचिये, आपने कभी किसी मनुष्य के पाँच पाँच हाथ देखे हैं ?" कहते हुए उन्होंने पाँच लंबी लंबी हड्डियों की ओर संकेत किया "और वह भी इतने लम्बे !"

मंत्री अजितसिंह चकित होकर मेघसिंह के मुँह की ओर देखने लगे। मेघसिंह माथा हिलाते हुए कहने लगे—"आपके साथ भारी धूर्तता की गयी है अजितसिंह जी ! कर्णसिंह का इस प्रकार हाथ से निकल जाना अच्छा नहीं हुआ। महाराज चन्द्रसिंह की सेना का सारा परिश्रम एक प्रकार से व्यर्थ हो गया।" मेघसिंह चिन्तित हो उठे।

मंत्री अजित सिंह ने भर्राये हुए स्वर में कहा—"परन्तु इस प्रकार का साहस करने वाला व्यक्ति है कौन ? कर्मागढ़ के ऐयार चतुरसिंह तो मीलूगढ़ की विशाल सेना की आँख में धूल झोंक कर यहाँ तक आ नहीं सकते !"

मेघसिंह ने खिन्नता पूर्वक उत्तर दिया—"कोई भी हो पर इसमें सन्देह नहीं है कि इस घटना का नायक है कोई असाधारण पुरुप !"

मंत्री अजितसिंह का हृदय ग्लानि से भरा हुआ था। उनकी

आत्मा मानों बार बार कह रही थी कि इस घटना का समस्त दायित्व उन्हीं पर है। मन ही मन उन्हें क्षोभ हो रहा था। महाराज चन्द्रसिंह से मिलने पर वे क्या कहेंगे! मीलूगढ़ के वीर सैनिकों का परिश्रम तथा दीयागढ़ के चतुर ऐयारों का अद्भुत कौशल मिट्टी में मिल गया। कर्णसिंह अब न जाने कौन सा उत्पात करें। उधर सैनिक-शिविर से महाराज चन्द्रसिंह का अन्तर्द्धान होना, और इधर कर्णसिंह का इस प्रकार निकल भागना! कैसा विचित्र व्यापार है। कुछ समझ में नहीं आता!

बड़ी देर तक वे इसी प्रकार सिर झुकाए हुए खड़े रहे। मेघसिंह उनके मनोभावों को भली भाँति समझ रहे थे। उनके मानसिक सन्ताप को शान्त करने के लिए उन्होंने सहज मुस्कुराहट के साथ कहा--"व्यर्थ चिन्ता से क्या होगा अजितसिंह जी! इसमें आपका बस ही क्या था? ऐयारों की धूर्तता के सामने तो अच्छे-अच्छों को सिर झुकाना पड़ता है। हम लोगों को खुल कर खेलने का एक और अवसर मिला है। कर्णसिंह जायँगे कहाँ?" कहते हुए वे मंत्री अजितसिंह का हाथ थामें हुए उनके खेमे के भीतर चले गये। सैनिकों को सतर्कता के साथ ख़ेमे के चारों ओर पहरा देने का आदेश दे दिया गया। बड़ी देर तक वे लोग भीतर बैठे हुए भविष्य कार्य-क्रम के सम्बन्ध में परामर्श करते रहे। अन्त में मेघसिंह ने लम्बी साँस लेते हुए कहा, "जो कुछ हो दीयागढ़-नरेश और सरदार बहादुर सिंह को

इस घटना की सूचना शीघ्र से शीघ्र पहुंचा देनी चाहिए क्योंकि सरदार के आदेश के बिना............।" मेघसिंह अभी अपना वाक्य पूरा भी न कर पाए थे कि एकाएक एक सैनिक ने भीतर आकर फौजी सलाम किया और मन्त्री अजितसिंह का संकेत पाकर कहने लगा--"कमल नयन नामक एक अपरिचित नवयुवक आपसे मिलना चाहते हैं।"

"कमल नयन ?" मेघसिंह ने दुहराया।

"जी हाँ" सैनिक ने सम्मान पूर्वक उत्तर दिया।

मेघसिंह ने कौतूहल-पूर्ण दृष्टि से मंत्री अजितसिंह की ओर देखा। अजितसिंह ने कुछ सोच कर आज्ञा दी "अच्छा भीतर ले आओ।" सैनिक बाहर चला गया।

मेघसिंह आश्चर्यसूचक स्वर में बोले-"कमल नयन, इस समय, यहाँ कैसे ?"

"मैं भी यही सोच रहा हूँ!" अजितसिंह कहने लगे, "आप इस नवयुवक को जानते हैं मेघसिंह जी ?"

"पूरी तरह तो नहीं जानता" मेघसिंह ने सिर हिलाते हुए उत्तर दिया, "पर इसमें सन्देह नहीं कि इनका साहस और कौशल असाधारण है।"

क्षणभर में ही कमलनयन खेमे के भीतर प्रवेश करते दिखाई दिये। उनके पीछे पीछे एक सैनिक था जिसकी पीठ पर एक बड़ी सी गठरी लदी हुई थी। उनके माथे पर पसीने की बूंदें झलक

रही थीं। मेघसिंह ने दो पग आगे बढ़ कर मुस्कुराते हुए उनका स्वागत किया। कौतूहल पूर्ण स्वर में मंत्री अजितसिंह ने जिज्ञासा की–"कहिये आप यहाँ कैसे ?"

"और इस गठरी में क्या है ?" मेघसिंह ने चकित होकर पूछा।

"धीरे धीरे आपको सब मालूम हुआ जाता है।" कहते हुए कमलनयन ने सैनिक को गठरी नीचे रखने का संकेत किया। सैनिक गठरी रख कर खेमे के बाहर चला गया। मेघसिंह और मंत्री कमलनयन के मुँह की ओर ताकने लगे। कमलनयन ने क्षणभर दम लेकर कहना आरम्भ किया–"मैं समझता हूँ इस समय आप लोग काफ़ी चिन्तित हो रहे होंगे। और कर्णगढ़-नरेश का आपके हाथ से इस प्रकार निकल जाना सचमुच चिन्ता का विषय है। पर शायद........."

मंत्री अजितसिंह ने बीच में ही टोक कर पूछा–

"परन्तु कर्णसिंह के अन्तर्धान होने की सूचना आपको कैसे मिली ?"

"स्वयं कर्णगढ़-नरेश से !" कमल नयन ने मुस्कुराते हुए कहा "और यह गठरी मेरी बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है !" कहते हुए कमल नयन ने गठरी खोल डाली।

मंत्री और मेघसिंह ने देखा गहरी नींद में बेसुध महाराज कर्णसिंह ! उनके आश्चर्य की सीमा न रही आँखें फाड़ फाड़ वे एक दूसरे की ओर देखने लगे।

पवन के मन्द मन्द झोंकों से कमल नयन के फीके गुलाबी साफे का ऊपरी कोना हिल रहा था। सूर्य की सुनहली किरणें उनके दाहिने गाल पर पड़ कर एक अनोखी आभा की सृष्टि कर रहीं थीं। मधुर मुस्कान उनके भोले मुख मण्डल पर खेल रही थी। इस अपूर्व छटा के बीच वे मेघसिंह और मंत्री को क्षण भर के लिए एक चमत्कार पूर्ण देव-दूत के समान जान पड़े। दोनों बड़ी देर तक अवाक् होकर कई क्षणों तक उनकी ओर देखते रहे। अन्त में निस्तब्धताको भंग करते हुए मेघसिंह ने पूछा "यह कैसा अद्भुत खेल है, कमल नयन जी! कर्मागढ़-नरेश को हम लोग आपके अधिकार में कैसे देख रहे हैं।"

"मैं स्वयं अभी तक नहीं समझ सका हूँ" कमल नयन ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया, "इसे एक दैवी घटना-चक्र ही समझना चाहिये।" अधीर होकर अजितसिंह ने आग्रह पूर्वक कहा—"अब अधिक पहेली न बुझाइए। कृपा कर शीघ्र ही हम लोगों के कौतूहल को शान्त कीजिये।"

कुछ गम्भीर होकर कमलनयन ने धीरे धीरे कहना आरम्भ किया—"महाराज कर्णसिंह आपके अधिकार से किस प्रकार निकल गये यह तो मुझे नहीं मालूम परन्तु एक अद्भुत घटना के फेर में पड़ कर वे इस समय मेरे अधिकार में आ पहुँचे हैं। कर्मागढ़ संग्राम के बाद सरदार बहादुर सिंह ने मुझे आज प्रातः-काल धुरीपुर की अतिथिशाला में उपस्थित होने का प्रयत्न करने

के लिये आदेश दिया था। उन्होंने कुछ निश्चयात्मक वचन तो नहीं दिया था पर इतना कहा था कि वे यथा-सम्भव पिछली रात धुर्रापुर की अतिथिशाला में ही बितायेंगे। उनसे मिलकर भविष्य कार्य-क्रम निश्चय करने के इरादे से मैं पहर भर रात रहे ही धुर्रापुर की ओर चल पड़ा। लगभग दो तीन मील निकलने के बाद मैंने अपना घोड़ा एक तालाब के समीप रोक कर नित्य कर्म से निवृत्त होना चाहा। सहसा रात्रिके सघन अन्धकार को भेद कर आता हुआ किसी के बोलने का सा शब्द मुझे सुनाई दिया। कान लगा कर मैं सुनने लगा। नैश निस्तब्धता के कारण दूर होने पर भी मुझे स्पष्ट सुनाई दिया मानो एक व्यक्ति ने दूसरे से कहा: 'क्या आप कुछ कह सकते हैं कि मंत्री अजितसिंह के साथ कोई ऐयार है या नहीं ?'

दूसरे ने उत्तर दिया 'मुझे बिलकुल नहीं मालूम। मैंने तो कर्मागढ़ के बाद आज भानुपुर वाली उसी अमराई में पहली बार कुछ मनुष्यों की सूरत देखी थी। रास्ते भर मैं बन्द पालकी में ही ले जाया गया था।'

इस दूसरी आवाज को मैं भली भाँति पहिचानता था। पर मुझे अपने कानों पर विश्वास न होता था। मैं सोचने लगा कर्मागढ़-नरेश सैनिक दल के सतर्क पहरे से निकल कर यहाँ किस प्रकार आ पहुँचे! उसी शब्द के सहारे मैं कई पग चल कर उन लोगों के कुछ और समीप जा पहुँचा। कुछ देर तक

चारों ओर सन्नाटा रहा। सहसा महाराज कर्णसिंह घबराहट के साथ बोल उठे—'देखिये, देखिये, न जाने क्यों मेरा सिर बड़े ज़ोर से घूम रहा है।'

दूसरे ने कहा—'आश्चर्य की बात है! मुझे भी कुछ कुछ ऐसा ही जान पड़ता है कहीं कोई......'

उसका वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि यकायक महाराज कर्णसिंह के मुँह से एक चीख निकल पड़ी। क्षण भर बाद दूसरा व्यक्ति भी "ओह!" कह कर चुप हो रहा। इसके बाद फिर पहले की भाँति सन्नाटा छा गया! मेरे शरीर में रोमाञ्च हो आया। मैं निश्चय पूर्वक कह सकता हूँ, मेघसिंह जी! अँधेरी रात में एक ऐसी अद्भुत प्रेत लीला सी देख कर आप जैसे साहसी ऐयार भी एक बार काँप उठेंगे। फिर मेरी क्या गिनती है! मुझे भय मालूम हुआ कि आस-पास कोई भारी ऐयारी हो रही है, पर जब लगभग पाव घंटा तक भी कोई आहट न मिली तब साहस करके मैं धीरे धीरे आगे बढ़ा। लगभग सौ क़दम जाने के बाद मैंने देखा एक वृक्ष के नीचे घोड़े खड़े हैं। समीपही एक व्यक्ति गहरी नींद में पड़ा सो रहा है, पर दूसरा व्यक्ति मुझे आस-पास न दिखाई दिया। मैंने पहिचाना वह व्यक्ति और कोई नहीं स्वयं कर्मागढ़-नरेश महाराज कर्णसिंह हैं। एक गठरी में बाँध कर इन्हें मैंने अपने घोड़े की पीठ पर लाद लिया। दूसरे व्यक्ति को खोजने में अपना समय नष्ट करना मैंने उचित न समझा।

एक बार इच्छा हुई कि धुर्रापुर चलकर इन्हें सरदार को सौंप दूँ पर फिर मैंने विचार किया कि आप लोग इनके निकल भागने से अत्यन्त चिन्तित हो रहे होंगे। उन लोगों की बात चीत से मैंने समझ लिया था कि वे आज ही रात भानुपुर की अमराई से भागे हैं। उधर सरदार ने निश्चित वचन दिया भी नहीं था। अतएव मैंने यहीं आना ठीक समझा।"

मन्त्री और मेघसिंह आश्चर्य चकित हो कर कमल नयन की बातें सुन रहे थे। उनकी कथा समाप्त हो जाने पर मेघसिंह कौतूहल पूर्ण स्वर में कहने लगे "सारी घटना अद्भुत रहस्य से भरी हुई है! कर्मागढ़ नरेश का यहां से निकल भागना और उसी रात इस विचित्र ढंग से उनका फिर से फँस जाना एक कहानी सी जान पड़ती है पर यह दूसरा कौन था और इन लोगों के इस प्रकार अनायास अचेत हो जाने का कारण क्या हो सकता है?"

कमल नयन ने उनकी बात के साथ सिलसिला मिलाते हुए कहा, "यही तो मैं भी सोच रहा हूँ। एक पहेली सी हो गई। यदि मैं प्रयत्न करता तो मुझे शायद उस दूसरे व्यक्ति का पता चल जाता। पर मुझे तो भय लगा था कि कहीं कोई नई विपत्ति न आ खड़ी हो।"

अजितसिंह लम्बी सांस लेकर बोले, "जो कुछ हो, इसे ईश्वरीय सहायता ही समझनी चाहिए। नहीं तो हम लोग दीयागढ़ नरेश और महाराज चन्द्रसिंह को मुंह दिखाने योग्य न रह जाते।

अब शीघ्र ही कूच करने की व्यवस्था हो जानी चाहिए।" मेघसिंह ने उनकी बात का समर्थन करते हुए कहा, "आप ठीक कहते हैं। दिन चढ़ चुका है। अब अधिक विलम्ब करना उचित नहीं है।"

देखते ही देखते मन्त्री अजितसिंह की आज्ञा पाकर सैनिकों ने प्रस्थान की सारी व्यवस्था कर डाली। कुछ देर तक कमलनयन, मन्त्री और मेघसिंह परस्पर बातचीत करते रहे। इसके बाद सैनिकों ने दीयागढ़ की ओर कूच कर दिया और कमलनयन ने वीरपुर की राह ली।

* * *

बहादुर सिंह ने मेघसिंह को कर्मागढ़ में ही आदेश दिया था कि वे गुप्त रूप से सैनिक दल की गति विधि का निरीक्षण करते रहें, जिससे कि मार्ग में किसी प्रकार की दुर्घटना न होने पाए इसीलिए उन्होंने भानुपुर की अमराई में अजितसिंह से मिल कर अब तक की यात्रा का समाचार जान लेना आवश्यक समझा। इधर सैनिक दल को फिर से कर्मागढ़ नरेश सहित दीयागढ़ की ओर भेजने के उपरान्त वे अपने घोड़े पर सवार होकर छिपते हुए स्वयं भी उसी ओर अग्रसर हुए। इसबार उन्होंने अपना रूप और वेष-भूषा बदल कर यात्रा करना उचित समझा। वे सैनिक दल के दाहिने बाएँ, आगे पीछे, दूर दूर रह कर सावधानी के साथ निरीक्षण करते जा रहे थे। भानुपुर से वे लोग लगभग पाँच छः मील गए होंगे कि मेघसिंह ने देखा

एक नक़ावपोश अश्वारोही उनके बाईं ओर से घोड़े को सरपट दौड़ाता उन्हीं की ओर चला आ रहा है। वे सावधान हो गए। उनके दाहिने हाथ में तलवार की मूँठ थी और बाएँ हाथ में घोड़े की लगाम। अश्वारोही पलक मारते उनके समीप आ पहुँचा। मेघसिंह ने घोड़े की गति मन्द कर दी। नक़ावपोश ने लगभग सौ गज के अन्तर से ही पुकार कर कहा, "मैं आप के ही पास आ रहा हूँ, ज़रा ठहरें।" उन्होंने परिवर्द्धित कौतूहल के साथ घोड़े को रोक लिया। नक़ाव-पोश ने और भी निकट आकर हँसते हुए कहा "आप चाहे जिस वेश में हों पर मैं बिना किसी भ्रम के कह सकता हूँ कि आप दीयागढ़ के प्रसिद्ध ऐयार मेघसिंह के अतिरिक्त कोई नहीं हैं। मेरे पास आप के नाम का यह एक पत्र है।" कहते हुए उसने मेघसिंह की ओर एक लिफाफ़ा बढ़ा दिया। मेघसिंह ने देखा उस पर उन्हीं का नाम लिखा हुआ था। आश्चर्य चकित हो कर उन्होंने लिफ़ाफ़ा खोल डाला। इधर अश्वारोही उनके उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना तीव्र गति के साथ अपनी राह लौट गया। मेघसिंह ने एक बार उसका पीछा करना चाहा, पर अवसर न था। वे पत्र निकाल कर पढ़ने लगे। उसमें लिखा था—

मेघसिंह जी,

एक शिकारी के वार से घायल हुए शिकार पर दूसरा शिकारी हाथ नहीं लगाता, फिर आप वीर पुरुष हैं। आपके

लिए तो यह और भी हेय है। कर्मागढ़ नरेश को हमने अपना शिकार बनाया था, परन्तु गिरे गिराए शिकार को आप के आदमियों ने किसी प्रकार हथिया कर उन्हें आपके पास पहुँचा दिया। हमारे अधिकार को छीन कर हमारे साथ अन्याय किया गया है। कमसे कम हमें आप से ऐसी आशा न थी अब आप से प्रार्थना है कि आप उन्हें शीघ्र से शीघ्र ठीक उसी जगह पहुँचा दें जहां वे पिछली रात पाए गए थे। यही सच्ची वीरता है।

—कर्मागढ़ नरेश द्वारा सन्तप्त कोई।

मेघसिंह के आश्चर्य की सीमा न रही। वे इस गोरख धन्धे को कुछ भी न समझ सके। अनेक प्रकार की कल्पनाओं तथा चिन्ताओं में डूबे हुए वे दीयागढ़ की ओर चले जा रहे थे। दीयागढ़ से लगभग तीन मील के अन्तर पर सघन वन से परिवेष्टित पर्वत की एक छोटी सी टेकड़ी के निकट सहसा उन्हें किसी के घिघियाने का सा शब्द सुनाई दिया। उन्हें ऐसा जान पड़ा मानो किसी का गला दबाया जा रहा है। अनुमान के सहारे वे इस शब्द के उद्गम स्थान का अनुसन्धान करने लगे। थोड़े ही परिश्रम के अनन्तर उन्हें मालूम हो गया कि यह विचित्र शब्द लम्बी लम्बी घास तथा लताओं से मुंदी हुई एक गुफा के भीतर से आ रहा था। बहुत साहस करके वे गुफा के भीतर घुसे और एक विचित्र बत्ती के प्रकाश में गुफा के भीतरी भाग का निरीक्षण करने लगे। गुफा काफी लम्बी थी और यद्यपि

वह बाहर से सँकरी जान पड़ती थी पर भीतर जाकर काफ़ी चौड़ी हो गई थी। बत्ती के प्रकाश में उन्होंने देखा एक स्त्री रस्सियों से जकड़ी हुई अर्द्धनग्नावस्था में पड़ी कराह रही है। रस्सी के फन्दे के कारण उसे सांस तक लेने में कष्ट हो रहा है।

मेघसिंह ने सावधानी के साथ उसे गुफा से बाहर निकाला। स्त्री अभी तक अर्द्धचेतनावस्था में थी। मेघसिंह ने उसके बन्धन खोल डाले। खुली हवा के लगने से उसके शरीर में शीघ्र ही चेतना का सञ्चार होने लगा। वह आँखें मलती हुई उठ बैठी और अपनी अर्द्धनग्नावस्था से लज्जित होकर बड़बड़ाती हुई यकायक पागल की भांति एक ओर भाग निकली। मेघसिंह उसके मनोभावों को समझ गए अतएव उसकी सहायता करने तथा उसके इस प्रकार बन्दी किए जाने का रहस्य जानने की प्रबल इच्छा रहते हुए भी उन्होंने उसका अनुसरण करना अपनी मर्यादा के विपरीत समझा। उन्होंने विचार किया कि अपने कौतूहल की शान्ति के लिए एक स्त्री को इस अपमान पूर्ण अवस्था में पकड़ने का प्रयत्न करना मानो उसके साथ घोर अन्याय करना है। अब जब उसके बन्धन खुल चुके हैं तो किसी न किसी प्रकार वह अपनी राह खोज ही लेगी। अपने घोड़े को दीयागढ़ का मार्ग दिखा कर उन्होंने एक हलकी सी एड़ लगाई। घोड़ा हवा से बातें करने लगा।

चौथा परिच्छेद

दीयागढ़ में घोर हाहाकार मच गया। जिसे देखो वही चन्द्रावती की याद में आठ आँसू बहा रहा था। महारानी के शोक का तो वारापार न था वह तो कुमारी का नाम ले ले कर मूर्छित हो हो जाती थीं। ऐसा जान पड़ता था कि इस असह्य शोक की चोट को वे न सह सकेंगी। होश में आते ही वे बिलख बिलख कर रोने लगतीं थीं। उनका करुण-विलाप समस्त राज प्रासाद को हिलाये दे रहा था। राज प्रासाद शोक का आगार बन गया था। सारा भवन अत्यन्त भयावह जान पड़ता था। अत्यंत सुन्दर रत्नों से जटित दीवारें इस समय मानों काटने के लिये दौड़ रहीं थीं। कुमारी का शयनागार तो इतना वीभत्स हो रहा था कि देखते ही हृदय काँप उठता था। दीयागढ़-नरेश व्याकुल होकर कभी महारानी को सँभालते थे और कभी शोकविह्वला इन्दुमती

को सान्त्वना देने की चेष्टा करते थे। परन्तु आँसुओं की अविरल धारा उनकी सूझी हुई आँखों से वह बह कर उनकी सारी चेष्टाओं को व्यर्थ किये दे रही थी। उनका हृदय निकला पड़ता था। वे कुमारी इन्दुमती के आँसू पोंछते थे, पर उसके मुख पर लिखी हुई हृदय की विह्वलता को वे कैसे दूर करते! उसकी करुण-दशा देख कर वे स्वयं व्याकुल हो उसे रोते रोते उठा कर अपनी गोद में लुका लेते थे।

और राजकुमारी चन्द्रावती की प्रिय सखी चम्पा! उसकी भी अवस्था विचित्र हो रही थी। विषाद की मूर्ति सी बनी हुई वह शयनागार के एक कोने में मौन बैठी थी। उसे तो मानो काठ सा मार गया था। इस समय वह निर्जीव प्रतिमा सी बनी हुई थी। उसके अंगों में यदि प्राणों का कहीं चिन्ह था तो उसकी अविराम बहती हुई आँखों में!

सारे राज प्रासाद में कुहराम मचा हुआ था। सारे नगर में उदासी छाई हुई थी। अजयगढ़ के ऐयार अरुणसिंह अभी यहीं थे। वे भी यह समाचार सुन कर स्तंभित हो रहे थे। उनकी बुद्धि कुछ काम न करती थी। अभी कल ही राज कुमारी इन्दुमती को दीयागढ़-नरेश के हाथों में सौंप कर वे सुखी हुए थे। उनका हृदय उस समय फूला न समाता था। उन्होंने राजमहिषी की कृतज्ञता भरी निगाहों में अपार आनन्द की आभा देखी थी, उस समय उनका मस्तक गर्व से ऊँचा हो रहा था। और आज

उनकी आँखों के सामने दीयागढ़ का विशाल राज प्रासाद विषाद की प्रतिमूर्ति-सा बना हुआ खड़ा था। यह सब कुछ ही घड़ियों के भीतर !

अरुणसिंह परदेसी होने पर भी राजपरिवार से रात भर में ही काफी हिल-मिल गये थे। यों भी ऐयारों से भला कौन परदा ! तिसपर ऐसे संकट के समय !

वे स्वयं राज प्रासाद में जाकर सब को सान्त्वना देने का प्रयत्न कर रहे थे। पर वहाँ धीरज किसे था ? सारा दिन बीत गया पर किसी ने अन्न जल तक न ग्रहण किया। दिन भर महारानी अपना सिर धुन धुन कर विलाप करती रहीं। ऐयार अरुणसिंह से यह सब दृश्य अधिक न देखा गया। वे बहुत आग्रह के साथ महाराज वीरसिंह का हाथ पकड़ कर बाहर ले आये और अनेक प्रकार से समझाने-बुझाने लगे। परन्तु कोई परिणाम न निकला। अन्त में महाराज की अनुमति लेकर वे चन्द्रावती के शयनागार में गये, और ध्यान पूर्वक परिस्थिति का निरीक्षण करने लगे। राजकुमारी की सखी चम्पा अब भी एक कोने में पाषाण-प्रतिमा सी बनी बैठी थी। अरुणसिंह ने उससे अनेक प्रश्न किये परन्तु एक का भी उत्तर न मिल सका। उत्तर देने के लिये वह ज्यों ही मुँह खोलती थी त्योंही उसका कण्ठ मानो इतना भर आता था कि वह कुछ बोल ही न सकती थी। हताश होकर अरुणसिंह महाराज वीरसिंह

के समीप दरबार भवन में लौट आये तथा उन्हें सान्त्वना देने का प्रयास करने लगे।

सहसा एक गुप्तचर ने आकर समाचार दिया कि "मीलूगढ़ के मंत्री अजितसिंह तथा ऐयार मेघसिंह महाराज कर्णसिंह को बन्दी रूप में लिये हुए आ रहे हैं। कर्मादुर्ग पर मीलूगढ़ की सेना ने विजय प्राप्त करली है। परन्तु संग्राम के बाद से ही वे स्वयं लापता हैं। मंत्री अजितसिंह राजकीय कार्यों से शीघ्र ही मीलूगढ़ लौट जाना चाहते हैं।"

महाराज वीरसिंह की सोई हुई स्मृति जागरित हो उठी। उनका हृदय भीतर ही भीतर जलने लगा। इन्दुमती पर किये गये अत्याचारों का स्मरण होते ही उनके ओंठ क्रोध से फड़-फड़ाने लगे। परन्तु दूसरे ही क्षण उनका क्रोध आँसू बन कर मानो उनकी बेबसी की कहानी कह निकला। एक ठंडी साँस लेकर उन्होंने शून्य दृष्टि से दरबार-भवन के मुख्य द्वार की ओर देखते हुए कहा—"कर्णसिंह! तुम हार कर भी जीते! आओ अपनी लगाई हुई आग से दीयागढ़ राज प्रासाद को भस्म होते देख कर अपनी छाती ठंडी करो। ईश्वर के यहाँ भी क्या ऐसा ही न्याय है?"

अरुणसिंह चुपचाप उनके सामने बैठे हुए उनके गम्भीर मुखमंडल की ओर निहार रहे थे! महाराज को आश्वासन देने के लिए वे अभी कुछ कहना ही चाहते थे कि सहसा मेघ-

सिंह ने दरबार भवन में प्रवेश किया। उनकी आँखें डबडबाई हुई थीं। महाराज वीरसिंह की जड़ीभूत आँखें उनकी ओर गईं ! आँखों से ही दोनों ने एक दूसरे की मानसिक अवस्था समझ ली। क्षण भर मौन रहने के बाद महाराज वीरसिंह ने गद्गद् होकर कहा—"अब कर्णसिंह को लेकर मैं क्या करूँगा, मेघसिंह ?"

मेघसिंह ने आश्वासन-पूर्ण स्वर में नम्रता पूर्वक उत्तर दिया--"महाराज अधीर न हों। महाराज केवल पिता ही नहीं हैं वरन शासक भी हैं। इन्दुहरण के रूप में कर्मागढ़ नरेश ने दीयागढ़ राज्य का जो अपमान किया है उसका न्याय तो करना ही होगा।" महाराज वीरसिंह ने गम्भीर होकर कहा—"ठीक कहते हो मेघसिंह ! महाराज कर्णसिंह के ठहरने की समुचित व्यवस्था हो जानी चाहिए"

"अभी वही करके आ रहा हूँ, महाराज !" मेघसिंह ने उत्तर दिया "इस सम्बन्ध में मुझे कुछ आश्चर्यपूर्ण घटनायें......" मेघसिंह की बात पूरी भी न होने पाई थी कि सहसा एक दासी ने आकर घबराये हुए स्वर में सूचना दी—"महारानी आप लोगों को ऊपर बुलाती हैं। एक विचित्र स्त्री पागलों का सा प्रलाप करती हुई राजकुमारी चंद्रावती के शयनागार में घुस गई है।"

आश्चर्य्य और कौतूहल भरे हुए अरुणसिंह और मेघसिंह को साथ लेकर महाराज वीरसिंह अन्त:पुर की ओर लपके।

राजकुमारी चन्द्रावती के शयनागार में पहुँच कर उन्होंने देखा:—

एक अद्भुत वेष-भूषा वाली स्त्री चन्द्रावती की प्रियसखी चम्पा की छाती पर सवार है। उसके सारे शरीर पर वृक्षों की छाल लिपटी हुई है। उसके बाल बिखरे हुए हैं। चम्पा घबराई हुई नीचे पड़ी है। स्त्री रोषावेश में न जाने क्या क्या बक रही है।

मेघसिंह ने पहिचाना यह वही स्त्री है जिसे अभी कुछ ही देर पहले उन्होंने एक अन्धेरी गुफा से बाहर निकाला था। उन्होंने आगे बढ़ कर उसे हटाने का प्रयास करते हुए कहा—"तू कौन है ? और यहाँ कैसे घुस आई है ?"

स्त्री कुछ नरम होकर विस्मय के साथ बोली—"क्या तुमने भी मुझे नहीं पहिचाना मेघसिंह ! तब क्या मेरा रूप बदला हुआ है ? " कहती हुई वह जोर जोर से अपना चेहरा रगड़ने लगी।

क्षण भर बाद उन लोगों ने देखा ! वह स्त्री और कोई नहीं राजकुमारी चन्द्रावती की प्रियसखी चम्पा है। वे आश्चर्य चकित होकर इस दूसरी चम्पा की ओर देखने लगे। मेघसिंह के मुँह से निकल पड़ा !"हैं ! कौन ? चम्पा ? तब यह तेरे नीचे कौन है ?"

आवेश के साथ नीचे पड़ी हुई स्त्री के बाल नोचती हुई चम्पा गरज कर कहने लगी—"यह ? यह आप लोगों की आँखों में धूल झोंकने वाली कोई ऐयारा है !......बोल, दुष्टा, तू कौन है ?"

मेघसिंह ने नई चम्पा को बरजते हुए कहा—"यह क्या करती हो चम्पा ? बेचारी मर जायगी। ऐयारी इसका नाम नहीं है।"

"इस दुष्टा ने मेरे साथ जिस प्रकार की ऐयारी की है उसे आप नहीं जानते मेघसिंह जी !" कहती हुई चम्पा उसके बाल नोचती रही।

मेघसिंह ने कुछ गम्भीर होकर कहा—"मैं जानता हूँ चम्पा ! शायद इसीने तुम्हें बाँध कर उस अँधेरी गुफा में डाल दिया था। परन्तु इससे क्या हमें अपनी मर्यादा भी भूल जानी चाहिये?"

चम्पा उठ कर खड़ी हो गई और विस्मय पूर्वक मेघसिंह की ओर देखने लगी। मेघसिंह मुस्कुराते हुए कहने लगे—"आश्चर्य की कोई बात नहीं है। तुम्हें जिस अपरिचित पुरुष ने उस गुफा से बाहर निकाला था वह मैं ही था। उस समय मेरा वेष दूसरा था। अस्तु---अब उस बात को जाने दो और पिछली रात की सारी घटनायें सुना जाओ।"

चम्पा बोली "कुमारी की आज्ञा से मैं रात को किसी काम से बाहर निकली। उद्यान से होकर मैं जा ही रही थी कि किसी ने मुझे पीछे से पकड़ कर पटक दिया। मैं बेसुध हो गयी और इसके बाद उस गुफा में ही मैंने पहले पहल आँखें खोलीं।"

मेघसिंह ने फिर पूछा--"राजकुमारी चन्द्रावती के सम्बन्ध में भी तुमने कुछ सुना ?"

चम्पा ने उत्तर दिया--"हाँ बरती में सुनती ही हुई आई थी। परंतु यहाँ आकर इतनी बात तो समझ में आ रही है कि यह सब जाल है और राजकुमारी जहाँ कहीं भी हों सकुशल हैं।"

महाराज वीरसिंह और अरुणसिंह अब तक चुपचाप खड़े हुए समस्त अद्भुत व्यापार देख रहे थे। चम्पा की अन्तिम बात सुनते ही वे लोग चौंक पड़े। दोनों के मुँह से एक साथ निकल पड़ा—"कैसे ? कैसे ?"

मेघसिंह ने भी कौतूहल के साथ पूछा—"तब क्या तुम समझती हो कि राजकुमारी चन्द्रावती......"

मेघसिंह की बात को बीच में ही काटते हुए चम्पा ने कहा--"क्या आप भी अब तक धोखे में हैं मेघसिंह जी ? देखिए दीवारों पर पड़े हुए उन छींटों की ओर ! क्या इन कई घंटों के बाद भी ख़ून का यही रंग होना चाहिये ?"

मेघसिंह ने ध्यान पूर्वक ख़ून के दाग़ों की परीक्षा की। सच-मुच उनकी लाली अभी तक ज्यों की त्यों बनी हुई थी। महाराज वीरसिंह को घोर अन्धकार के बीच आशा की एक उज्ज्वल रेखा दिखाई दी। उनकी आँखें प्रसन्नता से चमकने लगीं। मेघसिंह आवेश के साथ चिल्ला उठे—ओह ! शत्रु ने हमारे साथ भारी छल किया है। अब कोई चिन्ता की बात नहीं ! यदि राजकुमारी जीवित हैं तो हम लोग उन्हें एक न एक दिन अवश्य खोज

निकालेंगे। परन्तु यह मायाविनी चम्पा कहाँ से आगई ? "दाँत पीसते हुए चम्पा ने उत्तर दिया "यही दुष्टा बतावेगी......... बोल पापिन ! अब चुप रहने से काम न चलेगा।"

मायाविनी चम्पा चुपचाप खड़ी काँप रही थी।

"यह इस तरह न बोलेगी। लो यह दवाई इसकी कलई खोल देगी।" कहते हुए अरुणसिंह ने एक छोटी सी शीशी चम्पा की ओर बढ़ा दी। चम्पा ने शीशी से कुछ बूँद निकाल कर उस स्त्री के चेहरे पर मल दिये। देखते ही देखते उसका रंग उतर गया। सब लोगों ने देखा एक अपरचित स्त्री सामने खड़ी है। यकायक चम्पा के मुँह से निकल पड़ा—"हैं यह तो वीर भद्र जी की लड़की सरला है। यह कब से ऐयारी करने लगी ?" महाराज वीरसिंह ने विस्मय पूर्वक पूछा--"क्या कहा ? हमारे भूतपूर्व सेनानायक वीर भद्र जी की लड़की ? तब क्या वीर भद्र जी ने भी हमसे शत्रुता करने की ठान ली है !"

चम्पा ने सिर हिलाते हुए कहा--"पर यह तो इधर कई बरस से नवागढ़ की मेनका रानी के पास थी। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि यह मेनका रानी की प्रिय सखी है।"

अरुणसिंह ने आश्चर्यपूर्ण स्वर में पूछा—"मेनकारानी ? उनके सम्बन्ध में तो आजकल अनेक प्रकार की विचित्र बातें सुनी जाती हैं ? परन्तु उन्हें भला दीयागढ़ से वैर मोल लेने की क्या आवश्यकता हुई ?"

मेघसिंह ने गम्भीर होकर कहा—"जो कुछ भी हो, अभी इस विषय को बहुत गुप्त रखना होगा। अभी निश्चयपूर्वक हम किसी सिद्धान्त तक नहीं पहुँच सकते। वीरभद्र जी के स्वभाव से मैं भली भाँति परिचित हूँ। यद्यपि उन्हें भावी वश राजदण्ड से दण्डित होना पड़ा है तो भी वे किसी प्रकार महाराज का अनिष्ट चिन्तन करेंगे इस बात की मैं स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता। उनकी राजभक्ति पर मुझे पूर्ण विश्वास है। कई अवसरों पर मैं उनकी परीक्षा ले चुका हूँ। तब दूसरा सन्देह स्वभावतः मेनका रानी पर ही जाता है, परन्तु उनके इस व्यवहार का क्या कारण हो सकता है ? इसका अनुसन्धान करना होगा। महाराज दरबार भवन की ओर चलें, तब तक मैं इस ऐयारा का प्रबन्ध कर आता हूँ।"

महाराज वीरसिंह को मेघसिंह का प्रस्ताव पसन्द आया। वे अरुणसिंह को साथ लेकर दरबार गृह की ओर अग्रसर हुए। मेघसिंह ने कुछ विचार कर महाराज को रोकते हुए कहा—"हाँ एक बात और है, मैं समझता हूँ महारानी और छोटी राजकुमारी को यह संवाद दे देना चाहिए कि कुमारी चन्द्रावती सकुशल हैं। परन्तु शेष लोगों से इस सम्पूर्ण घटना को गुप्त रखना उचित जान पड़ता है।"

महाराज वीरसिंह ने सिर हिला कर स्वीकृत दी। इसके बाद अरुणसिंह के साथ साथ शान्तभाव से चुपचाप दरबार गृह

में आ पहुँचे। मेघसिंह भी अपना काम पूरा कर शीघ्र ही महाराज के समीप उपस्थित हुए।

अवसर पाकर मेघसिंह ने कर्मागढ़ संग्राम से लेकर आज तक की समस्त घटनाएँ कह सुनाईं। अन्त में एक पत्र उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"यह भी एक विचित्र पहेली है।" पत्र पढ़ चुकने के बाद महाराज वीरसिंह ने विस्मयपूर्वक कहा—"समझ में नहीं आता, ये लोग कर्मागढ़-नरेश को किस अभिप्राय से गिरफ़ार करना चाहते हैं!"

मेघसिंह ने उत्तर दिया—"मैं भी रास्ते भर यही सोचता चला आ रहा हूँ परन्तु कुछ समझ में नहीं आता कि ये लोग कौन हैं? पत्रवाहक का व्यवहार मेरे प्रति अत्यन्त भद्रता-पूर्ण था।"

अरुणसिंह ने कहा—"परन्तु उन्हें कर्णसिंह को आप से माँगने का क्या अधिकार है? कर्णसिंह तो वास्तव में आप के क़ैदी थे। किसी प्रकार यदि वे आप के हाथ से कुछ देर के लिए निकल भी गये तो भी उन पर आप का अधिकार कम नहीं हो जाता!"

वीरसिंह ने बातों का क्रम बदलते हुए कहा—"जो हो, पहले मंत्री अजितसिंह से मिल कर आज की घटनाओं के सम्बन्ध में परामर्श कर लेना अनुचित न होगा। कर्णसिंह का विचार पीछे किया जायगा।" मेघसिंह को भी महाराज की

राय पसन्द आयी। महाराज ने मेघसिंह को आवश्यक आदेश देकर अजितसिंह जी के डेरे की ओर भेज दिया। थोड़ी ही देर के अनन्तर मंत्री अजितसिंह ने दरवार-भवन में प्रवेश किया। कुमारी चन्द्रावती सम्बन्धी घटना के कारण वे भी खिन्न हो रहे थे! मेघसिंह ने सम्मान पूर्वक उन्हें एक उच्च आसन पर बिठाया। महाराज वीरसिंह का संकेत पाकर उन्होंने आज की सारी घटना विस्तार पूर्वक कह सुनाई। अन्त में वे कहने लगे—"चम्पा से ही हम लोगों को यह भी मालूम हुआ कि यह ऐयारा वास्तव में नवागढ़ की रानी मेनकादेवी की अंतरंग-सखी है!"

"मेनका रानी?" मंत्री ने विस्मय पूर्वक दुहराया। मेघसिंह ने सिर हिला दिया।

मंत्री अजितसिंह सिर झुकाये हुए बड़ी देर तक कुछ विचार करते रहे। अन्त में एक लम्बी साँस लेकर कहा—"तब तो मुझे प्रकाश की एक धुँधली सी रेखा दिखाई दे रही है। मैं जो कुछ आपसे निवेदन करूँगा उससे शायद आप स्वयं कुछ निष्कर्ष निकाल सकें!" इसके वाद उन्होंने महाराज देवसिंह के समय से लेकर अब तक मेनकारानी द्वारा भेजे हुए विवाह-प्रस्तावों की चर्चा करते हुए कहा—"अभी कुछ ही दिन हुए मेनकारानी ने महाराज चन्द्रसिंह के पास, शायद अपनी इसी सखी द्वारा, अपना चित्र भी भेजा था। परन्तु महाराज ने तिरस्कार पूर्वक उसे फाड़ कर फेंक दिया था! इस अन्तिम घटना का

हाल मेरे अतिरिक्त और किसी को नहीं मालूम ! महाराज ने मुझे भी इस घटना को गुप्त रखने का आदेश दिया था परंतु इस समय इस विचित्र समस्या के आ जाने के कारण मुझे उनकी आज्ञा का उल्लंघन करना पड़ रहा है !"

मेघसिंह ने गम्भीरता पूर्वक कहा--"तब तो सैनिक शिविर से महाराज चन्द्रसिंह का अन्तर्द्धान होना तथा राज प्रासाद से राजकुमारी चंद्रावती का गायब होना—दोनों घटनायें एक ही सूत्र में बँधी हुई सी जान पड़ती हैं।"

मेघसिंह की बात का समर्थन करते हुए अजितसिंह ने कहा—"यही मैं भी सोच रहा था।"

उनकी बात के साथ सिलसिला मिलाते हुए महाराज वीरसिंह ने कहा--"और इस सूत्र की संचालिका है तिरस्कृता मेनका रानी !"

"सब घटनाओं का क्रम एक साथ मिला कर देखने से तो यही परिणाम निकलता है !" मंत्री अजितसिंह ने कहा।

मेघसिंह ने गम्भीरता पूर्वक कहना आरम्भ किया--"इतना तो स्पष्ट जान पड़ता है कि इन घटनाओं का कर्मागढ़-नरेश से कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि उनकी सारी शक्तियाँ इस समय हमारे अधिकार में हैं। और यदि उनका कोई छिपा हुआ सहायक है भी तो वह कर्णसिंह के बन्दी रहते इस प्रकार के कार्यों में हाथ डालने का साहस न करेगा।"

अरुणसिंह ने कहा--"परन्तु उसी रात महाराज कर्णसिंह के भानुपुर की अमराई से अन्तर्द्धान होने की घटना भी विचारणीय है !"

मेघसिंह विचार में पड़ गये। कुछ क्षणों के बाद उन्होंने मन्द स्वर में कहा—"सम्भव है इन दोनों घटनाओं में भी परस्पर कुछ संबंध हो। परन्तु मेरा मन तो यही कहता है कि इसमें मेनका-रानी का ही हाथ है।"

दरबार भवन में कुछ देर के लिए निस्तब्धता छा गई। अवसर देख कर मंत्री अजितसिंह ने नम्रता पूर्वक निवेदन किया "महाराज को यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि राजकीय कार्यों से मुझे शीघ्र ही मोलूगढ़ पहुँचना होगा अतएव यदि कर्मागढ़ नरेश का विचार हो जाता तो अच्छा था।"

महाराज वीरसिंह ने संकोचपूर्वक कहा—"उनका विचार तो स्वयं महाराज चंद्रसिह को ही करना चाहिये था ! मैं उनका विचार क्या करूँगा।"

मंत्री ने हाथ जोड़ कर उत्तर दिया; " नहीं महाराज ! कर्णसिंह ने दीयागढ़ का अपराध किया है। अतएव उनका न्याय आपके ही हाथ में है। हाँ, यदि आप कर्मागढ़ नरेश पर कुछ दया दिखा सकें तो महाराज चन्द्र सिंह को प्रसन्नता होगी।"

कई क्षणों तक गम्भीर चिन्तन करने के उपरान्त महाराज

वीर सिंह ने कहा– "जैसी आपकी इच्छा ; मेघसिंह जी ! कर्मागढ़-नरेश को सम्मान पूर्वक ले आइये।"

मेघसिंह दरबार-भवन से बाहर हुए। महाराज की अनुमति लेकर अरुणसिंह भी दरबार से निकल कर बगल वाले कमरे में जा बैठे।

❀ ❀ ❀

भविष्य की अप्रिय कल्पनाओं में डूबे हुए महाराज कर्णसिंह ने मेघसिंह के साथ साथ दरबार-भवन में प्रवेश किया। मेघसिंह ने उन्हें सम्मान पूर्वक महाराज वीरसिंह के सामने वाली कुर्सी पर ले जा कर बिठा दिया। अपने ही पापों के भार से उनका सिर झुका हुआ था। दरबार में निस्तब्धता छाई हुई थी। महाराज कर्णसिंह के सामने अनेक भयानक स्वप्न नाच रहे थे। उनका हृदय आत्मग्लानि से भरा हुआ था।

सहसा उस क्षणिक निस्तब्धता को भंग करते हुए महाराज वीरसिंह ने कहा—"महाराज बहुत चिन्तित न हों। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि दीयागढ़ में महाराज को किसी प्रकार का कष्ट न होने पावेगा।"

रास्ते भर कर्णसिंह दीयागढ़-नरेश के मुँह से कठोर मर्म वाक्य सुनने की कल्पना करते चले आ रहे थे। उनकी आँखों के सामने महाराज वीरसिंह की चढ़ी हुई भृकुटियों का

चित्र नाच रहा था। परन्तु यहाँ आकर उन्होंने महाराज को शान्त और गम्भीर मुद्रा में बैठे हुए देखा। उनके चेहरे पर विजय-गर्व की एक भी रेखा न थी। कठोर व्यंग्य के बदले विनम्र आश्वासन पूर्ण शब्द सुन कर उनका हृदय लज्जा से भर गया। उनका रहा-सहा दम्भ पानी बन कर आँखों की राह बह निकला। आँसुओं की बाढ़ के कारण उनके मुख से एक भी शब्द न निकल सका। उनकी आँखें दया की भिक्षा माँग रहीं थीं।

महाराज वीरसिंह उनके मनोभावों को समझ रहे थे। वे फिर अपने सहज-सुकोमल स्वर में कहने लगे—"आप व्यर्थ दुखी हो रहे हैं। मेरा तो आपसे कोई वैर न था। न मालूम क्यों आप ऐसी भूल कर बैठे कि जिसके कारण आज आपको पछताना पड़ रहा है!"

समस्त साहस बटोर कर महाराज कर्णसिंह ने गिड़गिड़ाते हुए कहा—"महाराज मुझसे अपराध बन पड़ा है। क्षमा कीजिये।" वे कुछ और कहना चाहते थे परन्तु उनके कण्ठ ने वाष्प से अवरुद्ध होकर उनकी वाणी की गति रोक दी।

महाराज वीरसिंह उनकी कायरता को देखकर स्वयं लज्जित हो रहे थे। उन्होंने मेघ के से गम्भीर स्वर में कहा—"महाराज! आप सहस्रों प्राणियों की जीवन नौका के कर्णधार हैं। प्रजा के सच्चरित्र तथा दुश्चरित्र, सुख और दुःख, वैभव और अभाव का समस्त उत्तरदायित्व आपके कंधों पर है। कठिन कर्तव्य की पैनी

धार पर से अनेकों को पार लगाते हुए आपको पार होना है। इसीलिए जीवन में सत्य और न्याय के लिए अनेक बार आपको अपने सुख और स्वार्थ को भी तिलाञ्जलि देनी पड़ी होगी। ऐसे महत्व पूर्ण और कर्तव्य प्रधान जीवन में जिस साव-धानी की आवश्यकता रहा करती है आपने उस सावधानी से काम नहीं लिया। विचार कीजिए, जहाँ फूँक फूँक कर कदम रखने की जरूरत है वहाँ यदि आप विलासिता का मोटा परदा आँखों पर डालकर चलने का प्रयास करेंगे तो परिणाम क्या होगा? अपनी समृद्धि और सामर्थ्य के दम्भ में आप इस बात को भूल गये कि पथ का एक साधारण रोड़ा मनुष्य के इतने बड़े शरीर को भी अपनी ही गति तक पहुँचा देने के लिए पर्याप्त है। इसीलिए आप ठोकर खाकर गिर पड़े। यदि इस ठोकर से भी आप चेत जायँ तो अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। समय है। मेरी ओर से आप स्वतन्त्र हैं। आप का अपमान और आपका कष्ट वास्तव में उन सहस्रों मनुष्यों का अपमान और कष्ट है जिनके जीवन अभिनय के आप सूत्रधार हैं। अतएव आपका अपमान करना अथवा आपको कष्ट देना मुझे अभीष्ट नहीं है। इस क्षण से आप मेरे क़ैदी नहीं हैं वरन अतिथि हैं! ईश्वर आपको सुबुद्धि दे जिससे कि आप अपने जीवन का शेष भाग प्रजा के हित चिन्तन में लगा सकें!"

महाराज कर्णसिंह का हृदय गद्‌-गद्‌ हो उठा। कृतज्ञता

भरी दृष्टि से महाराज वीरसिंह की ओर देखते हुए उन्होंने रुद्ध कण्ठ से कहा-- "महाराज से मुझे ऐसी ही उदारता की आशा थी। मैं आजीवन इस उपकार से उऋण न हो सकूँगा।"

महाराज वीरसिंह ने मुस्कुराते हुए कहा—"मैंने केवल अपने कर्तव्य का पालन किया है। फिर भी यदि आप उसे कुछ महत्व देना चाहते हैं तो उसका सबसे बड़ा मूल्य यही होगा कि यदि संसार के प्रति नहीं तो कम से कम अपनी प्रजा के प्रति अपने महान् कर्तव्य को पूरा कीजिये।" कर्णसिंह ने उत्तर दिया—"आपके आदेश का पालन करूँगा।" इस समय उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी।

दीयागढ़-नरेश के सद् व्यवहार ने उनकी गर्दन और भी अधिक झुका दी थी। उनकी इस अन्तिम प्रतिज्ञा में कितनी दृढ़ता थी यह तो भविष्य ही बता सकेगा पर इसमें सन्देह नहीं कि महाराज वीरसिंह की साधु प्रकृति उन पर जादू का सा प्रभाव कर रही थी। और उनका हृदय उनके दुष्कर्मों के लिये उन्हें धिक्कार रहा था चाहे फिर यह आत्म-ग्लानि कितनी ही क्षणिक क्यों न रही हो!

कुछ देर तक मौन रहने के उपरान्त महाराज वीरसिंह ने मेघसिंह को संबोधन करते हुए कहा—"महाराज कर्णसिंह की इच्छा के अनुसार उनके प्रस्थान की यथोचित व्यवस्था हो जानी चाहिये।"

मेघसिंह ने महाराज कर्णसिंह की ओर देखते हुए नम्रता-पूर्वक कहा—"महाराज अभी चल कर विश्राम करें। कल प्रात:काल ही आपके आदेशानुसार सब प्रबंध हो जायगा।" महाराज कर्णसिंह मेघसिंह के साथ चलने के लिये उद्यत हुए।

इसी समय महाराज वीरसिंह ने मंत्री अजितसिंह को आदेश दिया—"महाराज कर्णसिंह के पहुँचने से प्रथम ही मीलूगढ़ की सेना को कर्मागढ़ की सीमा से बाहर हो जाना चाहिये। सेनापति दलपति सिंह को भी उचित है कि महाराज को कर्मागढ़ का शासन भार सौंप कर शीघ्र से शीघ्र मीलूगढ़ के लिए प्रस्थान कर दें। मीलूगढ़ की विजय पताका कर्मा दुर्ग से हट जानी चाहिये। मीलूगढ़ और कर्मागढ़ के बीच से विजेता और विजित का भाव दूर होकर परस्पर मैत्री स्थापित हो।"

मंत्री अजितसिंह ने सिर झुका कर महाराज की आज्ञा शिरोधार्य करते हुए कहा—"जो आज्ञा।"

मेघसिंह, मंत्री तथा कर्णसिंह गम्भीरता पूर्वक दरबार भवन से बाहर हुए। दूसरे ही क्षण अरुणसिंह ने मुस्कुराते हुए दरबार भवन में प्रवेश किया।

❀ ❀ ❀

लगभग दो घड़ी रात बीत चुकी थी। महाराज कर्णसिंह के विश्राम की समुचित व्यवस्था करने के अनन्तर मेघसिंह दीयागढ़-नरेश के सम्मुख उपस्थित हुए। महाराज अरुणसिंह से

चम्पावाली घटना के सम्बन्ध में कुछ परामर्श कर रहे थे। मेघसिंह को देखते ही वीरसिंह ने पूछा—"क्यों मेघसिंह ! हम लोगों के चले आने के बाद उस लड़की ने तुम्हारे सामने मुँह खोला था ?" मेघसिंह ने उत्तर दिया—"नहीं महाराज, वह तो एक ही शैतान छोकरी है। केवल इतना कहती थी कि मैं कुछ भी नहीं जानती। स्त्री समझ कर मैंने उस पर किसी प्रकार का बल प्रयोग करना उचित नहीं समझा।" महाराज वीरसिंह ने कुछ विचार करते हुए कहा—"भला यदि एक बार वीरभद्र जी को बुला कर इस सम्बन्ध में कुछ जानने का प्रयत्न किया जाय तो कैसा रहे ?"

मेघसिंह अभी कुछ उत्तर देना ही चाहते थे कि द्वारपाल ने आकर कहा—"पुराने सरदार वीरभद्र जी फाटक पर खड़े हैं। वे सरकार से मिलना चाहते हैं।"

महाराज वीरसिंह ने भेदभरी दृष्टि से मेघसिंह की ओर देखते हुए कहा—"आश्चर्य है !" द्वारपाल को आदेश दिया—"आने दो" मेघसिंह ने विस्मयपूर्ण स्वर में कहा—"इस समय इनके आने का मतलब ? कहीं इन्हें कानोंकान कुछ भेद मालूम तो नहीं हो गया ?"

वीरसिंह ने निश्चयात्मक स्वर में कहा—"ऐसा तो हो ही नहीं सकता क्योंकि हम लोगों को छोड़ कर और किसी के कान में तो इस घटना की भनक तक नहीं पड़ी होगी।"

अरुणसिंह बोले—"देखिये अभी सब मालूम हुआ जाता

है।" क्षण भर बाद ही वीरभद्र ने अपनी लड़की सरला के साथ दरबार में प्रवेश किया। मेघसिंह विस्मय पूर्वक आँख फाड़ फाड़ कर देखने लगे। इस लड़की को तो वे अभी थोड़ी ही देर पहले यत्न पूर्वक एक गुप्त तहखाने में बन्द कर आये थे। फिर यह यहाँ कैसे आ गयी! महाराज वीरसिंह और अरुणसिंह भी इसी असमंजस में पड़े हुए थे।

महाराज का संकेत पाकर सरदार वीरभद्र ने हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाते हुए कहा—" महाराज! इस लड़की ने मेरे पुरखों की कीर्ति पर वह कालिख लगा दी है जो किसी प्रकार भी मेरे धोए न मिट सकेगी। मुझे इसने मुँह दिखाने लायक नहीं रक्खा।"

महाराज ने देखा वीरभद्र का स्वर काँप रहा था। उन्होंने कुछ आश्वासन देते हुए पूछा--"कहिये तो सही,बात क्या है?"

उन्होंने काँपते हुए कहा--"मेरी जीभ ऐंठी जा रही है महाराज! जान पड़ता है धरती मेरे पाँव के नीचे से सरक रही है। महाराज मुझे कठिन से कठिन दण्ड दें! ओह! राजकुमारी चन्द्रावती...महाराज...पापिन तुझे...जान पड़ता है मैं पागल हो जाऊँगा......"कहते हुये वे माथा थाम कर बैठ गये। मेघसिंह ने उन्हें फ़र्श पर गिरते गिरते सँभाला। उन्होंने देखा घोर मानसिक वेदना के कारण वीरभद्र की चेतना जाती रही है। महाराज का संकेत पाकर उन्हें वे बगल वाले कमरे में उठा ले

गये। सरला भी इस दृश्य से घबरा उठी। महाराज वीरसिंह ने कड़क कर उससे पूछा—"तू यहाँ कैसे आ पहुँची ?"

सरला ने हाथ जोड़ कर उत्तर दिया—"क्षमा करें महाराज! मैं सरला नहीं हूँ। बल्कि आपकी दासी चम्पा हूँ।" कहते हुए लड़की ने अपना चेहरा रगड़ डाला। महाराज ने देखा सचमुच उनके सामने चम्पा खड़ी है।

विस्मय विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखते हुए महाराज ने कहा—"हैं! चम्पा!...बात क्या है ?"

चम्पा ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया—"आप लोगों के चले आने के बाद मैं सरला का रूप बना कर कुमारी का भेद लेने के इरादे से सरदार वीरभद्र के यहाँ पहुँची। यद्यपि मेघसिंह जी ने उनकी राजभक्ति की काफ़ी प्रशंसा की थी तो भी मेरा सन्देह दूर न हुआ था। पर जब मैं उनके सामने गयी तो वे मुझसे इस प्रकार बात चीत करने लगे मानों मैं कई कई दिन बाद अकस्मात् मिली हूँ। इतना तो मुझे उनके व्यवहार से ही मालूम हो गया कि कुमारी के सम्बंध में वे निर्दोष हैं। फिर भी उनका मन टटोलने के लिए मैंने बातों बातों में कहा—'मेनकारानी की सहायता से शीघ्र ही दीयागढ़-नरेश को आपके अपमान का उचित उत्तर मिल जायगा।' मेरी बात सुन कर वे विस्मय पूर्वक मेरी ओर ताकते हुए कहने लगे—'आज तू कैसी बातें कर रही है? तुझे हो क्या गया है?' मैंने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—

'आप इसे झूठ न समझें। कुमारी चन्द्रावती की अवस्था आपकी आँखों के सामने है!' मेरे इतना कहते ही उनकी त्योरियाँ बदल गयीं। वे मुझे विश्वास घातिनी आदि नामों से पुकारते तथा अपने भाग्य को कोसते हुए अनेक प्रकार से धिक्कारने लगे। उनकी अवस्था देख कर मैं घबरा गयी। इतने से ही सन्तुष्ट न होकर वे मुझे आपके पास तक घसीट लाये!"

चम्पा की बात समाप्त होते ही अरुणसिंह के मुँह से निकल पड़ा "धन्य है! सरदार वीरभद्र की राजभक्ति सचमुच प्रशंसनीय है।"

महाराज का आदेश पाकर चम्पा चुपचाप अन्त:पुर की ओर चली गई। इधर मेघसिंह अनेक उपचारों द्वारा वीरभद्र जी की मानसिक उत्तेजना को शान्त करने के अनन्तर उन्हें लेकर फिर महाराज के सम्मुख उपस्थित हुए। महाराज ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—"वीरभद्र जी, आप उद्विग्न न हों। हमें आपके ऊपर पूरा विश्वास है। हम आपकी राजभक्ति से पूर्ण सन्तुष्ट हैं! यदि भूल से आपकी कन्या सचमुच ही हमारा कोई अनिष्ट कर बैठी होगी तो भी वह अबोध होने के कारण क्षम्य है। इस समय इतना हम आपको बता देना चाहते हैं कि आप जिस लड़की को अपने साथ लाये थे वह आपकी कन्या सरला नहीं थी वरन् एक ऐयारा थी। आपके अचेत होने पर वह प्रकट हुई और यथा स्थान भेज दी गयी। शायद

आप से किसी प्रकार की सहायता पाने की आशा में आपके पास गयी हो।"

महाराज की बात सुन कर सरदार वीरभद्र की उद्विग्नता बहुत कुछ कम हो गई उन्होंने प्रतिज्ञा की—"मैं शीघ्र ही अपनी कन्या को नवागढ़ से बुलाये लेता हूँ। इस घटना से मेरा हृदय घबरा रहा है।" महाराज ने कुछ उत्तर न दिया।

रात अधिक बीत चुकी थी। अतएव महाराज का संकेत पाकर सब लोग दरबार भवन से बाहर हुए।

पाँचवाँ परिच्छेद

"वह सराय ज़्यादा पुरानी है अथवा उसकी भठियारिन ?" इस प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर शायद नवागढ़ का बूढ़ा से बूढ़ा आदमी भी न दे सकता था। लोगों को यह समझने का कुछ अभ्यास सा होगया था कि वह सराय उस भठियारिन के ही लिये बनी थी और भठियारिन भी शायद उस सराय के ही लिये। परन्तु बुढ़िया के मन से इस प्रकार का भ्रम शायद धीरे धीरे दूर होने लगा था, इसीलिए वह अपनी अकेली लड़की को क्रमशः अपनी सारी कला सिखा डालने के लिए चिन्तित रहा करती थी। समय समय पर वह उसे अपने उत्तर दायित्व पूर्ण कर्तव्य की शिक्षा देती रहती थी। उत्तराधिकार-स्वरूप वह अपने सारे महत्वपूर्ण अनुभव अपनी प्यारी चन्दन को सौंप जाना चाहती थी ! पर उसकी चन्दन बड़ी अल्हड़ थी। छोटी छोटी बात पर वह

मुसाफिरों से उलझ पड़ती थी। बुढ़िया उसके इस स्वभाव को भलीभाँति जानती थी इसीलिए सन्ध्या को जब उसने सराय के द्वार पर किसी के झगड़ने का सा शब्द सुना तो भीतर ही से चन्दन को बुरा-भला चिल्लाती अपनी चिरसंगिनी कृष्ण लष्टिका के सहारे फाटक पर आ पहुँची। उसने देखा, चन्दन एक मुसाफिर को सराय दस बजे तक बन्द हो जाने की आवश्यकता समझा रही थी—"देखिये, यहाँ सभी प्रकार के आदमी आते हैं। रात बीते तक सराय खुली रहे, कोई चोर घुस आये तो........."

बुढ़िया ने इसी समय पहुँच कर चन्दन के व्याख्यान की शृंखला तोड़ दी। बोली—"चल चल ! बड़ी कानून बताने चली है। आदमी देखकर बात किया कर।"

वेष-भूषा से यात्री सम्पन्न जान पड़ता था। बुढ़िया का सिद्धान्त था कि चाँदी के आगे कोई ऐसा नियम नहीं जो शिथिल न किया जा सके।

यात्री को देखकर उसका हृदय आशा से भर गया। आगे बढ़ कर उसने कहा—"यह छोकड़ी नादान है। इसकी बात का बुरा न मानिएगा। कहाँ है आपका सामान ? यह तो आपका घर ही है !"

यात्री ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—"मैं तो इससे कहता ही था कि बुआ जी मुझे अच्छी तरह जानती हैं ! उनको खबर कर दो। पर यह मानती ही न थी।"

बुढ़िया की आँखों ने इस लम्बी अवस्था तक उसका साथ देना अस्वीकार कर दिया था। पर यात्री की आवाज़ पहिचानते उसे देर न लगी क्योंकि सारी शक्तियों के दग़ा दे जाने पर भी गहरे असामियों को न भूलने की क्षमता उसमें अब तक बनी ही थी। उसकी आँखें चमक उठीं। यात्री के सम्मान पूर्ण सम्बोधन से उसका हृदय प्रफुल्लित हो गया। उसने यात्री के कंधे पर हाथ रख कर ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखते हुए कहा—"तुम हो भैया ? आज बहुत दिन बाद दिखाई दिये ! मैं तो पहिचान ही न सकी थी। क्या करूँ भैया अब तो आँखों से भी लाचार हो गयी हूँ।" कहते कहते उसकी आँखों से पानी की दो बूँदें निकल कर उसके गालों की झुर्रियों में बिखर गयीं।

यात्री सचमुच कई बार पहले भी इस सराय में ठहर कर बुढ़िया को सन्तुष्ट कर चुका था। इसलिये जानता था कि बुढ़िया से किसी प्रकार हुज्जत न करनी पड़ेगी। उसने कहा—"मेरे लिए एक कमरा साफ़ करके रखना बुआ जी, मैं अभी काम से जा रहा हूँ। रात ग्यारह बजे तक लौट कर आऊँगा।"

चाँदी का एक सिक्का उसकी ओर बढ़ाकर उसने मुस्कुराते हुए कहा—"लो इसे सफाई करने वाली को दे देना।"

"इसकी अभी क्या ज़रूरत थी ?" कहते हुए उसने बिना किसी हिचकिचाहट के सिक्के को यत्न पूर्वक खोंस लिया। बोली "भला ऐसी क्या जल्दी है ? थके हुए आये हो, ज़रा पल भर

विश्राम तो कर लो !" यात्री को शायद बुढ़िया का आग्रह टालने का कोई विशेष कारण न दिखाई दिया। उसने बुढ़िया के पीछे पीछे सराय में प्रवेश किया।

सराय भीतर से उतनी ख़राब अवस्था में न थी जितनी बाहर से देखने वाले को जान पड़ती थी। कमरे छोटे होने पर भी हवादार थे। प्रधान द्वार के सामने ही एक बड़ा-सा कमरा था। उसके अगल बगल में चार चार छोटे कमरे थे। सराय का हाता काफ़ी जगह घेरे हुए था। साधारण दृष्टि से देखकर इतना तो अवश्य कहा जा सकता था कि बुढ़िया स्वच्छता आदि का कुछ न कुछ महत्व समझती थी। सराय का पूर्वी भाग इस समय बिलकुल ख़ाली था। यात्री ने इसी भाग में एक कमरा पसन्द किया। बुढ़िया का आदेश पाकर चन्दन ने झटपट प्रकाश की व्यवस्था कर दी। कमरे में एक पुरानी खटिया पड़ी थी। यात्री लम्बी यात्रा से थका हुआ था अतएव पर्यंक पुरातन के आकर्षण को वह न सँभाल सका और माथे का पसीना पोंछते हुए चुपचाप बैठ गया। बुढ़िया भी उसके सामने बैठ कर अतीत की व्यथा पूर्ण कथायें सुना सुना कर अपना जी हलका करने लगी। सराय का पश्चिमी भाग यात्री के आँखों के सामने था। सहसा उसके ठीक सामने वाले कमरे का द्वार खुला। कमरे के भीतर एक छोटा सा दीपक टिमटिमा रहा था। उसी के क्षीण प्रकाश में यात्री ने देखा एक विशाल काय संन्यासी ऊपर से

नीचे तक अपना सारा शरीर एक सफ़ेद चादर से लपेटे हुए द्वार पर खड़ा सशंक दृष्टि से इधर-उधर देख रहा है। यात्री संन्यासी को देखते ही चौंक पड़ा। बुढ़िया की अनन्त कथा में विक्षेप डालते हुए वह पूछ बैठा—"सराय में इस समय कोई और भी ठहरा है?" बुढ़ियाने पीछे की ओर घूम कर देखते हुए कहा—"हाँ, उधर कल रात से एक बाबा जी ठहरे हुए हैं। बेचारे बड़ी रात बीते पहुँचे थे। बोझेके कारण बिलकुल थक गये थे। आज कल मैं रात को फाटक के पास वाली कोठरी में ही सोया करती हूँ। इसीलिए आवाज़ सुन कर दरवाज़ा खोल दिया था। नहीं तो बेचारे......"

यात्री ने बुढ़िया की बात काटते हुए पूछा—"बोझा कैसा?"

बुढ़िया ने ज़ोर देकर कहा—"हाँ! पीठ पर एक बहुत बड़ी गठरी लादे थे। तभी तो बेचारे बिलकुल थक गये थे।" यात्री ने देखा बड़े कमरे से निकल कर चन्दन धीरे धीरे उसी ओर जा रही है। संन्यासी ने संकेत द्वारा उसे अपने पास बुलाकर धीरे धीरे कुछ कहा। चन्दन फिर उसी बड़े कमरे की ओर लौट पड़ी। संन्यासी अपने कमरे में ताला डालकर सराय के फाटक की ओर अग्रसर हुआ। क्षणभर बाद ही चन्दन ने उसीके कमरे में आकर बुढ़िया को सूचित किया—"बाबा जी बाहर जा रहे हैं। कह गये हैं रात को फाटक खुला रखना, शायद लौटने में देर हो जाय।"

बुढ़िया ने सिर हिलाकर कहा—"अच्छा।"

यात्री यकायक उठ खड़ा हुआ। बोला—"मैं भी जाता हूँ। देरी हो रही है।" कहता हुआ बुढ़िया के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह भी संन्यासी के पीछे ही पीछे फाटक से बाहर हुआ।

सराय नवागढ़ बस्ती के पश्चिमी किनारे पर बनी हुई थी। यात्री ने चंद्रमा के क्षीण प्रकाश में देखा संन्यासी धीरे धीरे सामने वाली टेकड़ी की ओर अग्रसर हो रहा है। यात्री ने वृक्षों की छाया में सावधानी के साथ अपने आपको छिपाते हुए संन्यासी का अनुसरण किया। टेकड़ी के निकट पहुँच कर संन्यासी आम के एक वृक्ष पर चढ़ गया। सहसा वृक्ष पर पत्तियों की खड़खड़ाहट का सा शब्द सुनाई दिया। क्षण भर बाद ही फिर निस्तब्धता छा गयी। यात्री लगभग सौ गज़ के अंतर पर एक झाड़ी की आड़ में अपने आपको छिपाये हुए संन्यासी की गतिविधि का निरीक्षण कर रहा था। लगभग घंटा भर बाद टेकड़ी की ओर से किसी के गुनगुनाने का सा शब्द सुनाई दिया। शब्द प्रतिक्षण और भी स्पष्ट होता गया। यात्री ने सुना कोई अत्यंत करुण स्वर में मानो गा रहा था—

"हे हरि ! अब कब लौं भरमैहो !"

यात्री आँखें गड़ा कर टेकड़ी की ओर देखने लगा। धीरे धीरे उसे टेकड़ी के शिखर पर किसी पुरुष की धुँधली-सी छाया

प्रकट होती दिखाई दी। उसे ऐसा जान पड़ने लगा मानों कोई व्यक्ति टेकड़ी पर गुनगुनाता हुआ टहल रहा है। इधर आम के उस वृक्ष पर फिर से पत्तों की खड़खड़ाहट का सा शब्द सुनाई दिया। साथ ही एक पुरुष नीचे उतरता हुआ दिखाई पड़ा। परन्तु वह पुरुष संन्यासी न था। यात्री के आश्चर्य की सीमा न रही। वह हैरान था कि यह दूसरा व्यक्ति कौन है! साँस थाम कर वह समस्त व्यापार देखने लगा। वृक्ष से उतर कर वह पुरुष टेकड़ी की ओर अग्रसर हुआ। यात्री ने भी सतर्कता के साथ उसका अनुसरण किया। देखते ही देखते वह पुरुष टेकड़ी के शिखर पर जा पहुँचा। यात्री पत्थर की सुदृढ़ चट्टानों पर सरकता हुआ शिखर के कुछ ही नीचे तक चला गया। और एक बड़ी सी चट्टान में छिप कर बैठ गया। उसने देखा टेकड़ी के ऊपर एक साधू इधर उधर टहलता हुआ चाँदनी से धुले वायुमण्डल को अपने करुण गीत से प्रकम्पित कर रहा था। अपरिचित पुरुष निस्सं-कोच भाव से उस साधू के सम्मुख जा खड़ा हुआ। साधू मानो उसके लिये पहले ही से प्रतीक्षा कर रहा था। आगन्तुक के कंधे पर हाथ रख कर उसने धीरे से कहा—"कहिये आपको किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं हुआ?"

आगन्तुक ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया--"जिस काम के लिये मैं अपने प्राणों को ही हथेली पर लिये घूम रहा हूँ उसमें साधा-रण कष्ट का विचार कैसा?"

साधू ने मुस्कुराते हुए कहा—"यद्यपि मुझे आप पर कोई सन्देह नहीं है तो भी यदि एक बार आपका परिचय जानना चाहूँ तो क्या हर्ज है ?"

आगन्तुक ने इस प्रश्न के उत्तर में न जाने क्या शब्द कहा, यात्री उसे न समझ सका।

साधू ने गम्भीरता पूर्वक कहा—"मैं आपको यदि आँखों पर पट्टी बाँधने के लिये कहूँ तो अप्रसन्न तो न होंगे ?" आगन्तुक ने सिर हिला कर स्वीकृति दी। साधू ने उसकी आँखों पर मजबूती के साथ एक काली पट्टी बाँध कर पूछा—"आप तैयार हैं न ?"

"एकदम" आगन्तुक ने उत्तर दिया।

पलक मारते दोनों अकस्मात् उसी टेकड़ी में अन्तर्द्धान हो गये। विस्मय-विस्फारित नेत्रों से यात्री समस्त व्यापार देख रहा था। एक बार उसकी इच्छा हुई कि दोनों को अपने अधिकार में कर लेने का प्रयत्न करे परन्तु साधू के व्यक्तित्व ने उसे ऐसा कुछ प्रभावित कर दिया था कि उसके साथ छल करने का उसे साहस ही न हुआ। और सारा काम इतनी जल्दी समाप्त हो गया कि यात्री को विचार करने का अवसर भी न मिल सका।

यात्री ने शिखर पर पहुँच कर इस रहस्य का अनुसन्धान करना चाहा परन्तु वह कुछ भी न समझ सका। जिस जगह पर वे दोनों अन्तर्द्धान हुए थे उस जगह एक बड़ी चट्टान के

अतिरिक्त उसे कुछ न दिखाई दिया। चट्टान के आस-पास द्वार का कहीं चिह्न तक न था।

यात्री हताश होकर लौट पड़ा। आम के उस वृक्ष के नीचे पहुँच कर वह एक विचित्र बत्ती की सहायता से ऊपर का हाल देखने का प्रयत्न करने लगा। सहसा उसकी दृष्टि एक बड़ी सी डाल से बँधे हुए एक व्यक्ति पर पड़ी। परिवर्द्धित कौतूहल के साथ वह वृक्ष पर चढ़ गया। ऊपर पहुँच कर उसने देखा वही संन्यासी अचेतावस्था में बँधा पड़ा है। यात्री ने उसे खोल कर सावधानी के साथ नीचे उतारा। एक सफ़ेद चादर में उसे अच्छी तरह बाँध कर वह सराय की ओर ले चला। चन्दन अभी तक फाटक पर उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। यात्री बिना कुछ कहे सुने गठरी पीठ पर लादे हुए अपने कमरे की ओर अग्रसर हुआ। कमरा इस समय तक साफ़ किया जा चुका था। यात्री ने गठरी नीचे रख कर खोल डाली और संन्यासी को खटिया पर लिटा कर एक तरल सी दवा सुँघा दी। इस ओर से निश्चिन्त होकर वह कमरे से बाहर निकल आया, और कमरे के द्वार पर एक मज़बूत ताला डाल कर वह फिर फाटक पर जा पहुँचा। चन्दन बैठी हुई शायद बाबा जी की प्रतीक्षा कर रही थी। यात्री ने चन्दन के समीप जाकर कहा—"एक जरूरी काम से मुझे फिर बाहर जाना पड़ रहा है। अगर देर हो जायगी तो फाटक खट-खटा कर जगा लूँगा।" चंदन ने सिर हिला दिया। यात्री लप-

कता हुआ उसी टेकड़ी की ओर चल पड़ा। आम के वृक्ष के नीचे एक प्रकार का पानी सा छिड़क कर वह कुछ दूर हट गया और टेकड़ी के शिखर पर अपनी दृष्टि गड़ाये हुए चुपचाप एक झाड़ी के भीतर जा बैठा। लगभग घंटा भर बाद उसे फिर टेकड़ी पर किसी पुरुष की छाया प्रकट होती दिखाई दी। यात्री ने देखा एक पुरुष टेकड़ी के गर्भ से निकल कर तेज़ी के साथ उसी आम के वृक्ष की ओर अग्रसर हो रहा है। देखते ही देखते आगन्तुक आम की घनी छाया के बीच अदृश्य हो गया। क्षण भर के बाद एक हलका सा धमाका हुआ। यात्री नाक में एक रूमाल दाबे हुए झटपट वहाँ जा पहुँचा। उसने देखा आगन्तुक बेसुध पड़ा है। उसे चादर में समेट कर वह फिर सराय की ओर लौट पड़ा। अपने कमरे में पहुँच कर उसने भीतर से द्वार बन्द कर लिया, और गठरी खोल कर आगन्तुक को पहिचानने का प्रयत्न करने लगा। परन्तु उसने इस पुरुष को पहले कभी न देखा था। यात्री ने विचार किया कहीं यह छद्म-वेश में तो नहीं है? उसने अपनी जेब से एक लाल लाल शीशी निकाली और एक तरल पदार्थ की दो तीन बूँदें उस पुरुष के चेहरे पर डाल कर उसने ज़ोर ज़ोर से रगड़ना आरम्भ किया। देखते ही देखते उसका कृत्रिम रंग उतर गया। उसके वास्तविक रूप को देखते ही यात्री चौंक पड़ा। अस्फुट स्वर में उसके मुँह से यकायक निकल पड़ा "हैं रणसिंह यहाँ कैसे आ पहुँचे? कैसा धोखा हो गया!"

अधिक विलम्ब किये बिना यात्री ने एक भीगा हुआ रूमाल उनकी नाक पर रख दिया। क्षण भर बाद ही वे आँखें मलते हुए उठ बैठे और आँखें फाड़ फाड़ कर यात्री की ओर देखते हुए कहने लगे—"कौन? मेघसिंह! आप यहाँ? मैं इस समय कहाँ पर हूँ? आम के वृक्ष के नीचे कैसी दुर्गन्ध आ रही थी? ओह! अब तक माथा घूम रहा है।"

मेघसिंह ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया—"क्षमा कीजिएगा। मैं ही धोखे में आप के ऊपर वार कर बैठा। पर अब कोई चिन्ता की बात नहीं है हम लोग नवागढ़ की एक सराय में हैं।" इसके बाद मेघसिंह ने पिछली रात वाली घटनाओं का हाल संक्षेप में सुनाते हुए कहा—"मैं जानता था कि आप अपने शिकार की खोज में उस आम के नीचे तक अवश्य जाँयगे इसीलिए मैंने आप को गिरफ़ार करने का यह प्रबंध किया।"

"और वह संन्यासी जिसे मैंने वृक्ष पर बाँध रक्खा था?" रणसिंह ने उत्सुकता के साथ पूछा।

मेघसिंह ने उत्तर दिया "वह भी इस समय मेरे अधिकार में है। वह देखिये···" कहते हुये उन्होंने खटिया की ओर संकेत किया। रणसिंह ने देखा संन्यासी अब तक बेसुध पड़ा है। मेघसिंह कहने लगे "यह संन्यासी भी किसी धुन में ही यहाँ आया है! पर आप उस टेकड़ी में अपने अन्तर्द्धान होने का रहस्य तो बताइए! और वह साधू कौन था? महाराज चन्द्र-

सिंह का कोई समाचार आपने सुना ? मुझे तो विश्वस्तसूत्र से मालूम हुआ है कि महाराज चंद्रसिंह संबन्धी घटना में नवागढ़ की रानी मेनका का कुछ न कुछ हाथ अवश्य है।"

रणसिंह ने गम्भीरता पूर्वक उत्तर दिया—"आपका अनुमान ग़लत नहीं है। आप को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मैं अभी अभी महाराज चन्द्रसिंह से मिलकर ही आ रहा हूँ।"

मेघसिंह ने चौंक कर कहा—"हैं, आप किसी स्वप्न की बात तो नहीं कर रहे हैं ?"

रणसिंह ने मुस्कुराते हुए दृढ़ता के साथ कहा—"नहीं भाई, मैंने साक्षात् महाराज से बातचीत की है। मेनकारानी ने उन्हें तिलिस्मी कारागार में बन्द कर रक्खा है !"

मेघसिंह के कौतूहल की सीमा न रही। जड़ीभूत से होकर वे कई क्षणों तक रणसिंह की ओर देखते रहे। रणसिंह ने मुस्कुराते हुए कहा—"आपको मेरी बातों में कुछ सन्देह है ? अच्छा इस पत्र को देखिये।" कहते हुए एक लिफ़ाफ़ा उन्होंने मेघसिंह की ओर बढ़ाया। लिफ़ाफ़े पर महाराज वीरसिंह का नाम लिखा हुआ था। मेघसिंह ने पहिचाना अक्षर ठीक महाराज चन्द्रसिंह के से थे। उन्होंने कुछ अधीर होकर कहा—"अब अधिक पहेली न बुझाइये। साफ़ साफ़ बतलाइए तो सही। मामला क्या है ?" रणसिंह ने लम्बी साँस लेकर गम्भीरता पूर्वक कहना आरम्भ किया—"कर्मागढ़में महाराज के अन्तर्द्धान

हो जाने के बाद मैं रात दिन चिन्तित रहने लगा। सरदार बहादुरसिंह ने मुझे मीलूगढ़ चले जाने की सलाह दी थी परन्तु महाराज चंद्रसिंह का अनुसंधान किये बिना मीलूगढ़ चले जाना मुझे अनुचित जान पड़ा। आपको मालूम है कि पहले मैं भी थोड़ी-बहुत ऐयारी करता रहा हूँ। परंतु एक बार एक विशेष प्रकार का प्रसङ्ग उपस्थित हो जाने के कारण मुझे प्रतिज्ञा करनी पड़ी थी कि जब तक स्वयं महाराज चंद्रसिंह पर ही कोई विपत्ति न आ पड़ेगी तब तक मैं ऐयारी न करूँगा। कर्मागढ़ संग्राम के बाद जो घटना संघटित हुई उसने मेरे इस प्रतिबन्ध को भी उठा दिया। अतएव एक बार अपनी पूरी शक्ति तौल देखना और भी आवश्यक जान पड़ा। परन्तु सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि महाराज चन्द्रसिंह संबन्धी रहस्यपूर्ण घटना का एक भी सूत्र मुझे दिखाई न देता था। आप लोगों से अलग होने के बाद भी मैं कर्मागढ़ के ही आस-पास चक्कर काटता रहा। परसों की रात मैंने कर्मागढ़ के उत्तर ओर वाले निर्जन वन में एक पुराने टूटे हुए मन्दिर की जगत पर बिताई। सवेरे उठने पर मुझे अपने सिरहाने एक सफेद लिफाफा रक्खा हुआ मिला। कौतूहल के साथ मैंने लिफाफा फाड़ डाला। भीतर एक पत्र था। उसमें लिखा था—

"रणसिंह जी,

मैं भली भाँति जानता हूँ कि महाराज चंद्रसिंह के अदृश्य

हो जाने के कारण आप अत्यंत चिन्तित हो रहे हैं परन्तु मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ कि महाराज सानंद हैं। कोई उनका कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकता। हाँ, आपसे एक अत्यंत आवश्यक काम है। अतएव आप जहाँ कहीं भी हों क्षण भर विलम्ब किये बिना नवागढ़ के लिये प्रस्थान कर दीजिये। नवागढ़ पहुँचने पर आप को मेरा अनुचर मिलेगा। उसके आदेशानुसार काम कीजिएगा। वह आपको अपना नाम 'नर कंकाल' बतलायेगा। आपको इन पंक्तियों के सम्बन्ध में यदि किसी प्रकार का सन्देह होगा तो वह भी नवागढ़ पहुँचने पर दूर हो जायगा।

आपका—एक हित चिंतक

इस पत्र को पढ़ कर मैं बड़े असमंजस में पड़ गया। सोचने लगा कोई जाल तो नहीं है! पत्र लेखक का मुझे नवागढ़ बुलाने में क्या अभिप्राय हो सकता है! महाराज चंद्रसिंह कहीं नवागढ़ में ही तो नहीं जा फँसे हैं! सहसा पिछले कई वर्षों की कुछ ऐसी घटनायें मुझे स्मरण हो आईं जिनके कारण मुझे विश्वास सा होने लगा कि इन घटनाओं में नवागढ़ की अधीश्वरी मेनकारानी का हाथ अवश्य है! मैं विचार करने लगा कि कहीं मुझे भी फँसाने के लिये उसीने तो कोई यह नया जाल नहीं रचा है? फिर भी दुर्भेद्य अन्धकार के बीच प्रकाश की एक रेखा पाकर मुझे प्रसन्नता हुई। इसी किरण-पथ का अनुसरण करते हुए मैं उसी क्षण छद्म-वेश में नवागढ़ के लिये चल पड़ा। नवागढ़ बस्ती

की दक्षिणी सीमा पर एक सूखा हुआ नाला है। यह नाला इतना गहरा है कि भरी हुई अवस्था में हाथी भी डूब जाय परन्तु प्रायः सूखा ही रहता है। मैं इस नाले को पार करके बाहर निकला ही था कि एक नक़ाबपोश अश्वारोही बाईं ओर से दौड़ता हुआ मेरे समीप आ पहुँचा और 'रणसिंह आप ही का नाम है न?' कहता हुआ घोड़े से उतर पड़ा। मैं हैरान था कि छद्म-वेश में भी मुझे पहिचान लेने वाला यह कौन व्यक्ति है? मैं असमंजस में पड़ गया। परन्तु मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह फिर बोल उठा—'मेरा नाम इस समय नर कंकाल है। मेरे पास आपके नाम का एक यह पत्र है!'

मैंने बिना कुछ कहे-सुने उसके हाथ से पत्र ले लिया। उसमें लिखा था—

'नर कंकाल पर विश्वास करते हुए उनके आदेश का पालन करना—चंद्रसिंह।'

पत्र के अक्षर निस्सन्देह महाराज चन्द्रसिंह के थे। मेरे कौतूहल का ठिकाना न रहा। मैंने उत्सुकता पूर्वक नर कंकाल से पूछा—'तब कहिये आपका क्या आदेश है?'

अश्वारोही ने धीरे से कहा—'नवागढ़ के पश्चिम ओर-वाली टेकड़ी पर रात के समय एक साधू आपकी प्रतीक्षा करेगा। उससे मिलने पर आप अपना परिचय 'बहुरंगी' कह कर दीजियेगा। आज ही रात को आप महाराज चंद्रसिंह से मिल

सकेंगे।' एक ही साँस में सारी बातें कह कर अश्वारोही एक ओर चल दिया। मैं विस्मित आँखों से उसकी ओर देखता ही रह गया। संध्या होते ही मैं आम के उस वृक्ष पर जा बैठा। मैं साधू के लिये प्रतीक्षा कर ही रहा था कि एक व्यक्ति को मैंने वृक्ष के ऊपर चढ़ते देखा। दवाइयों की सहायता से उसे अपने अधिकार में लाकर मैंने डाल से बाँध दिया। इसके बाद जो कुछ हुआ वह तुम जानते ही हो..."

मेघसिंह ने पूछा—"पर वह साधू कौन था? और महाराज चंद्रसिंह से तुम किस प्रकार मिल सके?"

रणसिंह ने उत्तर दिया—"वह साधू तो मेरे लिये भी एक पहेली है। मैंने उसे आज से पहले कभी नहीं देखा था। भीतर मैं किस प्रकार पहुँचा? यह भी मुझे नहीं मालूम। मेरी आँखों पर पट्टी बँधी हुई थी। लगभग पाव घंटे की अद्भुत यात्रा के बाद जब मेरी पट्टी खोली गयी तब मैंने देखा मैं एक छोटे से कमरे में खड़ा हूँ। इस कमरे में मोटे मोटे छड़ों वाली एक बड़ी सी खिड़की थी। इस खिड़की के सामने से लगभग दो फुट चौड़ी एक गली सी निकली हुई थी। गली के उस पार एक और कमरा था। उस कमरे में भी एक वैसी ही खिड़की गली की ओर खुली हुई थी। दोनों खिड़कियाँ एक दूसरे के आमने सामने बनी हुई थीं। इधर मैं खड़ा हुआ था और उधर उस सामने वाली खिड़की पर महाराज चंद्रसिंह खड़े थे। हम दोनों के बीच लगभग गज़ भर का अन्तर

था तो भी खिड़कियों की मोटी मोटी छड़ें हम लोगों को एक दूसरे से अलग कर रही थीं। लगभग पाँच मिनट तक मैं वहीं खड़ा महाराज से बातचीत करता रहा। एक छोटी सी छड़ी के सिरे पर बाँध कर उन्होंने यह पत्र मेरी ओर बढ़ा दिया। थोड़ी ही देर बाद मैंने देखा लोहे की एक मोटी चादर उस बीच वाली गली में धीरे धीरे ऊपर से नीचे की ओर सरक रही है। देखते ही देखते दोनों खिड़कियों के बीच इस व्यवधान ने आकर हम लोगों की बातचीत की शृंखला तोड़ दी। मैंने पीछे घूम कर देखा। वही साधू खड़ा मुस्कुरा रहा था। उसने कहा--'अब अधिक देर तक ठहरना विपत्ति से खाली नहीं है। यह तिलिस्मी गोरखधन्धा है। इसलिए झटपट बाहर निकल जाने के लिये तैयार हो जाइये।' कहते हुए उसने फिर मेरी आँखों में पट्टी बाँध दी। लगभग पाव घंटे के बाद मुझे ऐसा जान पड़ा मानों एक विचित्र प्रकार के यंत्र ने मुझे उठाकर धीरे से टेकड़ी वाली उस चट्टानपर लिटा दिया हो।"

मेघसिंह आश्चर्य-चकित होकर रणसिंह की बातें सुन रहे थे। उनकी समझ में न आता था कि यह रहस्यपूर्ण साधू है कौन जो इस प्रकार उनकी सहायता करने के लिये तत्परता दिखा रहा है। कुछ क्षणों तक मौन और स्तम्भित रहने के उपरान्त उन्होंने पूछा—"परन्तु एक बात समझ में नहीं आती। और वह यह कि ऐसे शक्ति सम्पन्न सहायक के रहते भी आपने महाराज की मुक्ति का कोई उपाय नहीं किया!"

रणसिंह ने उत्तर दिया—"मैंने भी साधू से यही शंका की थी परन्तु उसने मुस्कुराते हुए केवल इतना ही कहा कि तिलिस्मी कामों में हाथ डालना उतना सहज नहीं है जितना आप समझ रहे हैं। आप अपना काम करते जाइए। परन्तु सावधानी के साथ! समय पर परिस्थिति को स्वयं समझने लगेंगे।"

मेघसिंह ने सशंकित हृदय से पूछा—"आपने कुमारी चन्द्रावती का भी कोई समाचार सुना?"

रणसिंह बोल उठे—"हाँ, हाँ मैं तो भूल ही गया था। मैं स्वयं इस सम्बन्ध में आप से पूछना चाहता था। महाराज चन्द्रसिंह ने केवल इतना कहा था कि कुमारी भी इसी गोरखधन्धे में फँसी हुई हैं। मैं और अधिक पूछना ही चाहता था कि लोहे की उस दीवार ने बीच में आकर बातों का क्रम भंग कर दिया। मैंने साधू से भी इस सम्बन्ध में पूछना चाहा परन्तु उसने कोई उत्तर न दिया।"

मेघसिंह ने कहा—"तब जान पड़ता है हम लोगों का अनुमान ठीक है। इधर कुमारी एक विचित्र घटना के फेर में पड़ गयी हैं।" मेघसिंह ने महाराज कर्णसिंह तथा राजकुमारी चन्द्रावती से संबन्ध रखने वाली सारी घटनाएँ क्रमशः कह सुनाईं। अन्त में उन्होंने कहा—"उन्हीं की खोज में मैं यहाँ तक आया हूँ।"

रणसिंह ने बातों का सिलसिला बदलते हुए कहा—"परन्तु यह सन्यासी कौन है और यहाँ किस इरादे से आया है ?"

मेघसिंह ने दरवाजे की ओर देखते हुए कहा—"मैं इसे अच्छी तरह जानता हूँ। जरूर यह दुष्ट किसी भारी मतलब से ही यहाँ घूम रहा होगा। इसी सराय में उस सामने वाले कमरे में ठहरा हुआ है। इसके कमरे की भी तलाशी लेनी है। सराय की बुढ़िया भठियारिन के कहने से मुझे मालूम हुआ है कि इसके पास कोई न कोई क़ैदी भी है। बुढ़िया ने उसे एक भारी गठरी लेकर आते देखा था।" कहते हुए मेघसिंह उठ खड़े हुये, और कमरे का द्वार खोल कर बाहर की ओर देखने लगे। सराय में चारों ओर सन्नाटा था। बेसुध सन्यासी की जेब से खोज कर उन्होंने एक छोटी सी चाभी निकाली और रणसिंह को साथ लेकर दबे पाँव उसके कमरे की ओर अग्रसर हुए। कमरे का द्वार खोलते ही उनकी दृष्टि पलँग पर सोये हुए एक व्यक्ति पर पड़ी। मेघसिंह उसे देखते ही चौंक कर दो क़दम पीछे हट गये।

रणसिंह ने कौतूहल के साथ कुछ आगे बढ़ कर धीरे से पूछा—"क्यों क्या बात है ? इस पुरुष को आप पहिचानते हैं !"

मेघसिंह ने उनकी बात का कोई उत्तर दिये बिना उनका बाँया हाथ ज़ोर से दबा कर उन्हें मौन रहने का संकेत किया। क्षण भर एक टक उसकी ओर देखते रहने के अनन्तर उन्होंने

आगे झुककर उस पुरुष की साँस की परीक्षा की और रणसिंह की ओर घूम कर सन्तोष सूचक स्वर में कहा--"कोई चिन्ता की बात नहीं, बेचारा बेसुध पड़ा है। अभी कम से कम घंटे भर की छुट्टी है।"

रणसिंह ने विस्मय सूचक स्वर में पूछा—"आखिर कुछ बताइये तो सही। यह है कौन ?"

मेघसिंह ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—"नवागढ़ का वर्तमान शासक !"

"नवागढ़ का वर्तमान शासक ?" रणसिंह ने आश्चर्य के साथ दोहराया।

मेघसिंह ने ज़ोर देकर कहा—"मेनकारानी स्वयं जिसकी मुट्ठी में हों उस पुरुष को और क्या कहना चाहिये ?"

रणसिंह ने विस्मय भरे नेत्रों से उस सुन्दर युवक की ओर देखते हुए पूछा--"तब क्या मन्मथ सिंह यही हैं।"

मेघसिंह ने सिर हिलाते हुये कहा—"जी हां, जान पड़ता है आपने भी इनके संबन्ध में कुछ न कुछ सुना है !"

रणसिंह ने उत्तर दिया--"बहुत कुछ ! परन्तु आश्चर्य है कि यह इस सन्यासी के चक्कर में कैसे पड़ गये !"

रणसिंह की बात का उत्तर दिये बिना मेघसिंह सावधानी के साथ मन्मथ सिंह की जेबें टटोलने लगे। परन्तु उन्हें कोई उल्लेख योग्य सामग्री न मिल सकी। हताश होकर रणसिंह

की ओर देखते हुये उन्होंने कहा—"सचमुच संन्यासी के हाथ में इनका फँस जाना आश्चर्य-जनक है। इन दोनों की इस नोक-झोंक का कोई कारण भी समझ में नहीं आता।"

सहसा रणसिंह बोल उठे—"लाइये मैं आप को रँग कर मन्मथसिंह से मुलाकात करने योग्य बनाये देता हूँ। सुजनसिंह को तो आप जानते होंगे ?"

"कौन सुजनसिंह ? नवागढ़ के प्रधान ऐयार ?" मेघसिंह ने जिज्ञासा की "नाम तो ज़रूर सुना है परन्तु देखा तो नहीं है।"

"मुझे जिस रूप में आप ने पाया था वह सुजनसिंह का ही रूप था। साधु के आदेशानुसार मैंने वह वेष धारण किया था।" कहते हुए रणसिंह ने क्षणभर में ही मेघसिंह के चेहरे को अनेक प्रकार के रंगों से रंग कर उन्हें सुजनसिंह के रूप में परिवर्तित कर दिया। और स्वयं कमरे से बाहर जाते हुए उन्होंने कहा—"अब आप इन्हें होश में लाकर कुछ पता लगाने का प्रयत्न कीजिये।" मेघसिंह ने उनके आदेशानुसार कमरे का द्वार बन्द करने के उपरान्त मन्मथसिंह को होश में लाने का उपक्रम किया। उनकी अचूक औषधि ने शीघ्र ही अपना यथेच्छ प्रभाव दिखाया और मन्मथसिंह आँखें मलते हुए उठ बैठे। अपने सामने सुजनसिंह को देख कर उन्होंने विस्मयभरे स्वर में पूछा—"कौन ? सुजनसिंह ? मैं कितनी देर से बेसुध पड़ा हुआ हूँ !"

मेघसिंह ने कहा—"शायद काफ़ी देर से। पर आप इस चक्कर में फँस कैसे गये!"

मन्मथसिंह ने सिर खुजलाते हुए उत्तर दिया—"उसी दुष्ट साधू की खोज में निकला था परन्तु हाथ में आकर निकल गया। उसी टेकड़ी पर बैठा हुआ वह गुनगुना रहा था मैंने मौक़ा ताक कर उसकी ओर एक गोला चलाया। वह बेसुध होकर चट्टान पर लेट गया। परन्तु उसी समय न जाने किधर से उसका एक साथी निकल पड़ा और उसे समेट कर एक ओर चल दिया। मैंने उसका पीछा करना चाहा पर कुछ ही दूर जाकर किसी तेज़ दवा के प्रभाव से बेहोश होकर गिर पड़ा। और उसके बाद अभी आँखें खोल रहा हूँ। देह में ऐसी पीड़ा हो रही है मानो दो दिन से पड़ा सो रहा हूँ। पर तुमने मुझे किस अवस्था में पाया?"

मेघसिंह ने उत्तर दिया—"मेनकारानी आपके लिये अत्यन्त चिन्तित हो रहीं थीं! उन्होंने ही मुझे आपकी खोज में भेजा था। अभी थोड़ी ही देर पहले मैंने आपको एक घनी झाड़ी के भीतर पड़ा हुआ पाया। इस समय आप उसी टेकड़ी के पास वाली..."

मेघसिंह अभी अपना वाक्य पूरा भी न कर पाये थे कि सहसा किसी ने द्वार पर बड़े ज़ोर से धक्का मारा। दोनों ने चौंक कर द्वार की ओर देखा। एक और धक्का और उसके बाद किसी स्त्री के घिघियाने का शब्द—"ज़रा खोलिये

तो सही !" उन्हें ऐसा जान पड़ा मानों कोई व्यक्ति चिल्लाने वाली स्त्री का मुँह दाब कर उसे बोलने से रोक रहा है। क्षण भर बाद फिर पूर्ववत् शान्ति छा गयी।

"आप ठहरिये, मैं देखता हूँ क्या मामला है।" कहते हुए मेघसिंह दरवाज़ा खोल कर बाहर निकले। उन्होंने देखा—चन्दन फर्श पर बेसुध पड़ी है। दालान के दूसरे छोर पर खड़े हुए रणसिंह उन्हें सङ्केत द्वारा अपनी ओर बुला रहे हैं। वे सीधे रणसिंह के समीप जा पहुँचे। रणसिंह ने न जाने उनके कान में क्या कहा। दोनों पलक मारते बीच वाले बड़े कमरे में जाकर अदृश्य हो गये।

❀ ❀ ❀

लगभग एक मिनट तक सुजनसिंह के लिये प्रतीक्षा करते रहने के बाद मन्मथसिंह अधीर होकर बाहर निकले। पर सुजनसिंह का कहीं पता न था। दीवार के पास केवल एक स्त्री बेसुध पड़ी थी। उन्होंने घबरा कर पुकारा 'सुजनसिंह !' सराय की दीवारों से टकरा कर उनकी आवाज़ लौट आई। उनके आश्चर्य की सीमा न रही। एक बार और पुकारा 'सुजनसिंह !' क्षण भर बाद कुछ दूर पर किसी की आवाज़ सुनाई दी—"अभी आया।"

कौतूहल से भरे हुए मन्मथसिंह इधर उधर ताक ही रहे थे कि सामने से सुजनसिंह फाटक फाँद कर आते दिखाई दिये।

मन्मथसिंह ने उत्सुकता पूर्वक आगे बढ़ कर पूछा—"आप कहाँ चले गये थे !"

सुजनसिंह ने विस्मय-सूचक स्वर में उत्तर दिया--"कहाँ ? मैं तो अभी अभी ललिता का पत्र पाकर राज भवन की ओर से चला आ रहा हूँ ! पर आप यहाँ कैसे !"

मन्मथसिंह ने स्तम्भित होकर कहा—"तब क्या मैं अभी अभी जिन सुजनसिंह से बातें कर रहा था वह तुम नहीं थे ?"
"आपसे तो मेरी इधर दो दिन से मुलाक़ात ही नहीं हुई !" सुजनसिंह ने उत्तर दिया "क्या ललिता आपको मिली थी ?"

मन्मथसिंह ने कहा—"नहीं, एक अपरिचित स्त्री ज़रूर उस कोने में पड़ी है !" कहते हुए सुजनसिंह को लेकर वे उस स्त्री के समीप जा पहुँचे। सुजनसिंह ने एक तरल ओषधि के दो तीन बूँद उसके चेहरे पर डाल कर रगड़ दिये।

मन्मथसिंह ने देखा स्त्री और कोई नहीं नवागढ़ की ऐयारा ललिता ही है। अधिक समय नष्ट किये बिना सुजनसिंह ने उसे होश में लाने का उपक्रम किया। ललिता अर्द्धचेतनावस्था में बड़बड़ाने लगी—"आपके साथ छल किया जा रहा है ! सावधान !" क्षण भर बाद वह आँखें मलती हुई उठ बैठी और आश्चर्य्य भरी चितवन से इधर-उधर देखने लगी।

उसे होश में आते देख कर सुजनसिंह ने कहा--"क्या बात है ललिता तूने मुझे बुलाया था न ?"

मन्मथसिंह को सामने देख कर ललिता उठ खड़ी हुई और सुजनसिंह के प्रश्न का उत्तर दिये विना पूछने लगी--'आप जिस ऐयार से अभी अभी वातें कर रहे थे वह......।'

मन्मथसिंह बोल उठे—"वह तो न जाने कहाँ गायब हो गया !" माथे पर हाथ रख कर ललिता ने कहना आरम्भ किया—"ओह ! अभी तक सिर घूम रहा है ! एक आवश्यक कार्यवश में पन्ना को साथ लिए राजभवन की ओर से चली आ रही थी इस कमरे के पीछे वाले झरोखे से प्रकाश आते देख मैं ठिठक गयी। मैंने सोचा इतनी रात वीते तक सराय में प्रकाश का होना रहस्य से खाली नहीं है ! झरोखे की राह मैं भीतर का हाल जानने का प्रयत्न करने लगी। कमरे में उस समय सन्नाटा था। सहसा द्वार खुला और दो आदमियों ने कमरे में प्रवेश किया। उन लोगों की वात चीत से मुझे मालूम हुआ कि आप कमरे में बेसुध पड़े हैं। मैंने पन्ना के हाथ पत्र भेज कर सहायतार्थ सुजन-सिंह जी को बुला भेजा। इधर कुछ देर बाद मुझे आपका भी शब्द सुनाई देने लगा। मुझे ऐसा जान पड़ा मानो कोई छद्मवेशी ऐयार छल पूर्वक आपसे कुछ भेद की वातें जानने का प्रयत्न कर रहा हो। मुझसे न रहा गया। मैं सराय की भठियारिन की लड़की का रूप बना कर आपको सावधान करने के लिए आपके कमरे के द्वार पर जा पहुँची। इसी समय......"

ललिता अभी अपनी बात पूरी भी न कर पायी थी कि उसे

एक विशाल काय पुरुष सामने वाले कमरे से निकल कर बड़े कमरे की ओर अग्रसर होता दिखाई दिया। मन्मथसिंह और सुजनसिंह उसी ओर पीठ किये खड़े थे। ललिता ने ठिठक कर उसकी ओर संकेत करते हुए धीरे से कहा—"देखिये तो यह कौन जा रहा है।"

दोनों ने घूम कर पीछे की ओर देखा। एक पुरुष अन्धकार के आवरण में अपने आपको लपेटे हुए बीच वाले कमरे के द्वार तक पहुँच चुका था। सुजनसिंह ने एक विचित्र प्रकार की बत्ती का प्रकाश उसके चेहरे पर फेंका। क्षण भर के लिये मन्मथसिंह की दृष्टि उस पर पड़ी। वे चौंक पड़े। उनके मुँह से निकल पड़ा– "हैं यह दुष्ट संन्यासी..."उन्होंने लपक कर उसका अनुसरण करना चाहा। परन्तु पलक मारते संन्यासी ने कमरे का द्वार बन्द कर लिया। मन्मथसिंह के आदेशानुसार सुजनसिंह घूम कर कमरे के पीछे जा पहुँचे। एक छोटी सी खिड़की खुली हुई थी। आस-पास कहीं कोई दिखाई न दिया। वे समझ गये कि शिकार हाथ से निकल गया!



छठाँ परिच्छेद

शंकरसिंह लगभग आधा घंटा तक उग्रनाथ की राह देखते रहे, परन्तु उग्रनाथ न लौटे। शंकरसिंह से अधिक न रहा गया। उग्रनाथ की खोज में वे पैदल ही उस जंगल की ओर चल पड़े। जंगल के भीतर इस समय भी पत्तियों के कलरव के अतिरिक्त और कोई शब्द न सुनाई देता था। बड़ी देर तक वे इधर-उधर भटकते रहे परन्तु कहीं कोई न दिखाई दिया। वे हताश होकर लौटना ही चाहते थे कि सहसा समीप ही किसी स्त्री के कराहने का शब्द सुन पड़ा। उनके कान खड़े हो गये। चकित होकर उन्होंने दूर दूर तक अपनी दृष्टि दौड़ाई। समस्त वन-प्रदेश में फिर पूर्ववत् शान्ति छा गयी। अनुमान के सहारे वे चपलता के साथ पग बढ़ाते हुए लगभग एक फर्लांग तक चले गये। एक बार फिर वही करुण-स्वर! उन्होंने दाहिनी ओर

घूम कर देखा । लगभग बीस गज के अन्तर पर सघन वृक्षों की झुरमुट में उन्हें कोई वस्त्र सा दिखाई दिया। सावधानी के साथ वे दबे पाँव उसी ओर बढ़ने लगे। मोटी मोटी रस्सियों से बँधी हुई एक युवती वृक्ष की एक ऊँची डाल से उल्टी टँगी हुई थी। शंकरसिंह ने निकट पहुँच कर एक बार उसे ध्यान पूर्वक ऊपर से नीचे तक देखा। युवती अचेतावस्था में थी। आस-पास कोई न था। शंकरसिंह ने अधिक विलम्ब किये बिना युवती के बन्धन खोलकर उसे सावधानी के साथ पृथ्वी पर लिटा दिया। एक बोतल से थोड़ा सा जल निकाल कर उसके मुँह में डाला और एक निकटवर्ती वृक्ष के पत्ते तोड़ कर हवा करने लगे।

कुछ ही क्षणों के अनन्तर युवती अर्द्ध-मूर्च्छितावस्था में कराहने लगी। "मुझे......उन पन्नों का हाल ''नहीं मालूम..." युवती फिर बेहोश हो गयी। शंकरसिंह का कौतूहल और भी बढ़ गया। उन्होंने अपने बटुए से खोज कर एक छोटी सी शीशी निकाली, और एक तरल ओषधि के तीन-चार बूँद युवती के मुँह में टपका दिये। इस ओषधि में न जाने कौन सी अद्भुत शक्ति थी, युवती क्षणभर बाद आँखें मलती हुई उठ बैठी। सामने एक अपरचित पुरुषको देखकर वह घबरा गई। और गिड़गिड़ाती हुई बोली—"मैं आपसे सच कहती हूँ, मुझे उन पन्नों का हाल बिलकुल नहीं मालूम! आप मुझ पर दया



"मोटी मोटी रस्सियों से बँधी हुई एक युवती वृक्ष की एक ऊँची डाल से उलटी टँगी हुई थी"

कीजिये ! मेरा···" शंकरसिंह ने उसे आश्वासन दिलाते हुए कहा—"डरो मत ! मैं तुम्हें कष्ट न दूँगा ! तुम निर्भय होकर मुझे साफ़ साफ बता दो तुम कौन हो ? और तुम्हें किसने इस प्रकार बाँध कर लटकाया था।"

युवती ने सन्दिग्ध दृष्टि से शंकरसिंह की ओर देखते हुए पूछा—"आप क्या सचमुच वह नहीं हैं जिसने मुझे······"

शंकरसिंह उसके मनोभावों को समझ गये उन्होंने धीरज बँधाते हुए कहा—"नहीं, नहीं मैं एक साधारण पथिक हूँ। तुम्हारे कराहने का शब्द सुन कर यहाँ तक आ गया। तुम निर्भय होकर मुझे अपनी सारी कथा सुना जाओ। मेरे रहते तुम्हारा कोई कुछ न बिगाड़ सकेगा ?"

युवती को मानों नया जीवन मिला। तो भी उसका हृदय भय से काँप रहा था। सशंकित दृष्टि से इधर-उधर देखती हुई बोली—"मुझे तो इस जगह की एक एक पत्ती डरा रही है। दुष्ट डाकू कहीं आस-पास ही होगा। कहीं वह फिर न आ पहुँचे !"

शंकरसिंह ने जोर देकर कहा—"मैं अकेला दस-पांच आदमियों के लिये काफ़ी हूँ। मेरे रहते वे तुम्हारी ओर आंख उठा कर देख भी न सकेंगे। निःशंक होकर तुम अपनी विपत्ति का पूरा हाल मुझे सुना सकती हो।"

युवती का साहस खुला। शंकरसिंह की बातों पर उसे विश्वास होने लगा। वह मानों अनुभव करने लगी कि इस

युवक के हाथों से अवश्य उसका उद्धार होगा। एक लम्बी साँस लेकर उसने कहना आरम्भ किया—"आपने शायद भानुपुर का नाम सुना होगा। मैं वहीं की रहने वाली हूँ! मेरा नाम डाली है। मेरे पास एक अमूल्य पुस्तक थी। मैंने उसे यत्न पूर्वक सँभाल कर रक्खा था। उस पुस्तक में अनेक अद्भुत रासायिनिक क्रियाओं का वर्णन था! मैं उन्हें समझती तो न थी पर इतना अवश्य जानती थी कि उसमें लिखे हुए रासायिनिक प्रयोग अत्यन्त चमत्कार पूर्ण हैं। किसी प्रकार उस पुस्तक का भेद दस्यु को मालूम हो गया। वही पुस्तक मेरी सब विपत्तियों की जड़ है। दस्यु ने मुझे उस पुस्तक के लिये जो जो यातनायें दीं उनके स्मरण-मात्र से मेरा सारा शरीर सिहर उठता है। अन्त में विवश होकर मुझे वह पुस्तक दस्यु के हाथों सौंप देनी पड़ी। दस्यु ने पुस्तक पा कर मेरा पिण्ड छोड़ दिया। परन्तु मेरी विपत्तियों का यहीं अन्त न हुआ था। मुझे......"

डाली अभी अपना वाक्य पूरा भी न कर पायी थी कि सहसा दाहिनी ओर से घोड़े की टाप का सा शब्द सुनाई दिया। दोनों सावधान होकर उसी ओर देखने लगे। कुछ ही क्षणों के अनन्तर उन्होंने देखा एक अश्वारोही झाड़ियों को चीरता हुआ उन्हीं की ओर बढ़ा चला आ रहा है। उसका सारा शरीर एक काले कपड़े से ढका हुआ था। उसके चेहरे पर काली नक़ाब पड़ी हुई थी। डाली भय के मारे काँपने लगी।

देखते ही देखते अश्वारोही उन लोगों के समीप आ पहुँचा। लगभग बीस गज़ की दूरी पर घोड़े को थाम कर वह नीचे उतर पड़ा। शंकरसिंह को देख कर पहले तो वह क्षण भर के लिये ठिठका, परन्तु फिर कुछ विचार कर आगे बढ़ा और निःशंक भाव से उनके सामने जा खड़ा हुआ। शंकरसिंह को कुछ कहने का अवसर दिये विना वह बोल उठा—"मुझे विश्वास है कि इस स्त्री को किसी प्रकार कष्ट देना आपको अभीष्ट न होगा। इसी-लिए मैं इसे अपने साथ ले जाने की अनुमति आप से माँगता हूँ।"

शंकरसिंह ने उसके स्पष्ट कथन से कुछ प्रभावित होकर कहा—"परन्तु आपको पूरी तरह जाने विना तो मैं इस असहाय बालिका को आपके हाथों नहीं सौंप सकता! अभी अभी कुछ दुष्टों के चंगुल में फँस कर यह काफ़ी कष्ट पा चुकी है।"

डाली खड़ी काँप रही थी। अश्वारोही ने यदि अपनी स्वाभाविक आवाज़ में उपरोक्त शब्द कहे होते तो शायद उसके भयभीत होने का कोई कारण न रह जाता। परन्तु शंकरसिंह द्वारा पहिचाने जाने के भय से वह इस समय कृत्रिम आवाज़ में बोल रहा था। डाली इस अपरिचित व्यक्ति के प्रस्ताव से घबरा कर शंकरसिंह के समीप जा खड़ी हुई और भय कातर स्वर में चिल्ला उठी--"बचाइए, बचाइए! इस दुष्ट को देख कर मुझे भय लगता है।"

शंकरसिंह ने उसे धीरज बँधाते हुए कहा—"डरो मत। मैं तैयार हूँ। प्राण रहते तुम्हारा कोई कुछ न बिगाड़ सकेगा।" अश्वारोही की ओर देखते हुए उन्होंने दृढ़ता पूर्वक कहा—"शरणागत की रक्षा करना क्षत्रिय का धर्म है। अपने प्रश्न का उचित उत्तर पाये बिना मैं आपका आदेश पालन करने के लिये तैयार नहीं हूँ।"

अश्वारोही ने कुछ सिटपिटाते हुए कहा—"परन्तु अपना परिचय देने के लिये तो मैं तैयार नहीं हूँ। केवल इतना ही कह सकता हूँ कि डाली से मेरा अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है।"

डाली ने चिल्ला कर कहा–"आप इसकी बात पर तनिक भी विश्वास न कीजिये। मैं इस पुरुष को बिलकुल नहीं पहिचानती। शंकरसिंह ने गम्भीरतापूर्वक कहा–"आप देख रहे हैं! मैं समझता हूँ मेरा कर्तव्य स्पष्ट है। मैं आपको यहाँ से चले जाने के लिये पाँच मिनट का समय देता हूँ। इतनी देर के भीतर ही आप इस वन प्रान्त को खाली कर दीजिये। नहीं तो मुझे विवश होकर दूसरे उपायों से काम लेना पड़ेगा। इतना अवसर भी आपको इसलिए दिया जाता है कि आपने मुझ पर वार करने की चेष्टा नहीं की।"

अश्वारोही चक्कर में पड़ गया। कुछ क्षणों तक चिन्तित रहने के अनन्तर उसने कहा—"अच्छा, क्या आप मुझे उस बालिका से एकान्त में दो-एक बातें करने की अनुमति भी नहीं दे सकते?"

शंकरसिंह ने कुछ विचार करते हुए उत्तर दिया—"केवल एक शर्त पर। यदि आप अपने दोनों हाथ बँधवाने के लिये तैयार हों।"

अश्वारोही ने शंकरसिंह की शर्त स्वीकार कर ली। शंकरसिंह ने उसके दोनों हाथ कस कर बाँध दिये और डाली की ओर देखते हुए बोले—"अब तुम निर्भय होकर अश्वारोही की बातें सुन सकती हो।"

डाली डरती डरती अश्वारोही की ओर अग्रसर हुई। अश्वारोही ने उसके कान में न जाने कौन सा मंत्र फूँक दिया, डाली का मुखमण्डल प्रसन्नता से चमक उठा। उसके मुँह से निकल पड़ा "हैं, तुम हो? इतनी देर तक..." अश्वारोही ने संकेत द्वारा उसे आगे बोलने से रोक दिया।

अभी क्षण भर पहले जो डाली भय से कातर हो रही थी, उसीने स्वयं मुस्कुराते हुए अश्वारोही के हाथों के बंधन खोल दिये और शंकरसिंह की ओर देखती हुई बोली—"पथिक! आपने मेरे साथ आज जो उपकार किया है उसे मैं जन्मभर न भूलूँगी। अब आपको मेरे लिये अधिक कष्ट न उठाना पड़ेगा। मैं इन नक़ाबपोश सज्जन के साथ निर्विघ्न अपने घर पहुँच जाऊँगी। मैंने इन्हें पहिचाना न था।"

शंकरसिंह के कौतूहल की सीमा न रही। वे इन दोनों के सम्बन्ध में और अधिक जानने के लिये उत्सुक हो उठे। परन्तु

निष्प्रयोजन किसी के कामों में हस्तक्षेप करना ऐयारी मर्यादा के प्रतिकूल था। उनके स्वामी का कठोर आदेश था कि वे नवागढ़ में अकारण किसी से छेड़-छाड़ न करें। अतएव अपने मानसिक कौतूहल को दबाते हुए उन्होंने कहा—"देखो कहीं तुम्हें धोखा न हो!" डाली ने निश्चयात्मक स्वर में उत्तर दिया—"नहीं, नहीं, मैं इन्हें भलीभाँति जानती हूँ।"

नक़ाबपोश की ओर देखते हुए शंकरसिंह ने कहा—"तब आप स्वतंत्र हैं।" कहते हुए वे एक ओर चल दिये। थोड़ी ही देर बाद उन्होंने किसी को उच्च स्वर में कहते सुना—"आप जिन्हें खोज रहे हैं वे शायद किसी विपत्ति में फँस गये हों। आप सीधा पश्चिम दिशा की ओर चले जाइए।"

उसी अश्वारोही की आवाज़ थी। शंकरसिंह ने पीछे घूम कर देखा। अश्वारोही डाली को घोड़े पर बिठा चुका था। शंकर-सिंह ने संकेत द्वारा उसे रोकना चाहा। परन्तु उस ओर ध्यान दिये बिना नक़ाबपोश ने घोड़े को एक एड़ लगाई घोड़ा देखते देखते सघन वृक्षों की झुरमुट में अदृश्य हो गया!

शंकरसिंह चिन्ता और कौतूहल से भरे हुए चपलता के साथ पश्चिम दिशा की ओर अग्रसर हुए। लगभग दो फर्लाङ्ग जाने के अनन्तर उन्हें सामने की ओर से घोड़े की नंगी पीठ पर बैठे हुए उग्रनाथ आते दिखाई दिए। शंकर सिंह को देखते ही उग्रनाथ घोड़े पर से उतर पड़े और उनके समीप आकर कुछ घबराए

हुए स्वर में पूछने लगे, "इधर कहां आ निकले ! किसी नक़ाब पोश अश्वारोही को तो तुमने इस ओर जाते नहीं देखा ?" शंकरसिंह ने सशंकित होकर कहा, "आप उस अश्वारोही की बात तो नहीं कह रहे हैं जिसका सारा शरीर काले कपड़े से ढका हुआ है" उग्रनाथ ने उत्सुकता पूर्वक उत्तर दिया, "हाँ, हाँ वही।" शंकरसिंह ने कहा, "उससे तो मैंने थोड़ी ही देर पहले बातें भी की हैं। क्यों, उससे........" उग्रनाथ ने उनकी बात को बीच ही में काटते हुए पूछा, "उसको गए कितनी देर हुई होगी ? किधर गया ?" शंकरसिंह ने सिर खुजलाते हुए उत्तर दिया, "गये हुए तो काफी देर हुई परन्तु यह कहना कठिन है कि वह इस जंगल के बीच किस ओर समा गया।"

उग्रनाथ ने खिन्नतापूर्वक कहा—"निकल गया !" शंकरसिंह ने कुछ विस्मय के साथ पूछा—"आखिर कुछ बताइए तो सही हुआ क्या ? आप इस समय कहाँ से आ रहे हैं ?"

उग्रनाथ ने कहना आरम्भ किया—मैं उस नक़ाबपोश का पीछा करता हुआ कई मील तक जंगल के भीतर चला गया, परन्तु नक़ाब पोश हाथ न आ सका। मेरे और उसके बीच का अन्तर प्रतिक्षण बढ़ता ही गया। अन्त में घने वृक्षों के बीच वह अदृश्य हो गया।

कुछ देर तक मैं इधर-उधर भटकता रहा परन्तु कोई परिणाम न निकला। हताश होकर मैं लौटना ही चाहता था कि सहसा

सामने की ओर मुझे लगभग पाँच फुट ऊँचा एक स्तूप सा दिखाई दिया।

स्तूप ऊपर से नीचे तक गुँथी हुई लताओं से ढका हुआ था। मेरा मन कहने लगा कि इस स्तूप में अवश्य ही कोई न कोई अद्भुत रहस्य छिपा हुआ है। मैं लपक कर स्तूप के समीप जा पहुँचा। लताओं को हटाकर मैंने देखा, विचित्र कला पूर्ण चित्रों से सुसज्जित पत्थर का एक गोल खम्भा था। कला की दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन होने पर भी पत्थर इतना चिकना था कि दर्पण की भाँति चमक रहा था। मैंने चारों ओर घूम घूम कर कई स्थानों से लता जाल को हटा हटा कर उस खम्भे का रहस्य जानना चाहा परन्तु कोई नई बात न मालूम हो सकी। मैं लौटना ही चाहता था कि सहसा मुझे खम्भे के भीतर से किसी के बोलने का शब्द सुनाई दिया। मेरे कौतूहल की सीमा न रही। कान लगा कर मैं उस ध्वनि का मर्म समझने का प्रयत्न करने लगा। कुछ ही देर में शब्द स्पष्ट सुनाई देने लगा। मैंने सुना एक व्यक्ति दूसरे से कह रहा था, "तब आखिर वे पन्ने गए कहाँ?" दूसरे ने उत्तर दिया, "समझ में नहीं आता मैंने डाली से हर प्रकार जानने का प्रयत्न किया परन्तु उसने कुछ भी न बताया। इधर आपको भी गए बहुत देर हो चुकी थी इस लिए मुझे चिन्ता होने लगी कि कहीं आप किसी विपत्ति में न फँस गये हों आपको खोजता हुआ मैं इस ओर आ निकला तब तक

देखता हूँ आप स्वयं आ पहुँचे पर उग्रनाथ का हम लोगों के झगड़े के बीच पड़ना भी आश्चर्य जनक है।" पहले ने कहा, "तुम्हें यह जान कर आश्चर्य होगा कि उस दिन साधू वाली टेकड़ी के नीचे रात के समय मुझ पर वार करने वाले शंकरसिंह थे मुझे आज ही यह रहस्य उन्हीं की बातों से मालूम हुआ; पर सराय में कैसे पहुँचा दिया गया यह बात समझ में नहीं आती। क्योंकि शंकरसिंह मुझे अचेतावस्था में वहीं छोड़ कर चल दिए थे। जान पड़ता है इसी बीच कोई दूसरा ऐय्यार मुझे उठा ले गया था।"

दूसरे व्यक्ति ने लम्बी साँस लेकर कहा—"जो हो उन पन्नों के विना तो यह पुस्तक हमारे किसी......।" अभी वह अपना वाक्य पूरा भी न कर पाया था कि मुझे ऐसा जान पड़ा मानों किसी तीसरे व्यक्ति ने अकस्मात पहुँच कर उन दोनों पर वार किया हो। क्षण भर तक पारस्परिक संघर्ष का सा शब्द सुनाई देता रहा और इसके बाद शान्ति छा गई। बड़ी देर तक मैं कान लगाए खड़ा रहा परंतु कोई शब्द न सुनाई दिया। हताश होकर मैं उस तालाब की ओर चल पड़ा। अभी मैं कुछ ही गज़ आगे बढ़ा था कि एक नक़ाब पोश अश्वारोही ने पीछे से आकर यकायक मेरे घोड़े के सामने एक दुर्गन्ध पूर्ण गोला पटक दिया। मैं अपने आप को सम्हाल न सका और घोड़े पर बैठा ही बैठा बेसुध होगया। इसके बाद जब मुझे होश आया तो मैंने देखा

घोड़ा पास खड़ा था। मेरे पास की कोई चीज़ भी गायब न हुई थी। केवल महाराज का आदेश पत्र जो मेरी जेब में पड़ा था, खुली हुई अवस्था में मिला। जान पड़ता है कि नक़ाबपोश ने उसे खोल कर पढ़ा था; पर आश्चर्य है कि मुझे किसी प्रकार की हानि पहुँचाने की चेष्टा उसने नहीं की। मैं उस अश्वारोही का भेद जानने के लिये व्यग्र हो उठा और घोड़े के पद-चिन्हों के सहारे उसे खोजता हुआ इस ओर आ निकला।"

शंकरसिंह ने विस्मयसूचक स्वर में कहा, "तब कहना चाहिये कि जिस ऐय्यार की जेब में मुझे वे चित्र मिले थे संयोग-वश फिर से उसी के हाथ में पहुँच गए।"

उग्रनाथ ने विचार करते हुए कहा—"पर समझ में नहीं आता कि वह था कौन ?"

शंकरसिंह बोले, "आश्चर्य नहीं स्वयं मन्मथ ही हों।"

उग्रनाथ ने कुछ गम्भीर होकर मन्द स्वर में कहा—"सम्भव है।"

स्पर्श के साथ ही बहादुरसिंह के शरीर में विद्युत प्रवाह की धारायें सी प्रवाहित होने लगीं। सामने ही क्षितिज पर एक धुँधली सी अव्यवस्थित रेखा देखकर उनके अंगों में एक नयी स्फूर्ति आ गयी।

सूर्योदय होते न होते वे धुर्रापुर की अतिथिशाला के द्वार पर जा पहुँचे। अभी वे अतिथिशाला के प्रधान द्वार के भीतर प्रवेश करना ही चाहते थे कि सहसा उनकी दृष्टि दाहिनी ओर वाले वृक्ष की डाल से बँधे हुए दो घोड़ों पर पड़ी। उनके आश्चर्य की सीमा न रही। उन्होंने पहिचाना, उनमें से एक उन्हीं का था। विस्मय से भरे हुए वे लपक कर घोड़े के समीप जा पहुँचे। सन्देह का कोई कारण न रहा। वे हैरान थे कि घोड़ा यहाँ कैसे आ पहुँचा। सावधानी के साथ दबे पाँव उहोंने अतिथिशाला में प्रवेश किया। सहसा उनकी दृष्टि बाईं ओर वाली दालान में व्यग्रता पूर्वक टहलते हुए एक व्यक्ति पर पड़ी। एक खंभे की आड़ में खड़े होकर बहादुरसिंह उस व्यक्ति को पहिचानने का प्रयत्न करने लगे।

दालान की दूसरी सीमा तक पहुँचने के बाद ज्योंही उसने लौटना चाहा त्योंही बहादुरसिंह की दृष्टि उसके चेहरे पर पड़ी। उन्होंने पहिचाना—उनके ही सहकारी ऐयार विक्रम सिंह! कई क़दम आगे बढ़ कर उन्होंने पुकारा—“यहाँ कैसे विक्रमसिंह?”

विक्रमसिंह की विचार-तन्द्रा भंग हुई। उन्होंने सिर उठा कर सामने की ओर देखा।

"आपही की प्रतीक्षा कर रहा था !" विक्रमसिंह ने उनकी ओर अग्रसर होते हुए कहा "मैं तो समझता था कि आप किसी नये झमेले में फँस गये हैं।"

"परन्तु मैंने तो तुम्हें अजयगढ़ और कर्मागढ़ का काम सौंपा था !" बहादुरसिंह ने कुछ कौतूहल के साथ पूछा—"और मेरा घोड़ा यहाँ कैसे आ पहुँचा ?" कहते हुए वे विक्रमसिंह के समीप तक चले गये। उनके प्रश्न का उत्तर दिये बिना विक्रमसिंह ने कुछ चिन्तापूर्ण स्वर में कहा—"आपसे दो एक आवश्यक बातों के सम्बन्ध में निवेदन करना है। अतएव यदि "

उनका तात्पर्य समझ कर बहादुरसिंह ने बग़ल वाले कमरे में प्रवेश करते हुए कहा—"ठीक है, इधर आजाओ। यहाँ एकान्त है।"

विक्रमसिंह ने एक चादर बिछा दी। दोनों एक दूसरे के आमने सामने बैठ गये। विक्रमसिंह ने सरदार बहादुरसिंह के चेहरे की ओर देखते हुए कहा—"आपकी आँखें अलसाई हुई हैं, जान पड़ता है आज रात भर आपने विश्राम नहीं किया।"

बहादुरसिंह ने कुछ लापरवाही के साथ कहा—"योंही एक चक्करमें पड़ गया था। तुम पहले अपना समाचार तो सुना जाओ। कर्मागढ़ में सब कुशल तो है ? अजयगढ़ गये थे या नहीं ?"

विक्रमसिंह ने उत्तर दिया—"इधर कर्मागढ़ में एक विचित्र घटना होजाने के कारण अजयगढ़ नहीं जा सका।"

"कैसी घटना ?" बहादुरसिंह ने कौतूहल के साथ पूछा।

विक्रमसिंह ने कुछ डरते डरते उत्तर दिया—"कर्मागढ़ के प्रधान ऐयार चतुरसिंह अकस्मात् एक रहस्यपूर्ण ढँग से गायब हो गये हैं।"

"चतुरसिंह ?" सरदार ने दुहराते हुए पूछा, "कैसे ?"

एक लम्बी साँस लेकर विक्रमसिंह ने कहना प्रारम्भ किया—कल ही की बात है दिन ढल रहा था उस समय मैं सेनापति दलपतिसिंह के साथ कर्मादुर्ग के पश्चिमी खंड में बैठा हुआ कुछ परामर्श कर रहा था। अजयगढ़ जाने के लिये पूरी तरह तैयार होकर ही मैं उनके पास गया था। आपका सारा आदेश उन्हें भली भाँति समझाने के उपरान्त मैं उनसे विदा माँगने ही वाला था कि दुर्ग के सन्तरी ने एक जासूस के आने की सूचना दी। सेनापति दलपतिसिंह को साथ लिए हुए मैं दुर्ग के प्रधान द्वार पर आ पहुँचा। मैंने देखा जासूस घबराया हुआ था। मुझे देखते ही उसने हाँफते हुए पूछा 'चतुरसिंहजी को आप अपने साथ इधर लाये थे ?' मैंने सशंकित हृदय से उत्तर दिया "मैं तो बड़ी देर से उधर गया ही नहीं।"

चतुरसिंहजी के ऊपर दृष्टि रखने के लिए मैंने दो जासूस नियुक्त किये थे। यह जासूस उन्हीं में से एक था। मेरा उत्तर सुनकर उसे मानो काठ-सा मार गया। वह जड़ी-भूत सा होकर मेरी ओर ताकने लगा। मैंने समझ लिया ढँग अच्छा नहीं है। मैंने पूछा—'बात क्या है ? कुछ कहो तो सही।"

जासूस ने घबराये हुए स्वर में उत्तर दिया 'बड़ी देर से चतुर-सिंहजी का कहीं पता नहीं है। लगभग घंटे भर की बात है हम लोग सतर्क होकर गुप्त रूप से आपके आदेशानुसार चतुरसिंह जी के मकान के आस-पास पहरा दे रहे थे। चतुरसिंहजी अपने मकान में बैठे हुए कर्मागढ़ के प्रसिद्ध रईस सेठ जमनालाल के साथ बात चीत कर रहे थे। सहसा हम लोगों ने आपको एक घोड़े से उतर कर उनके मकान के भीतर प्रवेश करते देखा। थोड़ी ही देर बाद चतुरसिंह को साथ लेकर आप बाहर आते दिखाई दिये। हम लोगों को किसी प्रकार का सन्देह करने का कोई कारण न था। हमने देखा चतुरसिंहजी को अपने साथ घोड़े पर बैठा कर आपने दक्षिण ओर की राह ली। कुछ देर तक निश्चिन्त से होकर हम दोनों आपस में बात चीत करते रहे। सहसा मेरे साथी ने शंका की, सेठ जमनालाल अभी तक बाहर नहीं निकले! उसकी बात ने मेरे मन में भी सन्देह पैदा कर दिया। मैं टहलता हुआ मकान के सामने तक चला गया। मकान के भीतर का दृश्य देखते ही मैं चौंक कर चार क़दम पीछे हट गया। मैंने देखा ऐयार चतुरसिंह बाईं हथेली पर सिर का भार दिए हुए कुहनी के सहारे मेज़ पर झुके, चुपचाप बैठे, सड़क की ओर ताक रहे हैं। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। मेरी अवस्था देख कर मेरा साथी भी मेरे समीप आ गया। हम लोगों ने एक बार फिर आगे की ओर झुक कर देखा। चतुरसिंह ठीक पहले ही की भाँति पाषाण-

प्रतिमा से बने हुए बैठे थे। हम लोग धीरे-धीरे द्वार के बिलकुल निकट तक चले गये। परन्तु चतुरसिंह ज्यों के त्यों बैठे रहे। उनकी आँखें पथराई हुई सी जान पड़ती थीं। अधिक विलम्ब करना उचित न समझ, अपने साथी को वहीं छोड़, मैं सीधा आपके पास चला आया।' जासूस के मुँह से सारा समाचार सुन कर, सेनापति दलपतिसिंह तथा जासूस को लिए हुए मैं शीघ्र ही घटनास्थल पर जा पहुँचा। मैंने देखा सचमुच ऐयार चतुरसिंह अब तक निश्चल रूप से बैठे सड़क की ओर ताक रहे थे। उनकी वेष-भूषा देख कर हम लोगों को यह समझते देर न लगी कि वास्तव में सेठ जमनालाल को ही रँग कर चतुरसिंह के रूप में परिवर्तित किया गया है। मैंने कमरे के भीतर जाकर भलीभाँति उनकी परीक्षा की। सेठ जी को रँगने में विशेष सावधानी से काम न लिया गया था। यद्यपि वे अचेतावस्था में थे तो भी उनको कुर्सी पर ऐसे ढँग से बिठाया गया था कि देखनेवाले को वे जीते-जागते हुए से जान पड़ते थे। मैं उनकी जेबें टटोलने लगा। कागज़ का एक छोटा सा टुकड़ा मिला। उसमें लिखा था—"एक अनिवार्य कारणवश आपके साथ ऐसा व्यवहार करना पड़ रहा है। क्षमा कीजियेगा।—चतुरसिंह" मैंने उनका चेहरा धोकर साफ़ कर डाला। मेरा अनुमान ठीक था। जासूसों को दूर हटा कर मैंने सेठ जमनालाल को चैतन्य करने का उपक्रम किया। थोड़े ही प्रयत्न के अनन्तर सेठ जी विस्मय भरी चितवन से चारों

ओर ताकते हुए बड़बड़ाने लगे—"चतुरसिंहजी कहाँ ?...आप ! विक्रमसिंह जी ?...आपने ऐसा क्यों..." मैंने उन्हें धीरज बँधाते हुए पूछा—'क्या बात है सेठ जी ? चतुरसिंह जी कहाँ हैं ?'

सेठ जी ने फिर वैसे ही अस्फुट स्वर में उत्तर दिया—'चतुर-सिंह जी ? आप ही तो' मैंने उन्हें विश्वास दिलाते हुए कहा—'आपने अभी थोड़ी देर पहले मेरे रूप में जिस व्यक्ति को देखा था वह मैं नहीं था। आप कृपा कर निस्संकोच सारी घटना का हाल सुना जाइये।'

सेठ जी ने आश्चर्य पूर्वक मेरी ओर देखते हुए कहा--'आप क्या सच कह रहे हैं ? अभी थोड़ी ही देर पहले आपका रूप धारण किए हुए एक व्यक्ति ने यहाँ आकर सहसा मेरा मुँह बन्द कर लिया। उसकी हथेली में न जाने कौन सी ओषधि लगी हुई थी कि क्षण भर में ही मेरी सारी चेतना जाती रही। उसके बाद अभी आँखें खोल रहा हूँ।'

मैंने पूछा--'चतुरसिंह जी ने भी आपकी सहायता नहीं की ?'

सेठ जी ने उत्तर दिया--'सारा काम ऐसी शीघ्रता के साथ हो गया कि मुझे कुछ मालूम ही नहीं हो सका।'

कुछ देर तक मैं घुमा फिरा कर उनसे बहुत सी बातें पूछता रहा परन्तु इससे अधिक वे कुछ न बता सके।

हताश होकर मैं सेठ जी के साथ मकान से बाहर निकला और दरवाजे पर ताला डाल कर उनसे साधारण बात चीत

करता हुआ राज-प्रासाद की ओर अग्रसर हुआ। अभी हम लोग थोड़ी ही दूर गये होंगे कि सेठ जी का बड़ा लड़का हाँफता हुआ हम लोगों के समीप आ पहुँचा। मुझे देख कर वह कुछ कहते कहते ठिठक गया। बहुत आश्वासन दिये जाने पर वह कहने लगा--'आपको यहाँ देख कर आश्चर्य हो रहा है। यदि सचमुच आप विक्रमसिंह जी हैं तो कहना चाहिए कि जो व्यक्ति मुझे अभी अभी मिला था वह कोई छद्मवेशी ऐयार था।'

मैंने कौतूहल के साथ पूछा--'कौन तुम्हें मिला था ?'

सेठ जी के लड़के ने उत्तर दिया--'अभी अभी आपका वेष धारण किये हुए एक अश्वारोही मेरे मकान पर पहुँचा। ऐयार चतुरसिंह भी उसके साथ थे। परन्तु उनकी तो विचित्र अवस्था थी। मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि यदि वे सचमुच चतुरसिंह ही थे तो उनके मस्तिष्क में कुछ न कुछ विकार अवश्य था, क्योंकि मुझे देख कर वे पागलों की भाँति प्रलाप करने लगे। और अश्वारोही के डाँटने पर वे थर-थर काँपते हुए उससे क्षमा याचना करने लगे। क्षण भर बाद ही अकारण खिलखिला कर हँस पड़े। उनके इस व्यवहार को देख कर मैं भी भयभीत हो गया। अश्वारोही ने मुझे संकेत द्वारा समीप बुला कर यह बन्द लिफ़ाफ़ा दिया और चतुरसिंह के साथ घोड़े पर सवार होकर बस्ती के बाहर दक्षिण की ओर चला गया।'--कहते हुए एक लिफ़ाफ़ा उसने सेठ जी

की ओर बढ़ा दिया। लिफ़ाफ़े पर सेठ जमनालाल का ही नाम लिखा था। सेठ जी लिफ़ाफ़ा खोल कर पढ़ने लगे। मैंने देखा पढ़ते पढ़ते उनके चेहरे का रंग फीका पड़ गया। उन्होंने काँपते हुए पत्र मेरी ओर बढ़ा दिया। उसमें लिखा था--

सेठ जमनालाल जी,

चतुरसिंह जी के बाद अब आपकी बारी आएगी। कर्मागढ़-नरेश तथा उनके सहायकों को उचित दण्ड मिलने का अवसर आ गया है। वैभव की मादकता ने कर्मागढ़-नरेश को अन्धा कर दिया था। अब नशे के उतार का समय आया है। आपको भी कुछ न कुछ प्रायश्चित करना ही पड़ेगा। सावधान!

आपका—

मैंने सेठ जी से पूछा 'आप इस पत्र लेखक के सम्बन्ध में कुछ जानते हैं?' सेठ जी ने सिर नीचा किये हुए कुछ हिच-किचाहट के साथ उत्तर दिया--"नहीं!"

मुझे उनकी बात पर विश्वास न हुआ। तो भी अधिक समय नष्ट करना उचित न समझ,मैंने उन्हें धीरज बँधा कर विदा किया। अपने जासूसों को उनकी देख-रेख के लिये नियुक्त करने के उप-रान्त मैंने अपना घोड़ा मँगाया और सन्ध्या होने से पहले ही इस विचित्र घटना के सूत्रधार का पता लगाने के लिए दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर हुआ। घोड़े के ताजे पद-चिन्हों के सहारे मैं कई मील निकल गया, परन्तु कर्मागढ़-नरेश का यह अद्भुत

शत्रु मुझे न मिल सका। धीरे धीरे अँधेरा हो चला, मार्ग में कई लोगों से पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि मेरा शिकार बहुत दूर नहीं है अतएव मैं पूरे उत्साह के साथ उसका अनुसरण करता रहा। परन्तु ऐयार हाथ न आया। रात अधिक बीत जाने के कारण धीरे-धीरे यात्रियों का आना-जाना कम होने लगा। साथ-ही-साथ मेरी आशा पर भी पानी फिरने लगा। तो भी मैं अनुमान के सहारे अपना घोड़ा फेंकता चला गया। आधी रात के लगभग मैं एक छोटे से खुले हुए वन के किनारे जा पहुँचा। वहीं पर मैंने आपका घोड़ा एक वृक्ष की डाल से बँधा हुआ पाया। आपके घोड़े को पहिचानने में मुझसे भूल न हो सकती थी। समीप जाकर मैंने उसकी पीठ पर हाथ फेरा। मुझे देख कर वह हिनहिनाने लगा। मेरा हृदय सशंकित हो उठा। बड़ी देर तक आस-पास घूम कर मैंने आपका पता लगाना चाहा परन्तु कोई परिणाम न निकला। इधर विलम्ब हो जाने के कारण उस ऐयार के मिलने की भी कोई आशा न रही। मुझे मालूम था कि आपने कमलनयन जी को आज प्रातः काल धुरीपुर में मिलने का आदेश दिया था। धुरीपुर अधिक दूर भी न था। आशा की यही एक रेखा देख मैं आपके घोड़े को लेकर रात बीतने से पहले ही यहाँ आ पहुँचा। तब से चिन्तापूर्वक आपकी प्रतीक्षा कर रहा था।" विस्मय से भरे हुए बहादुर-सिंह विक्रमसिंह की बातें सुनते रहे। अन्त में सिर हिलाते

हुए उन्होंने कहा, "यह एक नयी पहेली आ खड़ी हुई। कर्मागढ़-नरेश का यह नया शत्रु कौन उठ खड़ा हुआ! तुम्हारा अनुमान कहाँ ठहरता है?"

विक्रमसिंह ने उत्तर दिया--"मैंतो हतवुद्धि सा हो रहा हूँ। कभी-कभी यह भी सोचता हूँ कि कहीं चतुरसिंह ने ही हम लोगों को भ्रम में डालने के लिए कोई नया प्रपञ्च न रचा हो? बहादुरसिंह ने गम्भीरता पूर्वक कहा —'सम्भव है!'

कुछ देर तक दोनों साधारण परामर्श करते रहे। दोनों रात भर के जगे हुए थे। अतएव जलपान के अनन्तर उन्होंने कुछ समय तक वहीं विश्राम करना निश्चित किया। थकावट के कारण शीघ्रही दोनों बेसुध होकर सो गये। कितनी देर तक वे इसी अवस्था में पड़े रहे इसका उन्हें होश न था। सहसा किसी ने मन्द स्वर में पुकारा 'सरदार?' बहादुरसिंह की नींद खुल गई। उन्होंने देखा कमल नयन खड़े मुस्कुरा रहे हैं। वे चौंक कर उठ बैठे। आँखें मलते हुए उन्होंने पूछा—'कितना समय होगा?'

'दोपहर बीत चुकी है' कमल नयन ने सहज कोमल स्वर में उत्तर दिया "आपका चित्त अच्छा नहीं है क्या?"

'नहीं, यों ही नींद आ गयी थी' बहादुरसिंह ने उपेक्षा के साथ कहा 'आप यहाँ कितनी देर से खड़े हैं?'

'अभी अभी तो चला आ रहा हूँ।' कमल नयन ने विक्रम-सिंह के समीप बैठते हुए कहा 'मुझे तो आशा न थी, कि आपसे

भेंट होगी। इधर एक विचित्र उलझन में फँस जाने के कारण समय पर न आ सका।'

"कैसी उलझन ?" बहादुरसिंह ने कौतूहल के साथ पूछा।

कमल नयन ने कुछ कहने के लिये मुँह खोला ही था कि विक्रमसिंह भी आँखें मलते हुए उठ बैठे। साधारण कुशल-प्रश्न के अनन्तर, बहादुरसिंह ने फिर अपने प्रश्न को दुहराते हुए कहा—"किस घटना की चर्चा कर रहे थे आप ?" कमलनयन ने भानुपुर की अमराई से कर्मागढ़ नरेश के अन्तर्द्धान होने तथा एक अद्भुत ढंग से स्वयं उनके द्वारा फिर से गिरफ़ार किये जाने आदि की घटनायें विस्तारपूर्वक कह सुनाईं। अन्त में उन्होंने कहा—"कर्णसिंह जी को मंत्री अजितसिंह की संरक्षता में दीयागढ़ की ओर भेजने के उपरान्त मैंने वीरपुर लौट जाना चाहा परन्तु रास्ते में मैंने विचार किया, शायद आप मेरे लिए प्रतीक्षा करें अथवा आते-जाते ही मिल जायँ, क्यों न एक बार धुर्रापुर चल कर देख लूँ, यह विचित्र प्रसंग भी आपको सुनाना आवश्यक था। यही सब........."

विक्रमसिंह ने बीच में टोंकते हुए कहा—"विचित्र समस्या है ! कहीं चतुरसिंह की ही तो यह सब करामात नहीं है ?" कमल नयन बोल उठे—'परन्तु चतुरसिंह जी तो बराबर आपके अधिकार में हैं न ?'

बहादुरसिंह ने सिर हिलाते हुए उत्तर दिया—"यही तो !

कल संध्या से चतुरसिंह जी भी ग़ायब हैं !" संक्षेप में सारी घटना का हाल सुनाते हुए उन्होंने कहा—"यदि हम थोड़ी देर के लिए कल्पना कर भी लें कि चतुरसिंह ने ही कर्मागढ़-नरेश को भानुपुर की अमराई से निकल भागने में सहायता की थी और कमल नयन जी ने कर्णसिंह के साथ जिस व्यक्ति को बात चीत करते सुना था वह चतुरसिंह ही थे तो भी यह पहेली तो बनी ही रहती है कि उन दोनों के एकाएक बेहोश हो जाने का कारण क्या था और कमलनयन जी को कर्णसिंह जी के समीप ही यह दूसरा व्यक्ति क्यों नहीं मिला ! फिर चतुरसिंह जी का कर्मागढ़ से भाग कर इतनी जल्दी भानुपुर पहुँचना सम्भव भी तो नहीं जान पड़ता !'

कमल नयन ने उनकी बात का समर्थन करते हुए कहा—"और कर्णसिंह जी के साथ जिस व्यक्ति को मैंने बातचीत करते सुना था उसकी आवाज़ भी चतुरसिंह जी की सी नहीं थी।"

बहादुरसिंह ने मुस्कुराते हुए कहा—"हाँ, चतुरसिंह जी की आवाज़ पहिचानने में तो आप को धोखा न होना चाहिए।"

विक्रमसिंह ने कहा—" तब कहना चाहिए कर्मागढ़-नरेश का कोई दूसरा शत्रु ही इन सब घटनाओं का सूत्रधार है। परन्तु वह है कौन ?"

"कोई निश्चित बात अभी कहना कठिन है" बहादुरसिंह ने गम्भीरतापूर्वक कहा—"परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इन सब घटनाओं की तह में कोई न कोई अद्भुत रहस्य अवश्य है।"

बहादुरसिंह विचार में पड़ गये। बातों का क्रम बदलते हुए कमल नयन ने बाल-चपलता के साथ पूछा—"आप का वह सूखा कुँआ यहाँ से कितनी दूर होगा?"

बहादुरसिंह ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—"पास ही है। क्यों? क्या आप उसे देखना चाहते हैं?"

"हाँ, यदि आपको कोई कष्ट न हो!" कमल नयन ने कुछ संकोच के साथ कहा, "ऐसी अद्भुत जगह को एक बार......" बहादुरसिंह कहने लगे—"कष्ट क्या है? चले चलेंगे, पास ही तो है।"

कुछ देर तक आवश्यक परामर्श करने के अनन्तर तीनों अतिथिशाला के बाहर निकल आये। विक्रमसिंह ने सरदार के आदेशानुसार कर्मागढ़ की राह ली, तथा बहादुरसिंह कमल-नयन के साथ साधारण बातचीत करते हुए धुर्रापुर से निकल कर धीरे-धीरे सूखे कुएँ की ओर अग्रसर हुए।

थोड़ी ही देर बाद वे सूखे कुएँ के समीप पहुँच कर घोड़ों से उतर पड़े और चारों ओर घूम घूम कर इस रहस्यपूर्ण कुएँ का निरीक्षण करने लगे। अकस्मात् कुएँ के भीतर से किसी के बोलने का सा शब्द सुनाई दिया। बहादुरसिंह कान लगा कर उस ध्वनि का मर्म समझने का प्रयत्न करने लगे। आवाज बन्द हो गयी। बहादुर सिंह ने भीतर झाँककर देखा। कहीं कोई न था। कमल नयन स्तम्भित होकर उनकी ओर ताक रहे थे। कुछ और समीप आकर

उन्होंने संकेत द्वारा भीतर का रहस्य पूछना चाहा। उनका कौतूहल शान्त करने के लिए बहादुरसिंह अभी कुछ कहना ही चाहते थे कि सहसा फिर किसी के बोलने का शब्द सुनाई दिया। उन्होंने ओठों पर तर्जनी रखते हुए कमल नयन को मौन रहने का आदेश दिया। शब्द इस बार अधिक स्पष्ट था। उन्होंने सुना मानों एक व्यक्ति ने हाँफते हुए दूसरे व्यक्ति से कहा—"आश्चर्य है! आज न जाने क्यों हत्था टस से मस नहीं होता!"

दूसरा विस्मय भरे स्वर में बोला! "क्या कहा? हटो, जरा मैं भी तो देखूँ।"

कुछ क्षणों के बाद दूसरे ने भी घबराये हुए स्वर में कहा—"हैं, इसे आज हो क्या गया है? समझ में नहीं आता।"

पहले व्यक्ति ने निराशा-सूचक स्वर में पूछा—"अब क्या होगा?"

क्षण भर मौन रहने के उपरान्त दूसरे व्यक्ति ने गम्भीर होकर कहा—"इस समय घाटी में लौट चलने के अतिरिक्त और क्या उपाय है! देखता हूँ अब यहाँ नित्य नये नये उत्पात होने लगे हैं। समझ में नहीं आता इस यंत्र को क्या हो गया है। अभी रात में सब ठीक था। न जाने कौन हाथ धोकर हम लोगों के पीछे पड़ा है......" शब्द प्रति क्षण दूर होता गया। बहादुरसिंह और अधिक न सुन सके। वे समझ गये दस्यु घाटी की ओर लौट गये हैं।

कमल नयन की ओर देखते हुए विस्मय पूर्ण स्वर में उन्होंने पूछा—"आपने समझा !"

"बिलकुल नहीं" कमल नयन ने उत्तर दिया ।

बहादुरसिंह ने कहा—"किसी विचित्र ढङ्ग से सुरंग का द्वार भीतर से कुछ ऐसा बन्द हो गया है कि दस्यु उसे खोलने में असमर्थ हो रहे हैं ।"

"परन्तु इस प्रकार सुरंग का द्वार बन्द करने वाला है कौन ?" कमल नयन ने जिज्ञासा की ।

"समझ में नहीं आता" बहादुरसिंह ने सिर हिलाते हुए कहा ।

कमल नयन ने कौतूहल के साथ पूछा—"इन लोगों के बाहर निकलने का कोई दूसरा मार्ग भी है या नहीं ?"

बहादुरसिंह ने उत्तर दिया—"कह नहीं सकता । उस श्वेत-भवन के द्वार पर तो ताला पड़ा है । शायद दीवारें फाँद कर बाहर निकलने का प्रयत्न करें अथवा और कोई राह भी हो ।"

इस घटना का रहस्य जानने की आशा में दोनों सूखे कुएँ के आस पास कुछ देर तक टहलते रहे । बहादुरसिंह ने एक बार कुएँ के भीतर उतर कर भी अनुसन्धान करना चाहा । परन्तु कोई परिणाम न निकला ।

कुछ देर तक वे कमल नयन के साथ साधारण बात चीत करते रहे । अन्त में अपने घोड़े की लगाम सँभालते हुए वे

गम्भीरता पूर्वक कहने लगे—"मैं समझता हूँ आप इस समय वीरपुर लौट जायँ। जब तक महाराज चन्द्रसिंह-सम्बन्धी घटना का कोई सूत्र हमारे हाथ में न आ जाय तब तक हम लोगों का कार्य क्षेत्र अस्थिर रहेगा। अतएव आपको मेरे साथ रहने में कष्ट होगा। मेरा विचार था कि एक बार चल कर आपके पिता जी से मिल लेता। आपको धुर्रापुर बुलाने का मुख्य अभिप्राय यही था। परन्तु देखता हूँ समस्या दिन पर दिन जटिल होती जाती है। कर्णसिंह के इस अज्ञात शत्रु की ओर से भी सावधान रहना आवश्यक है। महाराज चन्द्रसिंह का अनुसन्धान करने के लिए मैंने नवलसिंह को काननपुर, नवागढ़ की ओर भेजा है।

मैं भी इस रहस्य का उद्घाटन करने का प्रयत्न करूँगा। देखें कब तक सफलता मिलती है। आपको यथा समय किसी दूत द्वारा भविष्य कार्यक्रम के सम्बन्ध में सूचित करूँगा। अभी कर्मागढ़ होते हुए एक बार अजयगढ़ जाने का विचार कर रहा हूँ।"

बहादुरसिंह का आदेश पाकर कमल नयन घोड़े की पीठ पर बैठ गये। और सम्मान पूर्वक उनका अभिवादन करने के उपरान्त वीरपुर की ओर अग्रसर हुए।

आठवाँ परिच्छेद

एक ओर सरदार बहादुरसिंह का आदेश था और दूसरी ओर सरोजिनी की मधुर मुस्कान का प्रबल आकर्षण !

कर्मादुर्ग के पतन तथा कुमारी इन्दुमती के उद्धार के बाद नवलसिंह की आँखों के सामने सुखद भविष्य के नाना कल्पित चित्र नाचने लगे थे। अपनी जिन चिर-संचित अभिलाषाओं को इतने दिनों तक वे यत्न पूर्वक हृदय में छिपाये हुए थे, कर्णसिंह के पराजय के साथ ही साथ उनके साकार होने का अवसर उन्हें समीप आया जान पड़ने लगा था। कर्तव्य के जिस कठोर अनुशासन ने किसी के नयन-शरों द्वारा उद्वेलित उनके मन को इतने दिनों तक संयत रक्खा था, उसके हटते ही उस दिन उनका मन मचल उठा। उनकी सोई हुई कल्पना जागरित हो उठी। वे सोचने लगे, शीघ्र ही उनके हृदय का वह मधुर भार कुछ हलका होगा।

परन्तु निठुर नियति का आदेश तो कुछ और ही था।

अकस्मात् महाराज चन्द्रसिंह अन्तर्द्धान हो गये! दीयागढ़ के ऐयारों के सामने जटिल समस्या उठ खड़ी हुई। युद्ध की थकावट के बाद शान्ति की सुखद छाया में विश्राम करने वाला सैनिक-शिविर विचलित हो उठा।

और नवलसिंह?

उनकी आशा-लतापर तो मानो तुषार-पात ही हो गया। कल्पना के मनोरम उद्यान से अनूठे कुसुम चुन-चुन कर जो अनोखी माला तैयार करने में उनका अनुराग-रंजित मन भूला हुआ था उसकी लड़ी सहसा टूट गयी। फूल बिखर गये। कर्तव्य की दीवार ने आकर कुछ समय के लिये फिर उन्हें उनकी प्रेयसी से अलग कर दिया।

सरदार बहादुरसिंह ने उन्हें काननपुर, नवागढ़ तथा उनके निकटवर्ती राज्यों को अपना वर्तमान कार्यक्षेत्र बनाने का आदेश दिया। एक बार फिर अपनी शक्ति की परीक्षा करने के उद्देश से वे उसी ओर अग्रसर हुए। परन्तु लगभग आठ दस मील चलने के बाद उनके हृदय की दुर्बलता उनसे वीरपुर चलने का अनुरोध करने लगी। कर्मागढ़ में उन्हें सरोजिनी से दो बातें करने का अवसर भी न मिल सका था। हाँ, उनके चञ्चल नयन लुक-छिप कर सरोजिनी की लजीली आँखों के साथ कई बार अठखेली अवश्य कर चुके थे। उन्होंने सोचा, कुछ देर के लिए चले चलने में क्या हर्ज है! परन्तु सरदार बहादुर-

सिंह के आदेश की अवहेलना करना भी उनके लिये सहज न था। कर्तव्य का वही कठोर अनुशासन मानों बरबस उन्हें आगे की ओर ढकेल रहा था।

सन्ध्या-काल तक वे अजयगढ़ से वीरपुर की ओर जाने वाले मार्ग पर जा पहुँचे। हृदय के अन्तरतम में छिपी हुई न जाने कौन सी शक्ति का संकेत पाकर उनका घोड़ा सहसा ठिठक गया। कई क्षणों तक उनका हृदय नट के बटे की भाँति वीरपुर से नवागढ़ तथा नवागढ़ से वीरपुर के बीच उछलता रहा। अन्त में उनकी प्रबल दुर्बलता ने उन पर विजय पायी। सरोजिनी की मधुर मुस्कान के अद्भुत आकर्षण को वे न सँभाल सके! उनका घोड़ा मानों उनकी आन्तरिक प्रेरणा को समझ कर बरबस उन्हें वीरपुर की ओर ले चला।

सघन अन्धकार की चिन्ता किये बिना नवलसिंह अनेक भीषण वन-प्रान्तों तथा अनेक छोटे-बड़े नदी-नालों को पार करते हुए रात्रि भर अपना घोड़ा फेंकते चले गये। पहर भर रात रहे उन्होंने एक छोटी सी वनस्थली के समीप पहुँच कर अपने घोड़े की गति मन्द की। वीरपुर अब अधिक दूर न था। वे घोड़े से उतर पड़े और उसे एक वृक्ष की डाल से बाँध कर सूर्योदय की प्रतीक्षा करते हुए आस-पास टहलने लगे।

सहसा कुछ ही दूर पर पत्तों की खड़खड़ाहट का सा शब्द सुन कर वे सतर्क हो, इधर-उधर देखने लगे। अनुमान के सहारे

वे दबे पाँव शब्द के उद्गम स्थान की ओर अग्रसर हुए। लगभग सौ गज़ बढ़ने पर उन्हें एक व्यक्ति कोई भारी-सी चीज़ लिए हुए सामने की ओर जाता हुआ दिखाई दिया। उनका हृदय कौतूहल से भर गया। अपने बटुए से एक गोली निकाल कर उन्होंने मुँह में डाल ली और एक विशाल वृक्ष की ओट से अपनी अद्भुत बत्ती का प्रकाश उस पुरुष के ऊपर फेंककर उसे पहिचानने का प्रयत्न करने लगे। नवलसिंह ने देखा उसकी पीठ उन्हीं की तरफ़ थी। दाहिनी बग़ल में वह एक व्यक्ति को सँभाले हुए था। उसके इस क़ैदी का मुँह पीछे की ओर निकला हुआ था। नवलसिंह की बत्ती का आलोक क़ैदी के चेहरे पर पड़ा। उन्होंने पहचाना, क़ैदी और कोई नहीं उन्हीं का प्रतिद्वन्दी सुवर्णकार संन्यासी है। अपरिचित पुरुष ने चौंक कर पीछे की ओर देखा। नवलसिंह ने बत्ती बुझा दी, और वृक्षों तथा झाड़ियों की आड़ में सावधानी के साथ अपने आपको छिपाते हुए उसके समीप जा पहुँचे। अपरिचित पुरुष चकित होकर अब तक उसी ओर ताक रहा था। इस आकस्मिक प्रकाश का मर्म समझने के उद्देश से, अभी वह आगे बढ़ना ही चाहता था कि सहसा नवलसिंह ने उसके ठीक सामने अपना अचूक गोला पटक दिया। क्षणभर के लिए वनस्थली का वह प्रान्त एक दुर्गन्धिपूर्ण धुएँ से भर गया। परन्तु उनका प्रतिद्वन्दी इसके लिए शायद पहले ही से तैयार था। नवलसिंह को एकाएक किसी

के भागने का सा शब्द सुनाई दिया। बत्ती की सहायता से उन्होंने देखा अपरिचित पुरुष संन्यासी को लिए हुए सचमुच एक ओर को भागा जा रहा है। अपने गोले को व्यर्थ होते देख कर उन्हें आश्चर्य हुआ। अधिक विलम्ब करना उचित न समझ कर उन्होंने तीव्र गति के साथ उसका अनुसरण किया।

उनके प्रतिद्वन्दी के हाथ में बोझा था। अंधकार के कारण उसे मार्ग न सूझता था। एक कटीली झाड़ी से उलझकर वह मुँह के बल गिर पड़ा। नवलसिंह बिलकुल समीप आ पहुँचे। कोई दूसरा उपाय न देख, उसने संन्यासी को ज़मीन पर रख कर नवलसिंह पर आक्रमण किया। नवलसिंह तैयार थे। दोनों अपनी अपनी शक्ति की परीक्षा करने लगे। नवलसिंह ने देखा उनका प्रतिद्वन्दी साधारण व्यक्ति नहीं है। लगभग पाव घण्टे तक वह वीरतापूर्वक नवलसिंह का सामना करता रहा। एक बार तो उसने उनके कन्धे पर इतने ज़ोर का धक्का लगाया कि वे नाक के बल गिरते गिरते बचे। इस प्रकार चोट खाकर वे और भी क्रुद्ध हो उठे और दूने उत्साह के साथ उस पर टूट पड़े। नवलसिंह का खून ताज़ा था। उनका प्रतिद्वन्दी अधिक देर तक उनसे मोर्चा न ले सका। वह थककर हाँफने लगा। देखते ही देखते नवलसिंह उसे नीचे गिरा कर उसकी छाती पर चढ़ बैठे। इस बार अपने बटुए से एक तेज़ ओषधि निकाल कर उन्होंने बरबस उस ऐयार को सुँघा दी। क्षणभर में ही उसकी चेतना जाती रही। अपनी

अद्भुत बत्ती की साहयता से उन्होंने उस अपरचित ऐयार को पहिचानने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु व्यर्थ! आज से पहले उन्होंने इस व्यक्ति को कभी देखा ही न था। वे सावधानी के साथ उसकी जेबें टटोलने लगे, परन्तु कोई उल्लेख योग्य सामग्री उन्हें न मिल सकी। उन्होंने ऐयार को उसी अवस्था में छोड़ दिया और संन्यासी को पीठ पर लाद कर अपने घोड़े के समीप उठा लाये। संन्यासी का झोला उसके पास न था! जिस "सुवर्ण-रहस्य" की आशा में उन्होंने इतना परिश्रम किया था वह भी संन्यासी के पास उन्हें न मिल सका।

हताश होकर वे कुछ उद्विग्नता के साथ पहले की भाँति इधर-उधर टहलने लगे। लगभग आधा घण्टा के बाद उन्होंने आकाश की ओर देखा। भोर होने में अब अधिक विलम्ब न था। "सुवर्ण-रहस्य" को किसी न किसी प्रकार हथिया लेने की आशा से संन्यासी को घोड़े की पीठ पर लाद कर वे धीरे-धीरे वीरपुर की ओर अग्रसर हुए। अभी वे मील भर भी न गये होंगे कि सहसा उनका ध्यान लगभग एक फर्लाङ्ग के अन्तर पर वृक्षों की झुरमुट में दिखाई देने वाले प्रकाश की ओर आकृष्ट हुआ। वे भली भाँति जानते थे कि आस-पास कोई बस्ती न थी। उन्हें ऐसा जान पड़ा मानों कोई व्यक्ति दीपक हाथ में लिए हुए दूर बढ़ता जा रहा हो। थोड़ी ही देर बाद दीपक लुप्त हो गया!

एक निर्जन स्थान में असमय किसी की उपस्थिति की सम्भा-

वना ने उनके कौतूहल को जागरित कर दिया। अभी कुछ ही देर पहलेवाली रहस्यपूर्ण घटना को वे भूले न थे। अतएव वे तरु समूहों की ओट में अपने आप को छिपाते हुए दूसरी ओर से घूम कर उस स्थल के समीप जा पहुँचे। उन्होंने देखा, सघन वृक्षों से मुँदी हुई एक पुरानी कुटी के भीतर से दीपक का प्रकाश आ रहा था। कुछ दूर पर अपने घोड़े को थाम कर वे नीचे उतर पड़े और उसे यत्नपूर्वक एक निराली जगह बाँधकर दबे पाँव कुटी के पृष्ठभाग में जा पहुँचे। एक छोटे से झरोखे की राह झाँककर वे भीतर का दृश्य देखने लगे। उन्होंने देखा एक नीला नक़ाबपोश चुपचाप एक ऊँची सी चट्टान पर बैठा हुआ कुटी के द्वार की ओर ताक रहा था। उसके दाहिनी ओर एक दूसरा नक़ाबपोश सिर झुकाये खड़ा था। उसकी नक़ाब काली थी। जान पड़ता था दोनों व्यग्रतापूर्वक किसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। नवलसिंह साँस थाम कर समस्त व्यापार देख रहे थे। सहसा कुटी के द्वार पर झूलने वाले लता-जालों को हटा कर एक व्यक्ति ने भीतर प्रवेश किया। उसे देखते ही दोनों एक साथ बोल उठे—'आइए, आइए' नवलसिंह ने पहिचाना यह वही व्यक्ति था जिससे अभी कुछ ही देर पहले वे मोर्चा ले चुके थे। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। आगन्तुक ने सम्मान पूर्वक झुक कर नीले नक़ाबपोश का अभिवादन किया। नीले नक़ाबपोश ने गम्भीरता पूर्वक पूछा—'कहिए, आपको अपने काम में सफलता मिली ?'

आगन्तुक ने एक बड़ी सी गठरी अपनी पीठ से उतार कर नीचे रखते हुए उत्तर दिया—"जी हाँ, आपकी आज्ञा का पालन कर लाया हूँ। परन्तु इधर एक अद्भुत घटना हो गयी।"

कहते हुए उसने गठरी खोल डाली। नवलसिंह ने देखा नीले नक़ाबपोश के सामने अचेतावस्था में कर्मागढ़ के प्रधान ऐयार चतुरसिंह लेटे हुए थे।

"कैसी घटना ?" नीले नक़ाबपोश ने कौतूहल के साथ पूछा।

उसकी बात का उत्तर दिये बिना आगन्तुक ने काले नक़ाबपोश की ओर देखते हुए पूछा—"आप जिस काम के लिए गये थे उसका......"

काला नक़ाबपोश बोल उठा—"कर्णसिंह को तो अपने पापों का पूरा-पूरा दण्ड मिल चुका। न जाने कैसे, भानुपुर की अमराई में उनका ख़ेमा जल कर भस्म हो गया है। मीलूगढ़ के आदमियों से उन्हें हथिया लेने की चिन्ता में जब मैं अमराई में पहुँचा तो देखा एक ख़ेमे से आग की ऊँची-ऊँची लपटें निकल रहीं थीं। सैनिक-शिविर में कोलाहल मचा हुआ था। कुछ सैनिक 'कर्णसिंहजी के ख़ेमे में आग लग गयी' इत्यादि चिल्लाते हुए इधर-उधर दौड़ कर आग बुझाने का प्रयत्न कर रहे थे। मेरे देखते ही देखते ख़ेमा जल कर भस्म हो गया। कुछ देर बाद अवसर पाकर मैं ख़ेमे के समीप जा पहुँचा। मैंने देखा वहाँ

राख के एक ढेर और कुछ जली हुई हड्डियों के अतिरिक्त और कुछ न था। हताश होकर मुझे लौट आना पड़ा।"

आगन्तुक ने चकित होकर पूछा—"तब क्या आप समझते हैं कि कर्मागढ़-नरेश उसी खेमे में जल कर भस्म हो गये ?"

"आपके इस प्रश्न का मतलब ?" नक़ाबपोश ने सन्दिग्ध दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा—"इसके अतिरिक्त और क्या समझा जायगा ?"

आगन्तुक ने विस्मयसूचक स्वर में उत्तर दिया—"आपकी बातें सुन कर मैं हैरान हो रहा हूँ। अभी कुछ ही देर पहले कर्णसिंह इसी वन-प्रदेश में मौजूद थे।"

"इसी वन प्रदेश में ?" नीले नक़ाबपोश ने कौतूहल के साथ जिज्ञासा की।

"आप किसी स्वप्न की बात तो नहीं कर रहे हैं ?" काले नक़ाबपोश ने आवेशपूर्वक कहा।

आगन्तुक गम्भीरतापूर्वक कहने लगा—"मैं जो कुछ आपसे निवेदन करूँगा उससे शायद आप स्वयं कोई सिद्धान्त स्थिर कर सकें। मेरी बुद्धि तो थकित हो रही है। सचमुच सारा व्यापार एक स्वप्न-सा जान पड़ता है। अभी मैं ऐयार चतुरसिंह को लिए हुए इधर आ ही रहा था कि सहसा निर्जन वन की निस्तब्धता के बीच मुझे किसी के बोलने का-सा शब्द सुनाई दिया। अनुमान के सहारे मैं उसी ओर कई पग बढ़ा चला

गया जिधर से वह शब्द आ रहा था। मैंने सुना दो व्यक्ति परस्पर बातचीत कर रहे थे। उनमें से एक का स्वर मुझे परिचित सा जान पड़ा। उन दोनों की बातें मुझे स्पष्ट सुनाई दे रही थीं। कुछ ही देर में मैंने उस परिचित व्यक्ति को पहचान लिया। मुझे अपने कानों पर विश्वास न होता था, परन्तु अविश्वास करने का भी कोई कारण न दिखाई देता था। मैंने सुना कर्मागढ़-नरेश किसी व्यक्ति के साथ बात-चीत करते हुए चले जा रहे थे। उनकी बातों से मुझे मालूम हुआ कि उसी व्यक्ति की सहायता से आज ही रात वे किसी प्रकार भानुपुर की अमराई से निकल भागे हैं। कर्णसिंह को अनायास ही अपने अधिकार में कर लेने का सुअवसर हाथ में आया देख मैंने अपने घोड़े और चतुरसिंह को यत्नपूर्वक एक घनी झाड़ी की ओट में छिपा दिया और हर प्रकार से तैयार होकर चुपचाप उनका अनुसरण करता हुआ उनके समीप जा पहुँचा। मैंने देखा दोनों घोड़ों पर सवार थे। दबे पाँव मैं कुछ आगे निकल गया और मार्गवर्ती वृक्षों तथा झाड़ियों में एक तेज दवाई छिड़क कर उन लोगों की प्रतीक्षा करने लगा। मेरी चाल पूरी उतरी। कुछ ही क्षणों के बाद वे लोग अचेत होकर घोड़ों से गिर पड़े। दूसरे व्यक्ति की ओर ध्यान दिए बिना मैंने कर्णसिंह को उठा ले जाना चाहा। परन्तु मैंने देखा उनका सहायक, जो कि वास्तव में एक संन्यासी था, उठकर मुझ पर आक्रमण करने का प्रयत्न कर

रहा था। मेरी औषधि उसे सुला देने के लिए पर्याप्त न थी। एक बार विचार किया कि दूसरी औषधि से काम लूँ, परन्तु फिर सोचा जब एक वार इस प्रकार व्यर्थ हो गया है तब उसे यहाँ छोड़कर अकेले कर्णसिंह को पहले ले जाना आपत्ति से खाली नहीं है। शायद यह दुष्ट किसी प्रकार की औषधि खाये हुए हो और इसी बीच फिर से सचेत होकर कोई नया झमेला खड़ा कर दे। मैंने विचार किया, सैनिकों के बीच से कर्णसिंह को निकाल लाने वाला यह संन्यासी अवश्य ही कोई असाधारण व्यक्ति होगा। अतएव मैंने यही निश्चित किया कि पहले इसे ही किसी उपयुक्त स्थान पर ले जाकर रस्सियों से जकड़ दूँ। परन्तु रस्सियाँ मैं घोड़े पर ही छोड़ आया था। निदान संन्यासी को उसी अर्द्ध-चेतनावस्था में उठा कर भली भाँति बग़ल में दबाए हुए मैं अपने घोड़े की ओर अग्रसर हुआ। अभी मैं घोड़े के समीप पहुँच भी न पाया था कि एकाएक किसी ऐयार ने एक बत्ती का प्रकाश पीछे से मेरी ओर फेंका। मैंने घूम कर इस का रहस्य जानना चाहा परन्तु कहीं कुछ दिखाई न दिया। कुछ ही क्षणों के उपरान्त उसने न जाने किधर से आकर सहसा मेरे सामने एक गोला पटक दिया। मैं इसके लिये पहले ही से तैयार था। हाँ, गोले के प्रभाव से संन्यासी निश्चेष्ट हो गया। वहाँ ठहरना उचित न समझ कर मैं एक ओर भाग निकला। परन्तु दुर्भाग्यवश एक झाड़ी से उलझ कर गिर पड़ा। मेरे प्रतिद्वन्दी ने इसी बीच पहुँच

कर मुझे बरबस कोई तेज़ ओषधि सुँघा दी। कुछ देर के लिए मेरी चेतना जाती रही। आँखें खोलने पर मैंने देखा, संन्यासी का कहीं पता न था। घबराया हुआ मैं उस स्थान पर पहुँचा जहाँ मैंने कर्मागढ़-नरेश को छोड़ा था। वे भी मुझे न मिल सके। मेरे प्रतिद्वन्दी ने मेरे दोनों क़ैदियों को मुझ से हथिया लिया! परन्तु भाग्यवश मेरे घोड़े पर शायद उसकी दृष्टि नहीं पड़ी। इसी लिए मैं चतुरसिंह को आपके सामने उपस्थित कर सका।"

कौतूहल से भरे हुए नवलसिंह समस्त वृत्तान्त सुनते रहे। कर्णसिंह-सम्बन्धी घटना उनके लिए आदि से अन्त तक रहस्य से भरी हुई थी। उनकी समझ में न आता था कि संन्यासी ने कर्मागढ़-नरेश को किस प्रकार मुक्त किया, और फिर उस वन-स्थली से कौन उन्हें इस प्रकार उठा ले गया। वे नहीं जानते थे कि इस घटना-चक्र में उनकी सरोजिनी का भी हाथ था। वे स्वप्न में भी इस बात की कल्पना न कर सकते थे कि अभी कुछ ही देर पहले वह उन्हीं के पास से होकर निकल गयी है! अस्तु—

आगन्तुक की बातें सुन कर नीले नक़ाबपोश ने विस्मय सूचक स्वर में कहा—"आश्चर्य है! समझ में नहीं आता यह ऐयार था कौन? कहीं दीयागढ़ का ही कोई ऐयार तो तुम्हारा अनुसरण नहीं कर रहा था?"

आगन्तुक ने उत्तर दिया—"मैंने तो उस व्यक्ति को आज से पहले कभी देखा ही नहीं था। दीयागढ़ के ऐयारों में से बहादुर-

सिंह और मेघसिंह को तो मैं बहुत पहले से जानता हूँ। कल कर्मागढ़ में विक्रमसिंह को भी देखा था। इन तीनों के अतिरिक्त यदि दीयागढ़-नरेश ने हाल में कोई नया ऐयार नियुक्त किया हो तो नहीं कह सकता।"

"अथवा शायद छद्मवेश में इन्हीं में से कोई हो!" काले नक़ाबपोश ने शंका की।

"सम्भव है!" आगन्तुक ने उदासीनता के साथ उत्तर दिया।

कुछ देर तक मौन रहने के उपरान्त नीले नक़ाबपोश ने गम्भीर स्वर में पूछा—

"यह तो हुआ, पर कर्मागढ़ में आप क्या क्या कर आये?"

आगन्तुक ने उत्तर दिया—"आपकी आज्ञा का अक्षरशः पालन किया गया है। जिस समय मैं कर्मागढ़ पहुँचा उस समय तक मीलूगढ़ के कुशल सैनिक चारों ओर शान्ति स्थापित कर चुके थे। युद्ध का कोई चिन्ह दिखाई न देता था। शासन-व्यवस्था सेनापति दलपतिसिंह के हाथ में थी। दिन भर मैं इधर-उधर घूम कर रंग-ढंग देखता रहा। मैंने देखा, चतुरसिंह स्वतंत्र कर दिये गये थे, तो भी मैंने विचार किया कि किसी न किसी प्रकार की देख-रेख उन पर अवश्य होगी। अतएव अवसर पाकर मैंने विक्रमसिंह के रूप में उनके यहाँ जाना उचित समझा। जब मैं उनके यहाँ पहुँचा तब वे सेठ जमनालाल से बात-चीत कर रहे थे। मैंने जाते ही सेठ जमनालाल को गहरी नींद में सुला

दिया, और इसके बाद बाज़ की भाँति चतुरसिंह पर टूट पड़ा। अपनी वही पागल कर देने वाली ओषधि मैंने बरबस उनके मुँह में ठूँस दी। इस प्रकार जागृत अवस्था में रहते हुए भी वे मेरे अधिकार में आगए। लोगों को भ्रम में डालने के उद्देश से उन्हीं के हाथों मैंने सेठ जमनालाल के नाम एक छोटा सा पत्र लिखवा कर उनकी जेब में रख दिया और उन्हें चतुरसिंह के रूप में रंग कर कुर्सी पर चुपचाप इस प्रकार बिठा दिया कि देखनेवाले को वे पूर्ण जागृत से जान पड़ते थे। इस ओर से निश्चित होकर मैं चतुरसिंह को लिए हुए बाहर निकल आया और उन्हें अपने घोड़े पर चढ़ाकर सेठजी के मकान की ओर अग्रसर हुआ। इस अवस्था में मुझ पर कोई सन्देह न कर सकता था। सेठजी के लड़के को चेतावनी का एक पत्र देकर मैं कर्मागढ़ से भाग निकला। इधर रास्ते में एक और विचित्र घटना हो गई। आधी रात के लगभग मुझे दो अश्वारोही एक ही घोड़े पर चढ़े बातचीत करते हुए जाते दिखाई दिये। यद्यपि मैं उनकी बातें भली भाँति समझ नहीं सका तो भी मुझे उनके ऊपर एक प्रकार का सन्देह-सा होने लगा। मैं उनका अनुसरण करता हुआ एक खुले हुए वन-प्रान्त के समीप तक चला गया। सहसा मुझे ऐसा जान पड़ा मानों वे दोनों क्रमशः किसी गड्ढे में कूद पड़े हों। मैं अपने कौतूहल को दबा कर न रख सका और घोड़े से उतर कर अनुमान के सहारे

घटना-स्थल पर जा पहुँचा। एक सूखे कुएँ के पास घोड़ा बँधा हुआ था। अधिक विलम्ब किए बिना मैं भी कुएँ में कूद पड़ा। परन्तु कहीं कोई न दिखाई दिया। हताश होकर मैं बाहर निकल आया और उस ओर से ध्यान हटा कर अपनी राह लगा।"

नीले नक़ाबपोश ने गम्भीरता पूर्वक कहा—"आप का कौशल सचमुच प्रशंसनीय है। परन्तु कर्णसिंह हाथ में आकर निकल गये। यह अच्छा नहीं हुआ। न मालूम वे किसके अधिकार में हों!"

काले नक़ाबपोश ने विचार करते हुए उत्तर दिया—"मैं तो समझता हूँ यह काम दीयागढ़ के ही किसी ऐयार का है। आप ही विचार कीजिए उनके अतिरिक्त और कौन हो सकता है? चतुरसिंहजी इस समय हमारे अधिकार में हैं, और उनके बाक़ी ऐयार......"

उसकी बात को बीच ही में काटते हुए आगन्तुक बोल उठा—"यदि आपका अनुमान ठीक है तो निस्सन्देह वे शीघ्र से शीघ्र मीलूगढ़-सैनिक-दल के पास पहुँचा दिये जायँगे।"

"अवश्य" काले नक़ाबपोश ने जोर देकर कहा।

नीले नक़ाबपोश ने गम्भीरता के साथ कहा—"तब हम लोग भानुपुर की ओर चल कर एक बार उन्हें फिर अपने अधिकार में करने का प्रयत्न क्यों न करें?"

नीले नक़ाबपोश का प्रस्ताव उन्हें पसन्द आया। थोड़ी देर तक वे लोग धीरे-धीरे कुछ परामर्श करते रहे। नवलसिंह

इस समय उनकी बातों को न सुन सकते थे। वे इन लोगों का रहस्य जानने के लिए उत्सुक हो उठे। उपयुक्त अवसर जान कर उन्होंने झरोखे की राह एक बड़ा सा गोला कुटी के भीतर फेंक दिया। सारी कुटी धुएँ से भर गयी। नवलसिंह घूम कर कुटी के भीतर जा पहुँचे। धुएँ का बादल हट चुका था। परन्तु नवलसिंह ने देखा कुटी सूनी पड़ी थी। उनके आश्चर्य की सीमा न रही। उन्होंने कुटी का कोना कोना छान डाला परन्तु कहीं दूसरे द्वार का चिन्ह तक न दिखाई दिया। हताश होकर वे कुटी के बाहर निकल कर उस स्थान की ओर लौट पड़े जहाँ उन्होंने अपने घोड़े को बाँधा था। परन्तु न वहाँ घोड़ा था और न संन्यासी! हतबुद्धि-से होकर वे कुछ देर तक इधर-उधर भटकते रहे।

सहसा उन्हें मानों कुछ स्मरण हो आया। वे फिर कुटी की ओर लौट पड़े। थोड़ी देर तक कुटी के द्वार के आस-पास अनुसन्धान करने पर उन्हें दाहिनी ओर तरु-समूहों की ओट में बँधे हुए तीन घोड़े दिखाई दिये। नवलसिंह एक घोड़ा खोल कर उसकी पीठ पर जा बैठे और तेजी के साथ वीरपुर की ओर अग्रसर हुए।

× × ×

दिन निकल चुका था। वीरपुर के समीप पहुँचने पर नवल-सिंह को किसी प्रकार सरोजिनी से एकान्त में मिलने का अवसर

निकालने की चिन्ता हुई। सीधे ठाकुर साहब की ड्योढ़ी में जाना उन्हें उचित न जान पड़ा। वे घोड़े से उतर कर बड़ी देर तक उसी मार्ग पर टहलते रहे जिस पर सरोजिनी प्रातः काल अश्वारोहण के लिये जाया करती थी। परन्तु बहुत दिन चढ़ जाने पर भी उनकी सरोजिनी न आयी। विवश होकर वे धड़कते हुए हृदय से ठाकुर साहब के प्रासाद की ओर अग्रसर हुए।

ठाकुर जंगबहादुरसिंह अपने मकान की बाहरी दालान में सिर झुकाए धीरे-धीरे गुनगुनाते हुए टहल रहे थे। नवलसिंह के पैरों की आहट पाते ही उन्होंने चौंक कर ऊपर की ओर देखा। नवलसिंह क्षण भर के लिए संकोच से मानों गड़ गये। सिर नीचा किए हुए उन्होंने सम्मान पूर्वक ठाकुर साहब का अभिवादन किया।

रास्ते भर वे यही चिन्तन करते चले आ रहे थे कि बातों का क्रम किस प्रकार निकालना होगा। शायद ठाकुर साहब उनके पिछले व्यवहार का ध्यान कर मन ही मन अप्रसन्न हो रहे हों। न जाने मिलने पर वे क्या कहें! उनके पैर आगे न बढ़ते थे। तो भी सरोजिनी का प्रबल आकर्षण उन्हें ठाकुर साहब की ड्योढ़ी की ओर बरबस खींचे लिये जा रहा था। उन्होंने सोचा था पहले द्वार पर ही किसी से ठाकुर साहब के मनोभावों को जानने का प्रयत्न करेंगे। परन्तु सामने ही ठाकुर साहब के मिल जाने से वे असमञ्जस में पड़ गये। उनके मुँह से एक भी शब्द न निकल सका।

ठाकुरसाहब ने उन्हें पहिचान लिया। स्वाभाविक सरलता के साथ उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा—"आइये, आइये, नवलसिंह जी ? अब तक आप कहाँ रहे ? अरे भई, ये ऐयार तो अपने घर के आदमियों को भी नहीं छोड़ते !" ठाकुर साहब ठठा कर हँस पड़े। नवलसिंह का भय दूर हो गया। ठाकुर साहब के समीप पहुँच कर कुछ झेंपते हुए उन्होंने उत्तर दिया—"क्षमा कीजियेगा, उस समय ऐसी ही आवश्यकता आ पड़ी थी। मुझे......"

ठाकुर साहब उनके कंधे पर हाथ रखते हुए बोल उठे—"अच्छा, इसे रहने दीजिए। कहिए, महाराज वीरसिंह प्रसन्न तो हैं ? आप अभी कहाँ से आ रहे हैं ? चलिए, बैठ कर कुछ देर बातें होंगी। मेरा मन भी जरा उद्विग्न-सा हो रहा था, आप अच्छे आ गये।" कहते हुए नवलसिंह के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना उनका हाथ थाम कर वे दरबार भवन की ओर अग्रसर हुए।

नवलसिंह ने कहा—"मैं तो अभी कर्मागढ़ से आ रहा हूँ। इधर का समाचार तो आपने सुना ही होगा। राजकुमारी इन्दुमती सकुशल दीयागढ़ भेज दी गयी हैं। कर्मादुर्ग का पतन हो चुका है। महाराज कर्णसिंहजी इस समय मीलूगढ़-नरेश के बन्दी हैं। परन्तु युद्ध के बाद से महाराज चन्द्रसिंह का पता नहीं है।"

ठाकुर साहब नवलसिंह को लिए हुये बैठक में आ पहुँचे। एक कुर्सी पर बैठते हुए उन्होंने लापरवाही के साथ कहा—"वही

तो ! भला धरती अन्याय कब तक सहेगी ? आप नहीं जानते नवलसिंहजी, मैंने कर्मागढ़-नरेश को सीधी राह पर लाने के लिये कितनी बार प्रयत्न किया है। अन्त में मुझे भी हताश होकर एक प्रकार से उनसे सम्बन्ध-विच्छेद-सा ही करना पड़ा। नहीं तो एक समय उनसे मेरी कितनी घनिष्ठता थी। आज भी मुझे वे दिन भूले नहीं हैं। कर्णसिंह के व्यक्तिगत जीवन का कोई अंग मुझसे छिपा न था......"

ठाकुर साहब ने बातों की झड़ी लगा दी। परन्तु नवलसिंह की चञ्चल आँखें किसी को खोज रही थीं। उनका ध्यान ठाकुर साहब की ओर न था। उनके कान सरोजिनी का संवाद सुनने के लिए उत्कंठित हो रहे थे। सहसा अपनी लम्बी कथा का उप-संहार करते हुए ठाकुर साहब ने पूछा—"बहादुरसिंहजी तो अच्छी तरह हैं ? इधर बहुत दिनों से वे भी नहीं मिले।"

नवलसिंह कहने लगे—"कर्मागढ़ संग्राम के बाद वे मीलूगढ़-नरेश की खोज में किसी ओर निकल गये हैं। मैं भी..."

ठाकुर साहब उनके उत्तर की ओर विशेष ध्यान दिए बिना, कुछ अपनी ही धुन में कह चले—"अजी, आप लोगों की देखादेखी इधर मेरी सरोजिनी को भी ऐयारी सीखने का चाव लग गया है। मैंने तो उसे बहादुरसिंहजी को ही सौंप दिया है। मुझे बहादुरसिंहजी का बड़ा भरोसा है। अभी आज ही उनके आदेशानुसार वह धुरीपुर की ओर गयी है। आप

जानते हैं मैंने अपनी सरोजिनी को बड़े उत्साह और बड़ी लगन के साथ सारी पुरुषोचित कलाओं की शिक्षा दी है। सरोजिनी मेरी अकेली सन्तान है, नवलसिंह जी ! पर वह है बड़ी चतुर। आप देखेंगे कुछ ही दिनों में वह अच्छे अच्छे ऐयारों से टक्कर लेने लगेगी।" कहते कहते ठाकुर साहब का मस्तक गर्व से ऊँचा हो गया।

नवलसिंह की आशा पर पानी फिर गया। तो भी उन्होंने कुछ हिचकिचाते हुए पूछा--"धुर्रापुर में क्या उन्हें सरदार के पास रहना होगा ? अथवा सरदार से मिल कर आज ही कल में वे......"

ठाकुर साहब ने कुछ उपेक्षा के साथ उत्तर दिया—"स्पष्ट तो नहीं कह गयी है। बहादुरसिंह का जैसा आदेश हो।"

नवलसिंह की रही-सही आशा भी धूल में मिल गयी।

कुछ देर तक वे अन्यमनस्क से होकर ठाकुर जंगबहादुर-सिंह के साथ साधारण बात चीत करते रहे। अन्त में अवसर देख कर उन्होंने नम्रता पूर्वक निवेदन किया—"महाराज ! मुझे देर हो रही है। अतएव अब आप से जाने की अनुमति चाहता हूँ। एक आवश्यक कार्यवश इधर आ निकला था। विचार किया आपके दर्शन करता चलूँ। इसीलिए आपको इतना कष्ट दिया। आप से यह छिपा नहीं है कि हम लोग इस समय कुछ विचित्र उलझनों में फँसे हुए हैं। महाराज चन्द्रसिंह सम्बन्धी घटना के

कारण समस्या और भी जटिल हो गयी है। उनका अनुसन्धान किए विना हम लोगों को विश्राम नहीं है।"

ठाकुर जंगवहादुरसिंह ऐयारों के उत्तरदायित्व को भली भाँति समझते थे। नवलसिंह को अधिक देर तक रोकना उचित न समझ कर वे गम्भीरता पूर्वक बोले—"आप ठीक कहते हैं। मीलूगढ़-नरेश का इस प्रकार अन्तर्द्धान हो जाना सचमुच चिन्ताजनक है। ईश्वर आप लोगों को सफलता दे।"

यह कहते हुए वे उठ खड़े हुए और नवलसिंह के साथ-साथ वाहर तक चले आये। शिष्टाचार-निवेदन के वाद उनकी अनुमति लेकर नवलसिंह ने घोड़े की लगाम सँभाली।

ठाकुर साहव ने शुभेच्छाएँ प्रकट करते हुए कहा—"देखिए, ज़रा आप भी सरोजिन पर निगाह रखियेगा। आख़िर अभी वह अवोध वालिका ही है।" घोड़े की रकाव पर पैर रखते हुए नवलसिंह ने उत्तर दिया—"उनकी ओर से आप निश्चिन्त रहिये।"

सम्मानपूर्वक ठाकुर साहव का अभिवादन करने के उपरान्त उन्होंने भारी हृदय से प्रस्थान किया।

नवाँ परिच्छेद

विकराल काल के भीषण अट्टहास-रव से प्रति पल प्रति-ध्वनित संग्राम-भूमि पर भयानक अस्त्र-शस्त्रों के असह्य आघातों को फूल समझ कर हँसते-हँसते विशाल वक्ष: स्थल पर सँभाल लेने की क्षमता रखने वाले महावीर को भी एक बार अपने नुकीले नयन-शरों की चोट से विचलित कर देने वाली डाली की इच्छा के आगे यदि संन्यासी को सिर झुकाना पड़ा तो क्या आश्चर्य ! परन्तु 'सुवर्ण-रहस्य' पर उसकी ममता डाली के प्रति उसके प्रबल आकर्षण से किसी प्रकार कम न थी। अपने रहस्य-पूर्ण जीवन की गाढ़ी कमाई 'सुवर्ण-रहस्य' को अपनी आज की प्रेयसीडाली के हाथ सौंपे हुए उसे पूरे दो दिन बीत चुके थे। आज तीसरा दिन था। संन्ध्या तक सुवर्ण-रहस्य सहित डाली सदा के लिए उसकी हो जायगी। यह मधुर कल्पना रह रह कर

उसके हृदय को गुदगुदा रही थी। परन्तु उसका चित्त अशान्त था। किसी अनिष्ट की आशंका से उसका मन उद्विग्न हो रहा था।

पिछले तीन-चार दिनों की घटनाएँ चंचल छाया-चित्रों की भाँति क्रमशः उसके मानस-पटल पर अंकित होकर उसकी बुद्धि को चमत्कृत कर रही थीं—वह दस्यु-दल ! श्वेतभवन ! कमीगढ़-नरेश का उद्धार ! निर्जन वन प्रान्त में कर्णसिंह सहित उसका आकस्मिक पतन ! और फिर एक घोड़े की पीठ पर उसका नयनोन्मीलन ! ओह ! यदि कहीं कुछ देर और वह उसी अवस्था में पड़ा रह जाता ? पर वह घोड़ा था किसका ? और उसका वह अज्ञात प्रतिद्वन्दी उसे इस प्रकार छोड़ कर कहाँ चला गया था ? संन्यासी के लिए यह एक रहस्य-पूर्ण पहेली बनी रह गयी !

उसी घोड़े पर बैठा वह नाना प्रकार की चिन्ताओं में निमग्न मन्दगति के साथ भानुपुर की ओर अग्रसर हो रहा था। वह सोचता था—"यदि कहीं सुवर्ण-रहस्य का भेद किसी पर प्रकट हो गया हो! वह...वह दुष्ट...मोती बाग़ का माली...ओह ! जिसकी ओर से मैं कब का निश्चिन्त हो चुका था...कहीं वही सूँघता हुआ भानुपुर न जा पहुँचा हो ! परन्तु नहीं, इसकी भनक किसी के कानों में पड़ी हो यह सम्भव नहीं" संन्यासी ने अपने मन को समझाया, "और फिर आज सन्ध्या के बाद तो मैं सुवर्ण-

रहस्य सहित डाली को लेकर कुछ दिन के लिए संसार की आँखों से बहुत दूर अपने उस अज्ञात भवन में जा बसूँगा जहाँ मेरी अनुमति के बिना पवन और प्रकाश की भी पहुँच नहीं।" कितनी देर तक वह चलता रहा इसका उसे ध्यान न था। धीरे-धीरे भगवान् दिन-नायक दिन भर के कठिन परिश्रम के अनन्तर अस्ताचल की ओट में जा छिपने के लिए उद्यत हुए। लजीली पश्चिमा सुन्दरी ने बहुमूल्य लालों से अपना सुनहला थाल सजा कर उनके स्वागत का उपक्रम किया।

इसी समय सहसा सामने दक्षिण में भी सुदूर क्षितिज पर सूर्यास्त की अरुणिमा का-सा दृश्य देख कर संन्यासी के कौतूहल की सीमा न रही। भानुपुर अधिक दूर न था। संन्यासी ने घोड़े को एक हलकी सी एड़ लगा दी। घोड़ा हवा से बातें करने लगा। कुछ ही क्षणों के अनन्तर आग की ऊँची ऊँची लपटों के प्रकाश में भानुपुर के मकानों की अट्टालिकाएँ दिखाई देने लगीं। संन्यासी का चित्त सशंक हो उठा। आग के उछलते हुए अंगारों तथा जन-समूह के उग्र कोलाहल से उसने अनुमान कर लिया कि कोई भारी दुर्घटना हो गई है। देखते ही देखते वह भानुपुर के उत्तरी किनारे पर आ पहुँचा। उसने देखा, भीषण अग्निकाण्ड उपस्थित है—ठीक उसी ओर जिस ओर उसकी डाली का घर है। लोग घबराए हुए उसी ओर भागे जा रहे हैं!

"सुवर्ण-रहस्य...डाली...दस्यु दल..." बिजली की भाँति

उसके मस्तिष्क में एक कल्पना की रेखा दौड़ गयी। वह लपकता हुआ घटनास्थल की ओर अग्रसर हुआ। उसने देखा, भानुपुर के पूर्वीय-भाग में एक विशाल भवन 'धू-धू' करता हुआ जल रहा था। सामने भानुपुर के नागरिकों की भीड़ लगी थी। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था। डाली का घर घटनास्थल से दूर था। संन्यासी की शंका कौतूहल में परिणत हो गयी। घोड़े से उतर कर वह इस दुर्घटना का रहस्य जानने का प्रयत्न करने लगा।

एकाएक एक करुणाभरी आवाज़ सुनाई दी—"हाय! मेरी चमेली तो भीतर ही रह गई!" सब का ध्यान उसी ओर आकर्षित हो गया। सारा जन-समाज व्याकुल हो उठा।

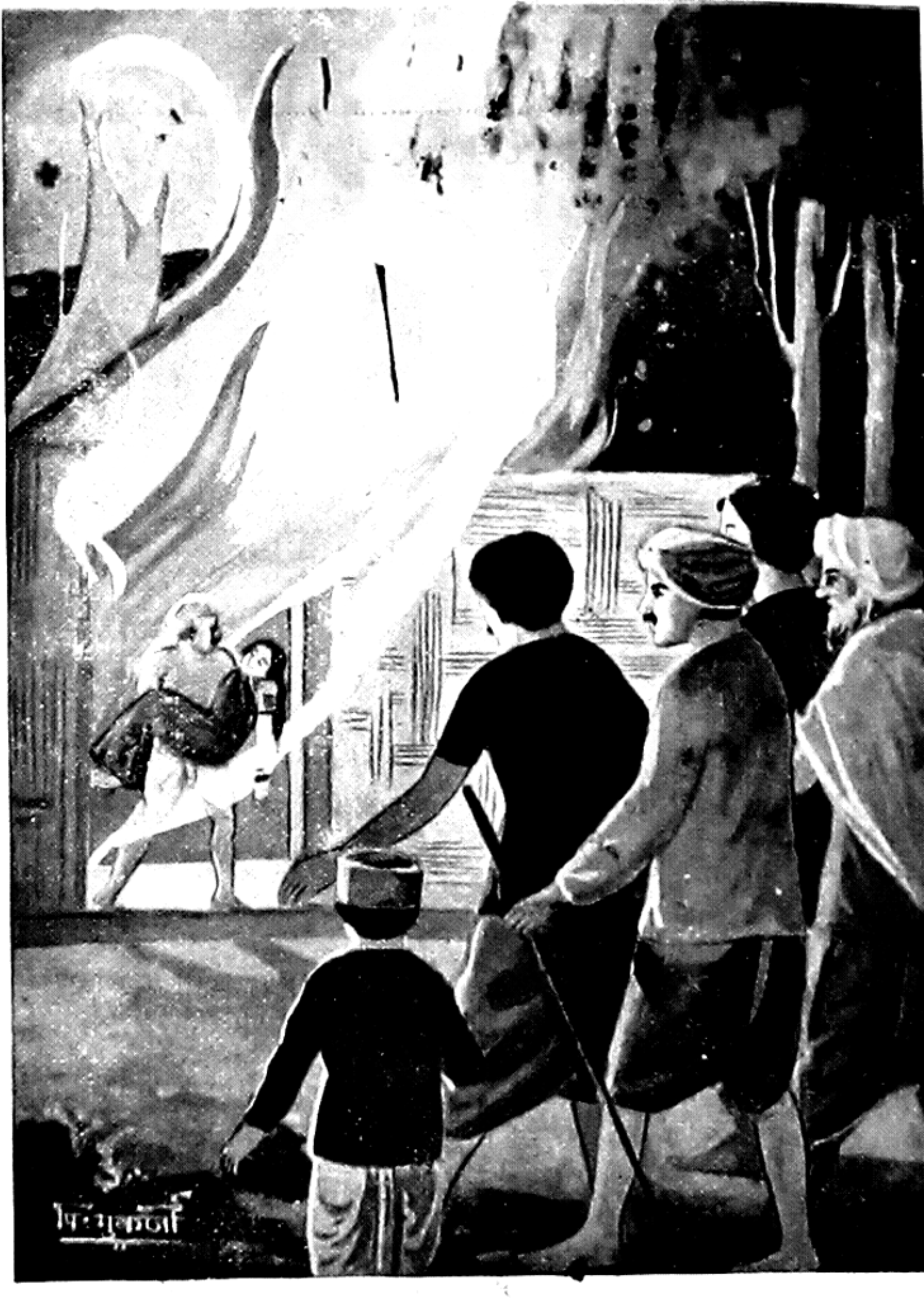
लोगों से मालूम हुआ कि यह भानुपुर के अग्रगण्य रईस सेठ दीनदयाल की हवेली थी। अभी कल ही किसी अनिवार्य कारण वश उनके सम्बंधी कर्मागढ़-नरेश के अन्तरंग मित्र सेठ जमनालाल सकुटुम्ब उनके अतिथि होकर यहाँ आए थे। पाठकों को स्मरण होगा कुछ ही दिन पहले सेठ जमनालालके बड़े लड़के का विवाह भानुपुर के सेठ दीनदयाल की कन्या चमेली के साथ हुआ था*। चमेली भी सेठजी के साथ कल ही भानुपुर आई थी।

आज बेचारी अबोध बालिका के इस प्रकार दुर्घटना में फँस जाने का सम्वाद सुनते ही लोग स्तम्भित रह गए। किसी को कोई

* देखिये प्रथम भाग, चौथा और छठाँ परिच्छेद।

उपाय न सूझ पड़ता था। एक ओर चमेली के पिता सेठ दीनदयाल छाती पीट-पीट कर रो रहे थे और दूसरी ओर उसकी माता लोक लज्जा को तिलाञ्जलि देकर पागलों की भाँति प्रलाप करती हुई अपने बाल नोच रही थी। उपस्थित नागरिकों की आँखें आँसुओं से डबडबा आईं। सब के मुँह पर केवल एक बात थी--"हाय! बेचारी को इन अग्नि-शिखाओं के बीच से कौन निकालेगा!" सब एक दूसरे का मुँह ताक रहे थे।

सहसा तीर की भाँति जनसमूह को चीरता हुआ एक अपरिचित पुरुष मकान की ओर झपटा और देखते ही देखते आग की धधकती हुई लपटों के बीच अन्तर्द्धान हो गया। लोग साँस थामकर यह साहस-पूर्ण व्यापार देखने लगे। कुछ ही क्षणों के अनन्तर सब ने देखा एक बेसुध बालिका को गोदी में उठाये हुए वह पुरुष प्रधान द्वार पर आ पहुँचा। उसका सारा शरीर झुलस गया था। धुएँ के कारण उसकी आँखें बन्द हो गयी थीं। अकस्मात् लोगों के मुँह से हर्ष और उत्साह की एक चीख निकल गयी। प्रसन्नता की एक लहर सारे जनसमूह में दौड़ गयी। अपरिचित पुरुष चमेली को लिए हुए बाहर निकल आया। लोगों ने कई पग आगे बढ़ कर उसे गिरते-गिरते सँभाला। उसके चारों ओर दर्शकों की भीड़ एकत्र हो गयी। संन्यासी भीड़ को हटाता हुआ उसके समीप जा पहुँचा। उसने देखा अपरिचित पुरुष बेसुध पड़ा था। अपने झोले से एक काली-काली भस्म निकाल कर



"सबने देखा एक बेसुध बालिका को गोदी में उठाए हुए वह पुरुष प्रधा
द्वार पर आ पहुँचा ।"

संन्यासी उसके चेहरे पर मलने लगा। सहसा उसका हाथ काँप उठा। उसने पहिचाना—वही मोती बाग़ का माली जो उसे दस्यु-दल के अड्डे में मिला था! संन्यासी घबराकर कई पग पीछे हट गया। लोग कौतूहल पूर्वक उसके इस व्यवहार को देख रहे थे। क्षण भर बाद वह व्यक्ति आँखे मलता हुआ उठ बैठा, संन्यासी की अद्‌भुत भस्म के प्रभाव से उसके चेहरे की जलन बन्द हो गयी थी। उसने देखा, सेठ दीनदयाल सामने खड़े थे। उनकी ओर देखते हुए उसने पूछा, "आपकी चमेली......?"

सेठजी ने कृतज्ञता पूर्वक उत्तर दिया, "आप उसके लिए चिन्ता न करें। वह पड़ोस के मकान में सकुशल है। आपका चित्त अब कैसा है?"

उसने सेठजी की बात का कोई उत्तर न दिया। एक बार उसने चारों ओर दृष्टि घुमाई। उसकी दृष्टि अनायास संन्यासी पर पड़ी। आवेश के कारण वह एकाएक उठ खड़ा हुआ। और बिना कुछ कहे सुने संन्यासी की ओर घृणा पूर्वक ताकता हुआ भीड़ में अन्तर्द्धान हो गया। कुछ लोग संन्यासी को घेर कर खड़े हो गये और उससे अनेक प्रकार के प्रश्न करने लगे, "आप क्या इस पुरुष को जानते हैं? ...यह कौन था?...... आप की ओर इस प्रकार क्यों ताक रहा था?......इत्यादि।"

संन्यासी अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए अभी कुछ कहना ही

चाहता था कि एक ओर से आवाज़ आई—"सेठ जमनालाल नहीं दिखाई देते ! कहाँ गये ?"

किसी ने उत्तर दिया—"कहाँ गये ! उन्हें तो हमने भी नहीं देखा !"

नागरिकों में एक बार फिर हलचल मच गयी। सब लोग परस्पर यही प्रश्न दुहराने लगे।

उपयुक्त अवसर देख, संन्यासी लोगों की दृष्टि बचाता हुआ चुपचाप एक गली में घुस गया और उत्सुकता के साथ डाली के घर की ओर अग्रसर हुआ। उसने आशा की थी कि डाली अपने द्वार पर खड़ी हुई इस भीषण अग्नि-काण्ड के दृश्य को देख रही होगी। परन्तु डाली का द्वार सूना था। धड़कते हुए हृदय से उसने भिक्षा के लिए आवाज़ लगाई। कुछ ही क्षणों के अनन्तर लाठी टेकती हुई डाली की बुढ़िया बाहर निकल आई। अपने चिर परिचित संन्यासी को देख कर उसने पूछा—"आपने उस भीड़ में मेरी डाली को तो नहीं देखा बाबाजी ?"

"नहीं," संन्यासी ने नैराश्य-पूर्ण स्वर में उत्तर दिया,

"क्या घर में नहीं है ?"

"न जाने दुपहर से कहाँ चली गई है। मैं तो इस लड़की से ऊब गई हूँ। कुछ सुनती ही नहीं......" बड़बड़ाती हुई बुढ़िया भीतर चली गयी।

संन्यासी चिन्तित हो उठा। वह व्यग्रतापूर्वक आस-पास

टहलता हुआ डाली की प्रतीक्षा करता रहा। परन्तु डाली न लौटी। संन्यासी ने समझ लिया ढंग अच्छा नहीं है। उस दुष्ट दस्यु का अकस्मात् भानुपुर में प्रकट होना रहस्य से खाली नहीं है। अधिक विलम्ब करना उचित न समझ कर वह अपने घोड़े की पीठ पर जा बैठा और निराशा तथा घबराहट से भरा हुआ श्वेत भवन की ओर अग्रसर हुआ।

× × ×

देखते ही देखते सेठ दीनदयाल का विशाल भवन जल कर भस्म हो गया। लोग इस दुर्घटना के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करते हुए अपने अपने घरों को लौटने लगे। सेठ दीनदयाल मन मारे हुए चुपचाप यह सब दृश्य देखते रहे। धीरे-धीरे अग्नि देव की भीषण ज्वाला शान्त हुई। एकान्त पाकर सेठजी अपने कुछ अन्तरंग मित्रों के साथ भस्मावशिष्ट सामग्रियों का निरीक्षण करने के लिए मकान के हाते के भीतर पैर रखना ही चाहते थे कि सहसा एक व्यक्ति ने हाँफते हुए आकर कहा—"सेठ जमनालालजी उत्तर ओर वाले तालाब के किनारे अचेतावस्था में पड़े मिले हैं। लोग उन्हें लिए हुए आ रहे हैं।" सेठ दीनदयाल घबराए हुए उसी ओर अग्रसर हुए। कुछ ही दूर चलने के अनन्तर उन्हें सेठ जमनालाल को उठाए हुए तीन चार व्यक्ति आते दिखाई दिए।

सेठ दीनदयाल को देखते ही उनमें से एक सम्भ्रान्त पुरुष ने

एक लिफ़ाफ़ा उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"देखिए, यह पत्र; उठाते समय यह सेठजी की पगड़ी से गिरा था।" सेठजी कौतूहल के साथ उसे खोलकर पढ़ने लगे। उसमें लिखा था—

सेठ जमना लाल जी !

भानुपुर और कर्मागढ़ में कोई अन्तर नहीं है। इस समय इतना ही काफ़ी है। सावधान, इस भेद को यदि किसी पर प्रकट किया तो कुशल नहीं है। चतुरसिंह के सम्बन्ध में यदि किसी को कोई गन्ध मिली तो आप भानुपुर क्या पाताल में छिप कर भी न बच सकेंगे। हाँ, आपको शायद यह जानकर प्रसन्नता होगी कि अपने आपको 'सर्वशक्ति सम्पन्न' समझने वाले आपके परम मित्र 'दम्भावतार' श्री 'शृगालकर्ण' जी इस समय हमारी अतिथिशाला की शोभा बढ़ा रहे हैं। अब आप ही समझ सकते हैं कि आप किस गिनती में हैं। अतएव व्यर्थ इधर-उधर न भटक कर आप कर्मागढ़ में विश्राम करें। जब आपकी आवश्यकता पड़ेगी तब हमारा निमंत्रण-पत्र आपकी सेवा में पहुँच ही जायगा। आशा है आप अस्वीकार न करेंगे। यह तो आप जानते ही हैं कि हमारे अभियोग में आपके सहयोग की बड़ी भारी ज़रूरत पड़ेगी।

आपका—वही।

सेठ दीनदयाल इस पत्र का एक शब्द भी न समझ सके। इधर लोगों ने सेठ जमनालाल को चैतन्य करने का उपक्रम

किया। कुछ ही देर के अनन्तर सेठ जमनालाल आँखें मलते हुए उठ बैठे। उन्होंने चकित होकर चारों ओर दृष्टि घुमाते हुए पूछा--"मुझे आपने कहाँ पाया ?"

सेठ दीनदयाल ने उत्तर दिया—"यहाँ से कुछ ही दूर पर, एक तालाब के किनारे। आप कितनी देर से ग़ायब हैं ? यह पत्र किसका लिखा हुआ है, आप पहिचान सकते हैं ?" कहते हुए उन्होंने पत्र सेठजी की ओर बढ़ा दिया।

पत्र पढ़ते ही उनके मुँह से निकल पड़ा "ओह ! इसने यहाँ भी न छोड़ा !" सेठ जमनालाल अपने आपको न सँभाल सके। एक बार फिर मूर्छित होकर वे गिर पड़े।

अधिक देर तक इस अवस्था में बाहर ठहरना उचित न समझ कर घबराहट से भरे हुए सेठ दीनदयाल ने उन्हें उठवा कर एक निकटवर्ती मित्र के मकान में प्रवेश किया।

× × ×

दूसरे दिन—

डाली और 'सुवर्ण रहस्य' की चिन्ता में व्याकुल संन्यासी अनुमान के सहारे, मिट्टी सूँघता हुआ नवागढ़ जा पहुँचा। इसी अवसर पर हमारे पाठक संन्यासी को नवागढ़ के पश्चिम ओर वाली टेकड़ी के आस-पास चक्कर लगाते देख चुके हैं। कहना न होगा कि वृद्ध साधू को टेकड़ी से उठा कर ले जाते समय शंकरसिंह ने जिस व्यक्ति पर वार किया था वह मन्मथसिंह ही

थे।* और अचेतावस्था में ही मन्मथसिंह के सहसा अन्तर्धान हो जाने का कारण यही संन्यासी था। संन्यासी ने उन्हें टेकड़ी के पास से उठा कर नवागढ़ की सराय में पहुँचा दिया था।† परन्तु दूसरे दिन वह जिस प्रकार स्वयं रणसिंह तथा मेघसिंह के चंगुल में फँस गया और फिर जिस प्रकार नवागढ़ की सराय से निकल भागा उसका विवरण पाठक पिछले पृष्ठों में पढ़ चुके हैं।

सराय से निकल कर संन्यासी सारी रात और सारा दिन नवागढ़ की पश्चिमी टेकड़ी तथा वन-प्रान्त के आस पास चक्कर काटता रहा। परन्तु कोई परिणाम न निकला। सुवर्ण रहस्य, और डाली के बिना उसे न रात में नींद सुहाती थी और न दिन में भूख !

दूसरी रात—

संन्यासी उसी पश्चिम ओर वाले वन-प्रान्त के आस-पास व्यग्रतापूर्वक टहल ही रहा था कि सहसा उसे दो व्यक्ति उसी ओर आते हुए दिखाई दिये। एक वृक्ष की ओट में छिप कर संन्यासी उन लोगों की गति विधि को लक्ष्य करने लगा। दोनों परस्पर बात चीत करते हुए संन्यासी के सामने से निकल कर पश्चिम दिशा की ओर अग्रसर हुए। संन्यासी उनकी बातें

* देखिए दूसरा भाग अंतिम परिच्छेद,

† देखिए तीसरा भाग पाँचवाँ परिच्छेद।

सुनता हुआ सावधानी के साथ उनका अनुसरण करने लगा। वे लोग कौन थे ? और संन्यासी ने उन्हें बातें करते सुना ? यह हम अभी नहीं बताना चाहते। परन्तु इतना कह सकते हैं कि उन लोगों की बातें सुनकर संन्यासी का हृदय कौतूहल से भर गया। लगभग आधा मील जाने के अनन्तर संन्यासी ने एक गोला उन लोगों के सामने पटक दिया। गोले के विषैले धुएँ के कारण क्षण भर बाद ही दोनों माथा थाम कर बैठ गए। संन्यासी अपने दोनों क़ैदियों को क्रमशः एक निराली जगह पर उठा ले गया।

न जाने किन विचारों में डूबा हुआ वह बड़ी देर तक आवेश पूर्वक अपने क़ैदियों के पास टहलता रहा। इतनी देर तक वह किस उधेड़-बुन में पड़ा रहा ? उसका चञ्चल मस्तिष्क कल्पना की किन तरंगों में प्रवाहित होता रहा ? तथा उसकी उर्वरा बुद्धि किन अद्भुत षड्यन्त्रों की रचना में लगी हुई थी यह तो वही जाने परन्तु लगभग घंटा भर बाद वह आनन्द और उत्साह के साथ उछल पड़ा। मानों दुर्भेद्य अन्धकार से आच्छादित सघन वन-प्रान्त में भूले हुए पथिक को कोई राह सूझ गयी हो ! आवेश के कारण अनायास उसके मुँह से निकल पड़ा, "यह लिया !" वह आपही आप खिलखिला कर हँस पड़ा। एक बार उसकी हँसी से वह निर्जन वन-प्रान्त प्रतिध्वनित हो उठा। क्षण भर बाद कुछ गम्भीर होकर वह फिर पहले की भाँति टहलता हुआ अपने ही प्रति अस्फुट स्वर में

कहने लगा, "इस बार बाज़ी मेरे हाथ है मन्मथ ! कहाँ जाओगे ?... हाँ अब चलो ...हाँ अब...अब बचो...यह... यह किश्त...और यह मात...मुझसे टक्कर लेने चले हो मूर्ख ?" सहसा उसे ध्यान आया कहीं कोई देखता न हो। वह सावधान हो गया। इधर-उधर चारों ओर एक चक्कर लगाकर वह फिर अपने क़ैदियों के पास लौट आया और बड़ी देर तक दोनों के चेहरों को अनेक प्रकार के रंगों से रँगता रहा। देखते ही देखते उसने एक को रंग कर अपना ही प्रतिरूप बना डाला और दूसरे को मीलूगढ़-नरेश महाराज चंद्रसिंह !

अन्त में दोनों को अपनी बलिष्ठ भुजाओं में समेट कर अन्धकार के आवरण में अपने आपको छिपाता हुआ वह गम्भीरता पूर्वक नवागढ़ की ओर अग्रसर हुआ।

दसवाँ परिच्छेद

पाठकों को स्मरण होगा कि काननपुर राज्य का दूत महाराज कन्दर्पसिंह द्वारा अपमानित होकर अजयगढ़ से बड़बड़ाता हुआ चला गया है और कमलनयन नामक ऐयार उसके पीछे भेज दिए गये हैं।* नगर से बाहर आकर कुछ दूर तक तो कमलनयन अलक्षित भाव से उसका अनुसरण करते रहे, परन्तु उन्होंने ध्यान पूर्वक उस दूत की गति विधि का अवलोकन करते ही यह जान लिया कि वह निरा भोंदू है अतएव उन्होंने उससे मिल कर उसके साथ ही साथ काननपुर जाना निश्चित किया और एक कलाल का वेष धारण कर दो चार बढ़िया शराबों के नमूने लिए हुए उसके समीप जा पहुँचे। शराब एक ऐसी वस्तु है जिसके प्रेमी असभ्य समाज के निरक्षर भट्टाचार्यों से लेकर सभ्य समाज के सर्व

---

* देखिए दूसरा भाग चौथा परिच्छेद

सम्मान्य सदस्य तक रहा करते हैं। बोतलों की सुगन्ध ने जंगली का ध्यान कमलनयन की ओर आकर्षित कर लिया। रास्ता चुपचाप चलने से नहीं कटता। जहाँ दो पथिक साथ-साथ चले कि बातों का क्रम भी किसी न किसी प्रकार चल ही पड़ता है। इधर जंगलीराम का दिमाग़ बोतल-वासिनी की भीनी भीनी सुगन्ध के साथ उड़ कर सातवें आसमान पर जा चढ़ा था। बस फिर क्या था! बातों का स्रोत पूरी उमंग के साथ उमड़ पड़ा। कमलनयन को काननपुर की भाषा समझने और बोलने का पूरा अभ्यास था। उन्होंने अपनी लच्छेदार बातों में दूत को ऐसा उलझाया कि उसे इन पर तनिक भी सन्देह न हुआ। इस प्रकार वे दूत से पते पते की बातें जानने का प्रयत्न करने लगे। बातों ही बातों, उन्हें काननपुर राज्य के सम्बन्ध में अनेक आवश्यक बातें मालूम हो गईं। यहाँ तक कि कमलनयन पर अपने गौरव की धाक जमाने के उद्देश से दूत ने अपनी गुह्यातिगुह्य राजकीय विषयों की जानकारी प्रकट करनी आरम्भ की। वहाँ के 'अगाध कूप' और 'पाताल तहखाने' का भी हाल कमलनयन को मालूम हो गया। वे यह भी जान गए कि नवागढ़-नरेश की ओर से ही यह विशाल राज्य ताड़का देवी के पूर्वजों को सौंपा गया था। दूत ने उन्हें यह भी बताया कि तहखाने में असंख्य धनराशि भरी है परन्तु उसका उपभोग ताड़का देवी के वंशज नहीं कर सकते और न उसे वहाँ के कोई नागरिक ही निकाल सकते हैं।

दूत के साथ अपनी मनोरञ्जक यात्रा व्यतीत करते हुए कमलनयन तीसरे दिन नवागढ़ आ पहुँचे। नवागढ़ नगर को बाएँ हाथ छोड़ कर वे लोग पश्चिमोत्तर वाले गिरिप्रदेश की ओर अग्रसर हुए। गहन वनों से आच्छादित यह पर्वत माला इतनी दुर्गम थी कि एक पहाड़ी पार करने के बाद ही कमलनयन को विश्राम का प्रस्ताव करना पड़ा। एक सघन तरुपुञ्ज के नीचे बैठते हुए कमलनयन ने उसी जंगली भाषामें पूछा—"तुम्हारा काननपुर अब यहाँ से कितनी दूर होगा?"

"बिलकुल पास" जंगली ने उत्तर दिया,"तीन चार घण्टे का रास्ता होगा।" कहता हुआ वह भी बैठ गया। एक बोतल से थोड़ी सी शराब ढाल, उसमें बेहोशी की दवा मिला कर कमलनयन ने जंगली की ओर बढ़ा दी। जंगली एक साँस में सारी शराब पी गया। कुछ दम लेकर कमलनयन ने कहा, तब तो नवागढ़ और काननपुर बिलकुल पास ही पास हैं। दोनों राजपरिवारों में आना जाना बना रहता होगा।

दूत ने उपेक्षापूर्वक उत्तर दिया—"जंगल और पहाड़ों के कारण नवागढ़ से कभी कोई नहीं आता। लोग कहते हैं पुराने समय में नवागढ़ से प्रति वर्ष एक बार कोई न कोई पाताल तहखाने और अगाध कूप की जाँच के लिए जाया करता था परन्तु इधर पाँच छः वर्ष से तो कोई नहीं गया। जबसे नई रानी गद्दी पर बैठीं......"

कहते कहते जङ्गलीराम झूमने लगे और क्षण भर बाद पैर पसार कर लेट रहे। कमलनयन उसकी तलाशी लेने लगे परन्तु कोई उल्लेख योग्य सामग्री उन्हें न मिल सकी। दूत को उसी अवस्था में छोड़ कर वे काननपुर की ओर अग्रसर हुए।

अभी वे दो ही तीन मील गये होंगे कि उन्हें एक अपरचित अश्वारोही बाईं ओर से आता दिखाई दिया। अश्वारोही यद्यपि अभी बालक था तो भी उसकी अश्व-संचालन-कला में कुछ ऐसी विचित्रता थी कि कमलनयन का ध्यान बरबस उसकी ओर आकृष्ट हो गया। वे चकित होकर उसकी ओर देखने लगे। बाल अश्वारोही कमलनयन के समीप आकर फ़ुर्ती के साथ घोड़े से उतर पड़ा और निःसंकोच भाव से मुस्कुराते हुए कहने लगा "क्षमा करना, पथिक! मैं बड़ी देर से इस वन-प्रान्त में भटक रहा हूँ। आप क्या मुझे काननपुर की राह बता सकते हैं?"

"काननपुर?" ऐयार कमलनयन ने कौतूहल के साथ दुहराते हुए पूछा—"आप काननपुर जाँयगे? मैं भी तो वहीं जा रहा हूँ। यदि आप मेरे साथ पैदल चल सकें..."

अश्वारोही ने उनकी बात काटते हुए कहा—"यदि आप को कोई आपत्ति न हो तो आप भी मेरे साथ घोड़े पर बैठ कर चले चलें। जल्दी पहुँच जायँगे!"

"परन्तु आप को असुविधा तो न होगी?" ऐयार कमलनयन ने शंका की।

"आप बैठिए तो सही!" अश्वारोही ने मुस्कुराते हुए कहा।

कमलनयन बिना कुछ कहे सुने घोड़े की पीठ पर जा बैठे। घोड़े की लगाम बाल अश्वारोही के हाथ में थी। घोड़े को एक हलकी सी एड़ लगाते हुए बालक ने पूछा—"क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूँ?" बालक का भोलापन कमलनयन को पूरी तरह प्रभावित कर चुका था। उन्होंने सरलता के साथ उत्तर दिया—"मैं अजयगढ़ का दूत हूँ। मेरा नाम कमलनयन है एक आवश्यक राजकीय कार्य से..."

"कमलनयन!" बालक ने आश्चर्य के साथ कहा—"तब तो आप मेरे सहनाम ही निकले! क्योंकि मेरा भी नाम कमल-नयन है!"

कहना न होगा कि अश्वारोही और कोई नहीं बीरपुर के ठाकुर जंगबहादुरसिंह की कन्या सरोजिनी थी जिसे पाठक अनेक बार बालक वेष में देख चुके हैं और जिसने इस नवीन रूप में अपना नाम कमलनयन रख लिया है!

बालक कमलनयन (सरोजिनी) ने कुछ विचार करते हुए पूछा—"दीयागढ़ के ऐयार बहादुरसिंह को तो आप जानते ही होंगे?"

ऐयार कमलनयन ने सिर हिलाते हुए उत्तर दिया—"बहुत अच्छी तरह! अभी हाल में ही तो दीयागढ़ की राजकुमारी

इन्दुमती के उद्धार के लिए कर्मागढ़ में जो संग्राम हुआ था उसमें अजयगढ़ की सेना......"कहते कहते वे कुछ ठिठक गये।

बालक कमलनयन ने ऐयार कमलनयन की ओर भेद भरी दृष्टि से देखते हुए कहा—"हाँ, हाँ कहे जाइए। आप चुप क्यों हो गये। वह प्रसंग मुझसे छिपा नहीं है कमल नयन जी! कर्मागढ़-नरेश ने आपके युवराज मदनसिंह के साथ जो व्यवहार किया और फिर आप लोगों ने जिस प्रकार युवराज मदनसिंह सहित कुमारी इन्दुमती का उद्धार किया वह मैं जानता हूँ। सचमुच कर्मागढ़-संग्राम में यदि अजयगढ़ की सेना ने ठीक समय पर आकर मीलूगढ़-नरेश की सहायता न की होती तो कर्मादुर्ग पर विजय पाना महाराज चन्द्रसिंह के लिए सहज न था।" ऐयार कमल नयन के आश्चर्य की सीमा न रही। उन्होंने चकित होकर पूछा—"आपको यह सब भेद कैसे मालूम हुआ?"

"मैं स्वयं सरदार बहादुरसिंह के साथ संग्राम भूमि पर मौजूद था।" बालक कमलनयन ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया।

"ओह! तब तो आप बहादुरसिंह के नाते हमारे भी मित्र हुए" ऐयार ने उत्साह के साथ कहा, "फिर आपसे क्या छिपाव?" कहते हुए उन्होंने ताड़का देवी के विवाह-प्रस्ताव से लेकर आज तक की समस्त घटनाएँ निष्कपट भाव से सुना दीं तथा अन्त में अपनी काननपुर-यात्रा का उद्देश बताते हुए कहा—"अच्छा हुआ हम लोग एक से दो हो गये! आपसे कुछ न कुछ

सहायता ही मिलेगी आप मेरे साथ-साथ रह कर चुपचाप देखते जाइयेगा मैं इन मूर्खों से किस प्रकार सारा भेद मालूम किए लेता हूँ !"

ऐयार कमलनयन तथा कमलनयन नाम धारिणी सरोजिनी—दोनों परस्पर साधारण बात-चीत करते हुए काननपुर के समीप जा पहुँचे। सरोजिनी ने अपना यथार्थ परिचय तथा अपनी यात्रा का वास्तविक उद्देश्य ऐयार कमलनयन पर प्रकट करना उचित न समझा। काननपुर की विचित्र नगरी के निकट पहुँच कर एक उपयुक्त स्थान पर दोनों घोड़े से उतर पड़े। ऐयार कमलनयन ने एक जंगली नागरिक को पास बुला कर आज्ञासूचक स्वर में कहा—"हम लोग नवागढ़ से आए हैं। मेनकारानी ने हमें 'अगाध कूप' और 'पाताल तहखाने' की जाँच के लिए भेजा है। हमें दीवान दिग्गजदलनसिंह के मकान का रास्ता दिखाओ।"

जंगली बड़े सम्मान के साथ उन लोगों को दिग्गजदलनसिंह के भव्य प्रासाद की ओर ले चला। एक छोटे से दुर्गन्धि-पूर्ण मकान पर पहुँच कर उनका पथ-प्रदर्शक ठहर गया। द्वार के समीप जाकर उसने आवाज़ लगाई। एक नौकर ने बाहर निकल कर सूचना दी "दीवान महोदय रानी के पास गए हैं।"

पथ-प्रदर्शक ने ऐयार कमलनयन के प्रति हाथ जोड़कर निवेदन किया, "आप यहीं ठहरें मैं उन्हें बुलाए लाता हूँ।"

कमलनयन ने मानों कुछ झुँझलाते हुए कहा:—"चलो हम वहीं चलते हैं।"

पथ-प्रदर्शक घबराया हुआ राजभवन की ओर अग्रसर हुआ। दोनों ने उसका अनुसरण किया।

राजभवन अधिक दूर न था। पथ-प्रदर्शक ने भीतर जाकर रानी ताड़कादेवी तथा दीवान दिग्गजदलनसिंह को सूचित किया। दोनों इस समय राज्य-प्रबन्ध सम्बन्धी परामर्श में लगे थे। नवा-गढ़ का नाम सुनते ही ताड़का स्वयं दीवान को साथ लिए हुए बाहर निकल आई। ऐयार कमलनयन ताड़का का चित्र देख चुके थे। इसलिए उन्हें रानी को पहिचानने में कठिनाई न हुई। रानी ने दोनों अतिथियों का स्वागत करते हुए राज-प्रासाद के भीतर चलने की प्रार्थना की। ऐयार कमलनयन ने अस्वीकार करते हुए कहा, "इस समय क्षमा करें रानी साहबा! हम लोगों को नवागढ़ की महारानी मेनका देवी ने अगाध कूप और पाताल तहखाने के निरीक्षण के लिए भेजा है। हमें आज ही लौटना है। इसलिए शीघ्र ही सब प्रबन्ध हो जाना चाहिए।"

ताड़का देवी ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"धन्य भाग्य! इतने वर्षों के बाद महारानी ने हमारी याद तो की! मैं अभी सारा प्रबन्ध किए देती हूँ।" दीवान महोदय को सम्बोधन करते हुए ताड़का ने कहा—"दिग्गजदलनसिंहजी आप इन लोगों को

शीघ्र ही 'अगाध कूप' और 'पाताल तहखाना' दिखा दीजिए। प्रधान द्वारपाल को भी आप साथ ले सकते हैं।"

दीवान दिग्गजदलनसिंह न जाने किस चिन्ता में निमग्न थे। उन्होंने बाहर आते ही एक बार दोनों अतिथियों को ध्यानपूर्वक देखा। बालक कमलनयन के रूप में कुछ ऐसा आकर्षण था कि उनकी आँखें बरबस उन्हीं की ओर खिंच गईं। वे अब तक बालक कमलनयन की भोली मुख-कान्ति की ओर निहार रहे थे। रानी का आदेश पाते ही उन्होंने सहसा चौंक कर कहा—"जो आज्ञा" ताड़कादेवी अपनी धुन में कहने लगीं— "आप महारानी साहबा से कहिएगा कि दोनों एक दम सुरक्षित हैं। अगाध कूप के पितर और पाताल तहखाने के सुवर्ण देव— सब आनन्द पूर्वक हैं। आज तक किसी ने उनकी शान्ति भंग करने का साहस नहीं किया। प्रति वर्ष यथा विधि उन्हें पूजा मिलती जाती है।"

राज प्रासाद का प्रधान द्वारपाल अगाध कूप का पथ दिखलाता हुआ पश्चिम की ओर अग्रसर हुआ। ऐयार कमलनयन तथा बालक को पीछे पीछे आने का संकेत कर दीवान दिग्गजदलन-सिंह जी ने गम्भीर मुद्रा धारण किए हुए उसका अनुसरण किया। लगभग एक फर्लाङ्ग चल कर वे लोग एक अद्भुत मन्दिर के द्वार पर आ पहुँचे। द्वारपाल के पीछे पीछे तीनों ने मन्दिर के भीतर प्रवेश किया। द्वारपाल एक सँकरी सी सुरंग के मुहाने पर

आकर ठहर गया। इससे आगे उसकी पहुँच न थी। उसने ऐयार कमलनयन की ओर देखते हुए हाथ जोड़ कर निवेदन किया—"आप भीतर जाकर दर्शन कर सकते हैं। देवस्थान में मुझे जाना मना है। अतएव मुझे आज्ञा दें।" कमलनयन ने सिर हिला दिया। द्वारपाल अपनी राह लौट गया। अवसर देख कर दीवान दिग्गजदलनसिंह ने भी ऐयार कमलनयन को सम्बोधन करते हुए कहा—"यह तो आप जानते ही हैं कि देवस्थान में एक साथ दो व्यक्ति नहीं जा सकते! अतएव आपके इन बालक मित्र के साथ मैं यहीं ठहरता हूँ। पहले आप हो आइए पीछे यदि आपके मित्र चाहेंगे तो ये भी जा सकते हैं।"

ऐयार कमलनयन ने देखा यहाँ अनभिज्ञता प्रकट करने में कल्याण नहीं है, वे चुपचाप सुरंग के भीतर जाकर अदृश्य हो गये।

बालक कमलनयन व्यग्रता पूर्वक उनकी प्रतीक्षा करने लगे। सहसा दिग्गजदलन ने उनके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा—"यहाँ कहाँ! सरोजिनी! यह कैसा स्वांग रचा जा रहा है! तुम्हारे साथ यह कौन है?"

सरोजिनी चौंक पड़ी। नवलसिंह की आवाज़ पहिचानने में उससे भूल न हो सकती थी। उसके आश्चर्य की सीमा न रही। विस्मय-विस्फारित नेत्रों से दीवान दिग्गजदलन की ओर देखते हुए उसने कहा—"आप? इस रूप में?" आपको ही खोजती

हुई मैं काननपुर तक आ पहुँची। पर आपको इस वेष में पाने की तो मैंने स्वप्न में भी कल्पना न की थी। मेरे साथ अजयगढ़ के ऐयार कमलनयन हैं। रास्ते में इनसे मेरी भेंट हुई पर आप इस रूप में कैसे ?"

दिग्गजदलन-रूपधारी नवलसिंह ने उत्तर दिया—"मुझे बहादुरसिंह के आदेशानुसार मीलूगढ़-नरेश की खोज में यहाँ तक आना पड़ा। आज प्रातःकाल मैं यहाँ पहुँचा। मैंने देखा यहाँ के आदमी निरे भोंदू हैं। बिना किसी कठिनाई के मैंने दीवान दिग्गज-दलन को गिरफ़ार कर लिया। तब से स्वयं उनका रूप धारण किए हुए यहाँ का भेद लेने का प्रयत्न कर रहा हूँ। परन्तु देखता हूँ, महाराज चन्द्रसिंह सम्बन्धी घटना का इन लोगों से कोई सम्बन्ध नहीं। आज ही नवागढ़ जाने का विचार कर रहा था। हाँ, तुम्हें मेरे यहाँ आने का संवाद किसने दिया! मैं तुमसे मिलने के लिए वीरपुर गया था परन्तु ठाकुर साहब से मालूम हुआ कि तुम धुर्रापुर चली गयी हो!" एक साँस में नवलसिंह सारी बातें कह गये। सरोजिनी ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"मुझे बहादुरसिंह जी से ही मालूम हुआ था कि आप काननपुर जायँगे।" संक्षेप में कर्णसिंह सम्बन्धी सम्पूर्ण घटना तथा विक्रमसिंह और बहादुरसिंह के मुँह से सुनी हुई सारी बातें सुनाते हुए उसने कहा—"सरदार से विदा लेकर मैंने वीरपुर लौट जाना चाहा परन्तु एक बार आपसे मिलने के लिए मेरा चित्त व्याकुल

हो उठा। इसीलिए वन बन भटकती हुई यहाँ तक..." सरोजिनी ने लज्जा से सिर झुका लिया।

नवलसिंह ने कौतूहल-पूर्ण स्वर में कहा—"अद्भुत घटनाचक्र है। जिस समय बीरपुर के समीप वाले वनप्रान्त से तुमने कर्मागढ़-नरेश को उठाया था उस समय मैं उसी वन में मौजूद था और..."

सहसा ऐयार कमलनयन की पद-ध्वनि सुनाई दी। नवलसिंह चुप हो रहे। दिग्गजदलन-रूपधारी नवलसिंह ने मुस्कुराते हुए पूछा—"कहिए, आप सब देख आए कमलनयन जी?" दीवान के मुँह से अपना नाम सुन कर वे चौंक पड़े और चकित हो कर उनकी ओर ताकने लगे। सरोजिनी खिलखिला कर हँस पड़ी। दिग्गजदलन ने उनके कान के पास मुँह ले जाकर कहा—"आप घबराइए नहीं, मैं वास्तव में दीयागढ़ का ऐयार नवलसिंह हूँ। इस समय चुप रहिए। नगर के बाहर चल कर आपको सब हाल मालूम हो जायगा।" तीनों गम्भीर मुद्रा धारण किए हुए मन्दिर के बाहर निकल आए। सरोजिनी ने मन्दिर के द्वार पर बँधे हुए अपने घोड़े की लगाम सँभाली। नवलसिंह राजप्रासाद की ओर चले गए और क्षण भर बाद अपना घोड़ा लिए हुए लौट आए। अधिक विलंब करना उचित न समझ कर तीनों ने बिना कुछ कहे सुने चुपचाप काननपुर से बाहर आकर दम लिया। नवलसिंह ने ऐयार कमलनयन को अपने घोड़े पर बिठा लिया

और सरोजिनी उछल कर अपने घोड़े की पीठ पर जा बैठी। काननपुर से लगभग आठ दस मील दूर निकल कर उन लोगों ने घोड़ों की गति मन्द की। एक उपयुक्त स्थान पर ठहर कर तीनों बड़ी देर तक बात-चीत करते रहे। अजयगढ़ के ऐयार कमलनयन तथा नवलसिंह ने एक दूसरे को आप बीती कह सुनाई। सहसा बालक कमलनयन अपनी स्वाभाविक चपलता के साथ पूछ बैठे—"आपने अगाध कूप और पाताल तहखाने का हाल तो बताया ही नहीं! आप ने वहाँ क्या देखा?"

ऐयार कमलनयन ने उत्तर दिया—"सुरंग के भीतर मुझे लगभग एक फर्लाङ्ग तक चलना पड़ा। इसके अनन्तर कुछ खुली हुई जगह मिली। सामने का मार्ग बन्द था दाहिने और बाएँ दो लौह-द्वार लगे हुए थे। एक पर लिखा था 'अगाध-कूप' और दूसरे पर 'पाताल तहखाना'। दोनों पर सेंदुर प्रचुर मात्रा में पुता हुआ था। पाताल तहखाने वाले द्वार पर कोई अस्पष्ट लेख था। इस लेख को मैं बिलकुल नहीं पढ़ सका। इस लेख के केन्द्र भाग में 'अलका' शब्द स्पष्ट दिखाई देता था। मैंने बहुत प्रयत्न किया परन्तु मैं इन देवस्थानों का रहस्य ठीक-ठीक न समझ सका।"

एक लम्बी साँस लेकर नवलसिंह ने सरोजिनी को सम्बोधन करते हुए कहा—"इस समय आप वीरपुर लौट जाइए! बहादुर-सिंह ने आपसे ठीक ही कहा था। जब तक महाराज चन्द्रसिंह सम्बंधी घटना का कोई सूत्र हम लोगों के हाथ न लगे तब

तक हम लोगों का कार्य-क्षेत्र स्थिर नहीं रह सकता। मुझे उनके आदेशानुसार अभी नवागढ़ जाना है। देखें अभी कब तक..." कहते कहते उन्होंने लज्जा से सिर झुका लिया। सरोजिनी भी अपने मनोभावों को छिपाती हुई शून्य दृष्टि से आकाश की ओर देखने लगी।

नवलसिंह ने बातों का क्रम बदलने के लिए अजयगढ़ वाले कमलनयन की ओर देखते हुए कहा—"आप तो इस समय सीधा अजयगढ़ जायँगे। चलिये नवागढ़ तक साथ होगा।" कुछ ठहर कर फिर सरोजिनी को सम्बोधन करते हुए उन्होंने कहा—"अब आज्ञा दीजिए कमलनयन जी, आपके पिता जी भी चिन्तित हो रहे होंगे।"

सरोजिनी फुर्ती के साथ घोड़े की पीठ पर जा बैठी। एक हलकी सी एड़ लगाते ही घोड़ा हवा से बातें करने लगा।

ऐयार कमलनयन ने विस्मय के साथ पूछा—"कौन हैं ये?"

नवलसिंह ने उपेक्षा पूर्वक उत्तर दिया—"बीरपुर के जमींदार साहब के पुत्र!" ऐयार कमलनयन को घोड़े पर बिठा कर नवलसिंह ने नवागढ़ की राह ली।

नवागढ़ यद्यपि बहुत दूर न था तो भी दुर्गम गिरिमालाओं के अवरोध के कारण नवलसिंह तथा ऐयार कमलनयन को सघन वन-प्रान्त में ही रात हो गई। वे रास्ता भूल कर बड़ी देर तक नवागढ़ के पश्चिम ओर वाली पहाड़ी पर भटकते रहे। नवागढ़

इस स्थान से लगभग मील भर रह गया था परन्तु दोनों में से किसी को राह मालूम न थी। सहसा वृक्षों की झुरमुट में बनी हुई एक छोटी सी कुटी उन्हें दिखाई दी। दोनों का हृदय आशा से भर गया। परन्तु कुटी के समीप जाकर उन्होंने देखा द्वार पर ताला पड़ा था। हताश होकर दोनों ने रात भर वहीं ठहरना निश्चित किया। कुटी से कुछ ही दूर एक उपयुक्त स्थान पर दोनों यात्रियों ने डेरा डाला। दोनों दिन भर के थके थे। लेटते ही गहरी नींद में सो गये।

दिन चढ़ आया, परन्तु इन लोगों की नींद न टूटी। सहसा किसी ने पुकारा—"कमलनयन ! नवलसिंह ! क्या सोते ही रहोगे ?" दोनों चौंक कर आँखें मलते हुए उठ बैठे। सामने अजयगढ़ के प्रधान ऐयार अरुणसिंह खड़े थे। दोनों के मुँह से विस्मय-पूर्ण स्वर में एक साथ निकल पड़ा—

"अरुणसिंह जी आप ?"

अरुणसिंह ने कमलनयन से पूछा—"तुम क्या काननपुर से आज लौट रहे हो ?"

"जी हाँ !" कमलनयन ने उत्तर दिया,—"तीन चार दिन लग गये।"

नवलसिंह ने जिज्ञासा की—"और आप इस समय कहाँ से आ रहे हैं अरुणसिंह जी !"

"दीयागढ़ से" अरुणसिंह ने उत्तर दिया—"आपको शायद

मालूम होगा मैं कुमारी इन्दुमती को पहुँचाने के लिए गया था !" उन्होंने संक्षेप में दीयागढ़ का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। अन्त में वे कहने लगे—"सम्पूर्ण घटना क्रम को एक साथ मिलाकर देखते हुए हम लोग इसी सिद्धान्त पर पहुँचे कि राजकुमारी चन्द्रावती तथा महाराज चन्द्रसिंह सम्बन्धी घटनाओं में नवागढ़ की रानी मेनकादेवी का हाथ अवश्य है। महाराज वीरसिंह के आदेशानुसार मुझे महाराज कर्णसिंह को सकुशल कर्मागढ़ पहुँचाने के लिए दीयागढ़ में ही ठहर जाना पड़ा और मेघसिंह इसी ओर भेज दिये गये। मेघसिंह की बातों से ही हम लोगों को यह भी मालूम हुआ कि सरदार बहादुरसिंह एक बार अजयगढ़ अवश्य जायँगे। अतएव यह निश्चित हुआ कि मेघसिंह यथा सम्भव अजयगढ़ होते हुए नवागढ़ आएँगे। अस्तु—

इधर दीयागढ़ में एक और अद्भुत घटना हो गयी। महाराज वीरसिंह ने अतिथिरूप में कर्मागढ़-नरेश को दो एक दिन के लिए दीयागढ़ में ठहर जाने का आग्रह किया, कर्मागढ़-नरेश उनके आग्रह को टाल न सके। महाराज वीरसिंह ने उन्हें सम्मान पूर्वक रक्खा। परन्तु कल ही रात एक रहस्यपूर्ण ढङ्ग से वे सहसा दीयागढ़ के अतिथि-भवन से अन्तर्द्धान हो गये। दीयागढ़-नरेश द्वारा क्षमादान दिये जाने का संवाद उसी रात एक तीव्रगामी अश्वारोही के हाथ कर्मागढ़ भेजा जा चुका था। शायद उसी के फलस्वरूप, अथवा अन्य किसी कारण से कर्मा-

गढ़ के प्रधान ऐयार चतुरसिंह ने परसों सन्ध्या समय आकर महाराज कर्णसिंह से मिलना चाहा..."

"चतुरसिंह ?" कौतूहल के साथ नवलसिंह ने उन्हें बीच में टोंकते हुए पूछा।

"हाँ चतुरसिंह" वे कहते गए "उनके साथ एक व्यक्ति और भी था। हम लोगों की ओर से किसी प्रकार की आपत्ति न की गयी। रात में लगभग घंटा भर तक तीनों व्यक्ति साधारण बातचीत करते रहने के अनन्तर सो गये। प्रातःकाल अतिथि-भवन खाली मिला। द्वार रक्षक भी देर तक सोते मिले। जागने पर भी वे लोग कुछ न बता सके। उन लोगों को यह भी ज्ञान न था कि नींद ने किस प्रकार उन्हें धर दबाया! कर्णसिंह और चतुरसिंह में परस्पर क्या बात-चीत होती रही यह भी वे लोग कुछ न समझ सके थे। हाँ, एक भीतर वाले सिपाही ने कई बार कर्णसिंह और चतुरसिंह को बीच बीच में ठठा कर हँसते जरूर सुना था। पाचक से हम लोगों को यह भी मालूम हुआ कि जिस समय वह उन लोगों के लिए भोजन लेकर भीतर गया उस समय वे तीनों मौन थे। इसके अतिरिक्त हम को कुछ न मालूम हो सका। इसी विचित्र घटना का संवाद बहादुरसिंह को सुनाने के उद्देश्य से मैं इस सीधे रास्ते से होकर अजयगढ़ जा रहा था। तब तक तुम लोगों को इस प्रकार रास्ते में सोता देख कर यहीं ठिठक गया।"

मालूम होगा मैं कुमारी इन्दुमती को पहुँचाने के लिए गया था!" उन्होंने संक्षेप में दीयागढ़ का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। अन्त में वे कहने लगे—"सम्पूर्ण घटना क्रम को एक साथ मिलाकर देखते हुए हम लोग इसी सिद्धान्त पर पहुँचे कि राजकुमारी चन्द्रावती तथा महाराज चन्द्रसिंह सम्बन्धी घटनाओं में नवागढ़ की रानी मेनकादेवी का हाथ अवश्य है। महाराज वीरसिंह के आदेशानुसार मुझे महाराज कर्णसिंह को सकुशल कर्मागढ़ पहुँचाने के लिए दीयागढ़ में ही ठहर जाना पड़ा और मेघसिंह इसी ओर भेज दिये गये। मेघसिंह की बातों से ही हम लोगों को यह भी मालूम हुआ कि सरदार बहादुरसिंह एक बार अजयगढ़ अवश्य जायँगे। अतएव यह निश्चित हुआ कि मेघसिंह यथा सम्भव अजयगढ़ होते हुए नवागढ़ आएँगे। अस्तु—

इधर दीयागढ़ में एक और अद्भुत घटना हो गयी। महाराज वीरसिंह ने अतिथिरूप में कर्मागढ़-नरेश को दो एक दिन के लिए दीयागढ़ में ठहर जाने का आग्रह किया, कर्मागढ़-नरेश उनके आग्रह को टाल न सके। महाराज वीरसिंह ने उन्हें सम्मान पूर्वक रक्खा। परन्तु कल ही रात एक रहस्यपूर्ण ढङ्ग से वे सहसा दीयागढ़ के अतिथि-भवन से अन्तर्द्धान हो गये। दीयागढ़-नरेश द्वारा क्षमादान दिये जाने का संवाद उसी रात एक तीव्रगामी अश्वारोही के हाथ कर्मागढ़ भेजा जा चुका था। शायद उसी के फलस्वरूप, अथवा अन्य किसी कारण से कर्मा-

गढ़ के प्रधान ऐयार चतुरसिंह ने परसों सन्ध्या समय आकर महाराज कर्णसिंह से मिलना चाहा...”

“चतुरसिंह ?” कौतूहल के साथ नवलसिंह ने उन्हें बीच में टोंकते हुए पूछा।

“हाँ चतुरसिंह” वे कहते गए “उनके साथ एक व्यक्ति और भी था। हम लोगों की ओर से किसी प्रकार की आपत्ति न की गयी। रात में लगभग घंटा भर तक तीनों व्यक्ति साधारण बातचीत करते रहने के अनन्तर सो गये। प्रातःकाल अतिथि-भवन खाली मिला। द्वार रक्षक भी देर तक सोते मिले। जागने पर भी वे लोग कुछ न बता सके। उन लोगों को यह भी ज्ञान न था कि नींद ने किस प्रकार उन्हें धर दबाया! कर्णसिंह और चतुरसिंह में परस्पर क्या बात-चीत होती रही यह भी वे लोग कुछ न समझ सके थे। हाँ, एक भीतर वाले सिपाही ने कई बार कर्णसिंह और चतुरसिंह को बीच बीच में ठठा कर हँसते ज़रूर सुना था। पाचक से हम लोगों को यह भी मालूम हुआ कि जिस समय वह उन लोगों के लिए भोजन लेकर भीतर गया उस समय वे तीनों मौन थे। इसके अतिरिक्त हम को कुछ न मालूम हो सका। इसी विचित्र घटना का संवाद बहादुरसिंह को सुनाने के उद्देश्य से मैं इस सीधे रास्ते से होकर अजयगढ़ जा रहा था। तब तक तुम लोगों को इस प्रकार रास्ते में सोता देख कर यहीं ठिठक गया।”

ऐयार कमलनयन ने विस्मयपूर्वक कहा—"आश्चर्य यह है कि जब महाराज कर्णसिंह को क्षमा-दान कर दिया गया था तब चतुरसिंह को इस प्रकार छल करने की आवश्यकता क्या थी?"

नवलसिंह कुछ गम्भीर होकर कहने लगे—"परन्तु मुझे तो उस ऐयार के चतुरसिंह होने में ही सन्देह है!"

"कैसे?" अरुणसिंह ने आश्चर्य के साथ पूछा।

नवल सिंह ने अभी कुछ ही देर पहले सरोजिनी के मुँह से सुनी हुई घटना तथा वीरपुर के समीप वाली उस कुटी में अपने कानों सुनी हुई नीले और काले नक़ावपोशों की बात-चीत आदि का हाल संक्षेप में सुनाते हुए कहा—"इस प्रकार जब मैं ऐयार चतुरसिंह को महाराज कर्णसिंह के इस अज्ञात शत्रु के अधिकार में अपनी आखों देख चुका हूँ तब कैसे विश्वास करूँ कि........."

अरुणसिंह बोल उठे—"तब कहना चाहिए महाराज कर्ण-सिंह सम्बन्धी घटना का सूत्रधार भी उनका वही अज्ञात शत्रु है!"

"निसन्देह!" नवलसिंह ने निश्चयात्मक स्वर में कहा।

अभी अरुणसिंह ने कुछ कहने के लिए मुँह खोला ही था कि सहसा पीछे से किसी के छींकने का शब्द सुनाई दिया। तीनों का ध्यान उसी ओर आकर्षित हो गया। उन्होंने देखा पीठ पर एक बड़ी सी गठरी लादे एक व्यक्ति दौड़ता हुआ पास वाली

कुटी के द्वार पर जा पहुँचा और पलक मारते ताला खोलकर भीतर घुस गया। कुटी का द्वार बन्द हो गया। कौतूहल से भरे हुए तीनों कुटी के पास जा पहुँचे। परन्तु शिकार हाथ से निकल चुका था। कुछ देर तक वे लोग कुटी के आस-पास टहलते रहे। परन्तु कोई परिणाम न निकला। हताश होकर तीनों आवश्यक परामर्श करते हुए पहाड़ी के नीचे उतर गये।

× × ×

लगभग पहर भर रात बीते बालक कमलनयन-नाम-धारिणी सरोजिनी भानुपुर के समीप आ पहुँची। पहले उसने सोचा कि रात भानुपुर में ही बिता दूँ परन्तु फिर न जाने क्या विचार कर उसने सीधा वीरपुर चले जाना ही निश्चित किया। एक कुएँ की जगत पर क्षण भर विश्राम करने के अनन्तर वह भानुपुर को दाहिने हाथ छोड़ती हुई वीरपुर की ओर अग्रसर हुई। अभी वह भानुपुर से लगभग दो फ़र्लाङ्ग आगे गयी होगी कि सहसा चन्द्रमा के क्षीण प्रकाश में उसे सामने कुछ ही दूर पर एक ढेर सा पड़ा हुआ दिखाई दिया। घोड़े से उतर कर कौतूहल से भरी हुई वह ढेर के पास तक चली गयी। उसने देखा एक वृद्धा अचेत पड़ी थी। वृद्धा के वस्त्र जगह जगह पर जले हुए थे। सरोजिनी को वृद्धा पर दया आ गयी। वह अपने घोड़े पर सवार होकर एक निकटवर्ती तालाब के पानी से अपने साफ़े का एक कोना भिगा लाई और वृद्धा के मुँह

में जल निचोड़ने लगी। वृद्धा का कण्ठ सूख रहा था। गले के नीचे पानी उतरते ही उसने आँखें खोल दीं। सन्दिग्ध दृष्टि से बालक कमलनयन की ओर देखते हुए उसने पूछा—"तुम कौन हो बेटा ?" फिर कुछ हिचकिचाती हुई बोली—"कहीं दीनदयाल के ही अनुचर तो नहीं हो ?"

सरोजिनी ने भानुपुर के प्रसिद्ध सेठ दीनदयाल का नाम सुना था। बुढ़िया का प्रश्न सुन कर वह विस्मित हो उठी। सेठ दीनदयाल से इस बुढ़िया का क्या सम्बन्ध ? उनके नाम से वह इस प्रकार क्यों सशंकित हो रही है ? इत्यादि प्रश्न उठने लगे। वृद्धा को आश्वासन देती हुई वह कहने लगी,—"नहीं माँ ! आप किसी प्रकार की शंका न करें। मैं एक साधारण पथिक हूँ। आपको इस असहाय अवस्था में पड़ा देख कर यहाँ ठहर गया। आप निःसंकोच अपनी विपत्ति का हाल मुझे बताइए।"

बालक कमलनयन के भोलेपन ने वृद्धा को मोहित कर लिया। न जाने कितने दिनों से उसे ऐसा मधुर स्वर सुनने को न मिला था। एक अबोध बालक के मुँह से 'माँ' शब्द सुन कर उसका हृदय भर आया। उसका कण्ठ गद्‌गद्‌ हो उठा। उसे मानों अनुभव होने लगा कि दया, सहानुभूति, तथा सहृदयता आदि मानव-हृदय की कोमल और पवित्र भावनाओं का संसार में अभी अन्त नहीं हुआ। न जाने कब का दबा हुआ स्रोत फूट कर उसकी आँखों की राह बह निकला। भावावेश के कारण वह

सिसक-सिसक कर रोने लगी। कई क्षणों के अनन्तर उसने अपने आपको सँभाला। एक ठंडी साँस लेकर वह कहने लगी—"मेरी विपत्ति की कहानी सुन कर क्या करोगे बेटा? इतना ही समझ लो कि मैंने भी जीवन के सुनहले दिन देखे हैं। मेरा इतिहास सुन कर तुम्हारा हृदय पिघल उठेगा बेटा! इस सेठ दीनदयाल ने ही धन के लोभ में मेरी यह अवस्था की है! न जाने कितने वर्षों से मैं उसकी हवेली के एक भीतरी तहखाने में क़ैद थी। कल सन्ध्या समय किसी प्रकार उसके मकान में आग लग गयी। सारा मकान जल कर स्वाहा हो गया। किसी ने मेरी सुध न ली। परन्तु आग तहख़ाने तक नहीं पहुँच सकी। हाँ, तहख़ाने का द्वार ज़रूर जल कर भस्म हो गया। भीतर धुएँ के मारे मेरे प्राण छटपटाने लगे। आग की ज्वाला शान्त होने पर मैं बाहर निकली। मैंने देखा चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। अंगारों के ढेर में किसी प्रकार गिरती-पड़ती मैं यहाँ तक निकल आई। परन्तु अब नहीं जानती कहाँ जाऊँ। मेरे एक बेटी थी। उसका नाम था प्रभा, वह कर्मागढ़ में ब्याही थी। ब्याह के दो ही चार वर्ष बाद वह विधवा हो गयी थी। उसके एक बेटा था। उस समय वह बिलकुल छोटा था। ईश्वर ने उसे रक्खा होगा तो वह अब जवान हुआ होगा। बस मेरी उस बेटी के अतिरिक्त मेरा और कोई नहीं है। प्रभा के पिता भानुपुर के ज़मीन्दार थे। और यही सेठ दीनदयाल उनका मुख्तार था। प्रभा के पिता की

मृत्यु के साथ ही साथ मेरा भाग्य फूट गया। उन्होंने सारी सम्पत्ति नाती के नाम लिख दी। देखो, भला उसका नाम था... बरसों बीत गए बेटा! मेरी स्मरण शक्ति क्षीण हो गयी है। मैं अपने उस नाती को 'नीलू' कह कर पुकारा करती थी। आह! मेरा भोला बच्चा! न जाने कहाँ हो! अन्तिम समय में प्रभा के पिता को दीनदयाल की नीयत का हाल मालूम हो गया था। इसीलिए उन्होंने दान-पत्र बिलकुल गुप्त रक्खा था। उसका भेद मेरे अतिरिक्त और कोई न जानता था। मेरी बेटी उस समय कर्मागढ़ में ही थी। प्रभा के पिता ने एक चतुर कारीगर से सोने का एक छोटा सा परन्तु बहुमूल्य जड़ाऊ सन्दूक़ बनवाया था। मृत्यु के समय उन्होंने दान-पत्र लिख कर उसी सन्दूक़ के मोटे पेंदे के भीतर इस प्रकार भरवा दिया था कि सन्दूक़ खोल कर देखने वाले को भी किसी प्रकार का संदेह न हो सकता था। सन्दूक़ की चाभी उन्होंने मेरे हवाले कर दी थी। चाभी आज तक मेरे पास है। परन्तु सन्दूक़ को उस लोभी दीनदयाल ने अन्य बहुमूल्य रत्नाभूषणों के साथ मुझसे छीन लिया। मैं जानती हूँ कि उस सन्दूक़ को खोलना असम्भव है! वास्तव में सोने की चादर के नीचे कोई ऐसी मजबूत धातु भरी हुई है कि लाख प्रयत्न करने पर भी कोई उसे तोड़ नहीं सकता। उस दुष्ट को किसी प्रकार दान-पत्र लिखे जाने का रहस्य मालूम हो गया। उसने मुझे अनेक प्रकार की यातनाएँ देकर उसका भेद पूछना चाहा।

परन्तु मैंने न बताया। तब से आज तक मैंने जो कष्ट उठाए हैं उन्हें मैं ही जानती हूँ। एक युग बीत गया बेटा! देखती हूँ तब से संसार ही बदल चुका है।"

वृद्धा के दुःख-पूर्ण जीवन की करुण स्मृतियों ने जागरित होकर उसके चित्त को उद्विग्न कर दिया। वह इस आवेश को अधिक देर तक न सँभाल सकी। एक बार फिर अचेत होकर वह बालक कमलनयन की गोद में गिर पड़ी। घोड़े पर सवार होकर सरोजिनी पानी के लिए तालाब की ओर दौड़ी। पाव घंटे के बाद वह अपने साफ़े का एक कोना पानी से भिगा कर लौट पड़ी। परन्तु लगभग सौ गज़ के अंतर से उसने देखा, तीन चार व्यक्ति हाथों में मशालें लिए हुए बेसुध वृद्धा को घेरे हुए खड़े हैं। सरोजिनी स्तंभित रह गयी। कुछ ही क्षणों के अनन्तर उसने देखा वे लोग वृद्धा को उठा कर भानुपुर की ओर चलते बने। सरोजिनी बेबस खड़ी देखती रह गई। उसने समझ लिया ये लोग सेठ दीनदयाल के अनुचर हैं। वृद्धा की असहाय अवस्था पर उसे दया आ रही थी।

परन्तु इतने आदमियों के चंगुल से उसे निकाल लेना उसकी शक्ति के बाहर था। उसका हृदय ग्लानि से भर गया। उन लोगों के दूर चले जाने पर वह हत बुद्धि सी होकर भानुपुर की ओर देखती हुई उसी स्थान की ओर अग्रसर हुई। वृद्धा का कहीं पता तक न था। हताश होकर वह बीरपुर जाने के लिये उद्यत हुई। सहसा

उसकी दृष्टि भूमि पर पड़े हुए कागज़ के एक नन्हें के चौकोर टुकड़े पर पड़ी। सरोजिनी ने कौतूहल के साथ उसे उठा लिया। चन्द्रमा के क्षीण प्रकाश में उसने देखा—एक चित्र था। एक प्रौढ़ पुरुष एक छोटे से बालक को गोद में लिए खड़ा था। सरोजिनी बड़ी देर तक उस चित्र की ओर ध्यानपूर्वक देखती रही। उसने विचार किया—"कहीं यह चित्र वृद्धा के पास से ही तो नहीं गिरा? सम्भव है! परन्तु यह चित्र है किसका? शायद प्रभा के पिता का हो।" सरोजिनी ने कल्पना की—"और यह बालक? शायद उनकी सम्पत्ति का अज्ञात उत्तराधिकारी उनका वही अभागा नाती हो!"

सरोजिनी ने घोड़े को बीरपुर की राह दिखा कर एक हलकी सी एड़ लगा दी।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

उग्रनाथ की ही भाँति हमारे पाठक भी सघन-लता-जालों से मुँदे हुए उस स्तूप का रहस्य जानने के लिए उत्सुक होंगे जिसे वे पिछले किसी परिच्छेद में उनके साथ जाकर देख चुके हैं। उन्हें यह जान कर और भी आश्चर्य होगा कि नवागढ़ के उत्तर ओर वाला यह दुर्भेद्य वनप्रदेश वास्तव में ऐसे अनेक अद्भुत रहस्यों को अपने गर्भ में छिपाए हुए है।

हमारे चतुर ऐयारों के साथ घूम-घूम कर उन्हें समय-समय पर इस रहस्यपूर्ण प्रान्त की सैर करने का अवसर मिलेगा। यहाँ हम उनकी सुविधा के लिए इस वन-खंड का साधारण वाह्य विवरण देकर इस अद्भुत प्रदेश का हलका सा मानचित्र उन्हें हृदयंगम करा देना आवश्यक समझते हैं।

नवागढ़ के उत्तर तथा पश्चिम में राज्य का विस्तार अधिक न

था। बस्ती से लगभग दो मील उत्तर से ही प्रशस्त वन-प्रान्त आरम्भ हो गया था। यह वन पश्चिमोत्तर दिशा की ओर दूर-दूर तक फैला हुआ था।

नवागढ़ राजप्रासाद से कुछ ही अन्तर पर पश्चिम में वह छोटी सी टेकड़ी थी जहाँ पाठक उस रहस्यपूर्ण साधू को अन्तर्द्धान होते देख चुके हैं। इस टेकड़ी के भी लगभग आधा मील पश्चिम से एक पर्वत-शृंखला आरम्भ होती थी। यह पर्वत-शृंखला कुछ दूर और पश्चिम की ओर बढ़ने के बाद पश्चिमोत्तर दिशा से घूमती हुई उत्तरी सीमा वाले उस वन-प्रदेश की ओर झुक कर समाप्त हो गयी थी। इस प्रकार अर्द्ध चन्द्राकार होकर वह लगभग आठ-दस मील का घेरा बना रही थी। इस पर्वत-शृंखला के पश्चिमोत्तर वाले कोने से फूट कर एक और पर्वत-माला पश्चिमोत्तर की ही ओर दूर-दूर तक फैलती चली गयी थी। इसी दूसरी पर्वतमाला तथा सघन वनों से घिरा हुआ काननपुर राज्य बसा हुआ था। पर्वतमालायें आदि से अन्त तक दुर्भेद्य वनों से लदी हुई थीं। अर्द्ध-चन्द्राकार पर्वत-शृंखला के उस पार पश्चिम ओर वाले मोड़ के समीप ही सघन वन-प्रान्त के बीच हमारा चिर-परिचित श्वेत-भवन बना हुआ था। दुर्लङ्घ्य पर्वत-माला तथा दुर्भेद्य वन-प्रदेश ने यद्यपि श्वेत-भवन को नवागढ़ नगर से बहुत दूर कर दिया था परन्तु विहंग-पथ से वास्तव में वह मील भर भी न था। और वह स्तूप

पर्वत-शृंखला के इसी ओर नवागढ़ से लगभग तीन मील के अन्तर पर था।

नवागढ़ में इस निर्जन वन-खंड के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की किम्वदन्तियाँ प्रचलित थीं।

पुराने लोगों का कहना था कि यह वन-खण्ड वास्तव में देवताओं का क्रीड़ास्थल था जहाँ वे स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण किया करते थे। जो मनुष्य उस वन में प्रवेश कर उनकी स्वच्छन्दता में बाधा डालने का साहस करते थे वे उनकी अप्रसन्नता के पात्र वन कर उचित दण्ड पाये विना न रहते थे। कुछ लोग आँखों देखी प्रेत-लीलाओं की कथाएँ सुनाया करते थे। कुछ लोगों का यह भी विश्वास था कि वहाँ के वृक्षों में मनुष्यों को निगल जाने तक की शक्ति थी।

इस प्रकार की किम्वदन्तियों ने उस वन-खण्ड को और भी अधिक दुर्गम वना दिया था। जन साधारण को उस ओर जाने का साहस तक न होता था। यदि विवश होकर कभी कोई जाता भी था तो यह एक न एक अनोखी कथा लेकर ही लौटता था।

इस प्रकार नवागढ़ के पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त का सतर्क प्रहरी—दुस्तर वनों से ढका हुआ वह चन्द्राकार पर्वत—अनेक अद्भुत रहस्यों को अपने हृदय में छिपाये अपनी दुर्जेयता की घोषणा करता हुआ अविचल भाव से खड़ा था। रात्रि की

निस्तब्धता में यह प्रान्त आज और भी अधिक भयावह जान पड़ता था। आकाश से चन्द्रदेव वन-प्रान्त के भीतर झाँकने का विफल प्रयास कर रहे थे। आकार साम्य होने पर भी पर्वत राज को मानों उनका बन्धुत्व स्वीकार न था।

अपना अभिमानपूर्ण मस्तक ऊँचा किये हुए वृत्तों की सौ सौ टहनियाँ एक साथ हिला हिला कर मानों वह उनके स्निग्ध करों को दूर हटाने का प्रयत्न कर रहा था। और इसी व्याज से मानों वह मनुष्यमात्र को ही उस ओर झाँकने का दुःसाहस न करने का आदेश दे रहा था।

परन्तु उसके इस आदेश की ओर ध्यान दिए विना एक पुरुष नवागढ़ के पश्चिमी पर्वत-खंड के समीप सावधानी के साथ टहलता हुआ शायद किसी की प्रतीक्षा कर रहा था। बड़ी व्यग्रता के साथ वह रह-रह कर नवागढ़ की ओर देखने लगता था। सहसा किसी ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा—"कितनी देर से खड़े हो माधव ?"

माधव ने जिसका पूरा नाम वास्तव में मधुसूदन था, चिहुँक कर पीछे की ओर देखा। नवागन्तुक को पहिचानते उसे देर न लगी। उसने मुस्कुराते हुए कहा—"ओह ! आप हैं ? मैं तो डर गया। पर आप इधर से कैसे आ निकले ?"

एक निकटवर्ती शिलाखण्ड पर बैठते हुए मन्मथसिंह ने उत्तर दिया—"उसी गोल घर से आ रहा हूँ !"

"गोल घर से ?" मधुसूदन ने विस्मय के साथ पूछा—"वहाँ इस समय जाने की क्या ज़रूरत आ पड़ी ?"

मन्मथसिंह ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—"उसी दुष्ट संन्यासी का उसकी प्रेयसी डाली के साथ गठबन्धन कराने के लिए गया था !"

"आप तो हँसी कर रहे हैं ?" मधुसूदन ने कौतूहल पूर्वक कहा—"साफ़ साफ़ बताइए तो ! बात क्या है ?"

मन्मथसिंह कहने लगे—"तुम्हें यह जान कर प्रसन्नता होगी कि वह दुष्ट संन्यासी आज अनायास मेरे हाथ लग गया। अभी लगभग घंटा भर हुआ होगा मैं इसी ओर टहलता हुआ आ रहा था कि मैंने उसे सराय के पीछे वाले आम के नीचे बेसुध पड़ा हुआ पाया। उसे उठा कर मैंने डाली के समीप ही उस गोल कमरे में पहुँचा दिया है !"

मधुसूदन ने आनंद और उत्साह भरे स्वर में कहा—"यह तो बहुत ही अच्छा हुआ। नवागढ़ में उसका रहना अच्छा नहीं था। न जाने कैसे यह धूर्त पता लगाता हुआ यहाँ तक आ पहुँचा !"

मन्मथसिंह ने कुछ गम्भीर होकर कहा—"जो हो, उसकी ओर से तो हम लोग एक प्रकार से निश्चिन्त हो गए परन्तु इस समय इससे भी जटिल समस्या मेरे सामने उपस्थित है ! हाँ, तुमने उस अड्डे के सम्बन्ध में मेरे आदेश का पालन किया ?"

मधुसूदन ने सिर हिलाते हुए उत्तर दिया—"जी हाँ, सूखे

कुएँ का द्वार बिलकुल बन्द कर दिया है ! अब वे लोग एक भी बिना आपकी आज्ञा के बाहर न निकल सकेंगे।"

कुछ ठहर कर मधुसूदन ने जिज्ञासा की 'हाँ, अभी आप किस समस्या की बात कर रहे थे !'

मन्मथसिंह ने शून्य दृष्टि से आकाश की ओर ताकते हुए कहा—"आज पहले पहल तुम्हारे सामने इस भेद को प्रकट कर रहा हूँ। जान पड़ता है मुझे शीघ्र ही अपनी जीवन-सरिता को दूसरी ओर बहाना होगा। नवागढ़ में अब अधिक दिन तक शायद न रह सकूँगा। क्योंकि देखता हूँ स्वयं मेनका रानी का व्यवहार आजकल मेरे प्रति कुछ बदला हुआ सा है..." विस्मय भरे स्वर में मधुसूदन बोल उठे—"क्या कहा ? मेनका रानी का व्यवहार ?"

मन्मथसिंह ने कुछ आवेश के साथ कहा--"हाँ, हाँ मैं ठीक कहता हूँ मेरे दोस्त ! तुम जानते हो मुझे तुमसे कोई परदा नहीं। उस दिन अवकाश न मिलने के कारण बहुत सी बातें तुमसे मैं न कह सका था। आज इसी सम्बन्ध में आवश्यक परामर्श करने के लिए मैंने तुम्हें यहाँ बुलाया था। इधर कई दिनों से मैं रंग बदला हुआ देखता हूँ। प्रायः ऐय्यारों के साथ गुप्त मंत्रणाएँ होती रहती हैं। मुझसे कुछ भेद छिपा कर रक्खे जाने लगे हैं। मेनका रानी मेरी दृष्टि बचा कर घंटों, समय असमय, तिलस्मी तहखानों में घूमा करती हैं। यद्यपि तिलस्मी

राहों का भेद वे मुझसे सदा गुप्त ही रखती रही हैं तो भी पहले वे मेरे बिना भीतर पैर भी न रखती थीं और मुझे आशा बनी थी कि किसी न किसी दिन अलकापुरी का रहस्य समझने का अवसर मिलेगा ही। परन्तु देखता हूँ अब मुझे दूर रखने का प्रयत्न किया जाता है, मैंने इस आकस्मिक परिवर्त्तन का मर्म जानने का बहुत कुछ प्रयत्न किया परन्तु आज तक कोई बात समझ नहीं सका। मेनका रानी साधारण स्त्री नहीं है। उसकी उच्छृंखलता से मैं भली भाँति परिचित हूँ। संसार समझता है कि वह मन्मथसिंह की मुट्ठी में है। कितना बड़ा भ्रम है! धधकती हुई आग की लपटों को पकड़ रखना मनुष्य का काम नहीं है। मन्मथसिंह तो विलासिता की उस सजीव पुतली के मनोरंजन की सामग्री भर है!" मधुसूदन ने कुछ गंभीर होकर पूछा, "परंतु आपके प्रति रानी की इस उपेक्षा का रहस्य भला क्या हो सकता है? आपने कुछ अनुमान तो किया ही होगा!"

मन्मथसिंह ने उत्तर दिया,—"मेरी तो बुद्धि ही काम नहीं करती। उस जटिल नारीके मनकी थाह लेना सहज नहीं है मधु!"

"तब कहना चाहिए कि मैंने जो कुछ सुना है वह असम्भव नहीं है।" भेद भरी चितवन से उनकी ओर देखते हुए मधुसूदन ने कहा।

"क्या...क्या सुना है तुमने?" कौतूहल के साथ मन्मथसिंह ने पूछा।

"वही चन्द्रसिंह सम्बन्धी घटना......" मधुसूदन ने उत्तर दिया।

मन्मथसिंह ने विस्मय के साथ पूछा,—"कौन चन्द्रसिंह? मीलूगढ़-नरेश? जिन्होंने अभी कर्मागढ़ पर आक्रमण किया था? कैसी घटना? मैंने तो आज तक इस सम्बन्ध में कुछ नहीं सुना।"

"आश्चर्य है!" मधुसूदन ने कहा, "मैंने तो यहाँ तक सुना है कि महाराज चन्द्रसिंह इस समय मेनका रानी के अधिकार में हैं। मेनका रानी ने उनके पास अनेक बार प्रणय-प्रस्ताव भेजे परन्तु मीलूगढ़-नरेश ने बराबर उनका तिरस्कार किया। मैंने सुना है कि हताश होकर उन्होंने महाराज चन्द्रसिंह को वशीभूत करने का यह नया उपाय रचा है।" मन्मथसिंह ने स्तम्भित होकर कहा,—"क्या आप सच कह रहे हैं?"

"बिलकुल सच!" मधुसूदन ने उत्तर दिया, "आपसे विदा लेकर जब मैं उस दिन डाली को गोल घर में पहुँचाने के लिए जा रहा था उसी समय की बात है, पहाड़ी कुटी से कुछ ही दूर पर एक वृक्ष के नीचे मुझे तीन व्यक्ति बात-चीत करते दिखाई दिए। झाड़ियों की ओट में सावधानी के साथ अपने आप को छिपाता हुआ मैं उन लोगों के समीप तक जा पहुँचा और चुपचाप उनकी बातें सुनने लगा। मैंने उन लोगों को पहले कभी न देखा था। इसलिए मैं उनमें से किसी को भी न पहिचान सका। वे लोग इतने धीरे-धीरे बातें कर रहे थे कि मैं सारी बातें सुन भी न सका तो भी मुझे उनकी बातों से इतना जरूर मालूम

हो गया कि मीलूगढ़-नरेश कर्मागढ़ संग्राम के बाद से ग़ायब हैं और वे लोग पिछली घटनाओं के आधार पर इस संबंध में मेनका रानी पर ही संदेह कर रहे हैं। उनमें से एक ने तो यहाँ तक कहा कि मीलूगढ़-नरेश दीयागढ़ की राजकुमारी चंद्रावती पर आसक्त हैं। मेनकारानी ने अपने मार्ग का यह कण्टक दूर कर देने के लिए कुमारी चंद्रावती को भी दीयागढ़ से उठवा मँगाया है। संभव है मुझे और भी बहुत सी आश्चर्य जनक बातें भी मालूम होतीं परंतु दुर्भाग्यवश मुझे छींक आ गई। वे तीनों सावधान हो गए। मुझे प्राण लेकर भागना पड़ा। उन लोगों ने मेरा पीछा करना चाहा परन्तु मैंने झटपट कुटी के भीतर घुस कर द्वार बंद कर लिया।" मन्मथसिंह ने घबराए हुए स्वर में कहा—"ओह! अब मेनकारानी के बदले हुए रंग ढंग का मर्म कुछ कुछ समझ में आ रहा है। परन्तु......परन्तु न जाने क्यों इस बात पर सहसा विश्वास नहीं जमता।"

"आपके पास अविश्वास करने का कारण ही क्या है?" पीछे से एक आवाज़ आई।

दोनों ने चौंक कर पीछे की ओर देखा।

एक नक़ाब पोश पर्वत से उतरता हुआ उन्हीं की ओर अग्रसर हो रहा था। उसका सारा शरीर काले कपड़े से ढँका हुआ था। दोनों सावधान हो कर उसकी ओर ताकने लगे। नक़ाब पोश निःशंक भाव से सीधा उन लोगों के पास आकर

खड़ा हो गया। मन्मथसिंह को सम्बोधन करते हुए उसने फिर अपना प्रश्न दुहराया।

उसके इस निर्भीकता पूर्ण व्यवहार के कारण दोनों कुछ सहम से गये। तो भी मन्मथसिंह ने साहस कर के पूछा—"पहले यह तो बताइए कि आप कौन हैं? और क्यों इस प्रकार छिप कर हम लोगों की बातें सुन रहे थे?"

नक़ाबपोश ठठा कर हँस पड़ा और लापरवाही के साथ कहने लगा—

"मैं कौन हूँ? यह जान कर आप क्या करेंगे मन्मथसिंह जी? और मुझे ही आप के झगड़ों से क्या मतलब? शायद मेरे इस प्रकार यहाँ आ जाने से आप को कुछ दुःख हुआ है। लीजिए आप को बिना किसी असमंजस में डाले मैं अपनी राह लेता हूँ। भला मुझे किसी की बातें छिप कर सुनने की क्या आवश्यकता! मैंने तो अनायास राह चलते, आपके मित्र की बात सुन कर उसका समर्थन कर दिया। क्योंकि मैं निश्चय पूर्वक जानता हूँ कि महाराज चन्द्रसिंह और राजकुमारी चन्द्रावती दोनों इस समय मेनका रानी के कारागार में हैं और यह भी कह सकता हूँ कि यदि मेनका रानी महाराज चन्द्रसिंह पर अपने मादक रूप का जादू डाल सकीं तो आप की अवधि समाप्ति पर है।"

कहता हुआ नक़ाब पोश मन्द गति से नवागढ़ की ओर

चल पड़ा। उसने सारी बातें कुछ ऐसे ढङ्ग से कहीं कि मन्मथ-सिंह को उस पर विश्वास करने की इच्छा सी होने लगी उन्होंने नक़ाबपोश को टोंक कर पूछा—"क्या आप यह भी जानते हैं कि मेनका रानी ने इन दोनों को कहाँ क़ैद किया है?"

नक़ाबपोश ठहर गया। घूम कर पीछे की ओर देखते हुए उसने उत्तर दिया—

"तिलस्मी कारागार में! शायद आप यह सोच रहे होंगे कि आप उन्हें मेनका रानी के हाथ से निकाल लेंगे। परन्तु स्मरण रखिए वह आप की पहुँच से बाहर हैं। मेनका रानी ऐसी भोली नहीं हैं।"

मन्मथसिंह के हृदय में ईर्षा की अग्नि प्रज्वलित हो रही थी। अपने भावी पतन की आशंका से वे अधीर हो उठे थे। नक़ावपोश मानों उनके मानसिक विचारों को पढ़ता जा रहा था। वे जानते थे कि महाराज चन्द्रसिंह जैसे संयमी पुरुष के व्रत को स्खलित करना सहज नहीं है। तो भी कारागार के कष्टों तथा मेनका की रूप मदिरा के अविराम प्रलोभन के आगे यदि उन्हें एक दिन सिर झुकाना पड़े तो आश्चर्य नहीं। मेनका के मुखमण्डल पर आजकल प्रसन्नता नहीं दिखाई देती। उसकी मदभरी आँखों की गुलाबी के बीच उन्होंने प्रायः तृष्णा की झलक देखी थी। उनमें स्वाभाविक चपलता के बदले एक प्रकार की हैरानी रहने लगी थी। सब बातों का क्रम मिला कर

मन्मथसिंह इतना समझ चुके थे कि मेनका अभी तक चन्द्रसिंह पर विजय नहीं पा सकी है। परन्तु भविष्य की कौन जानता है! वे सोचने लगे यदि किसी प्रकार मीलूगढ़-नरेश को अपने अधिकार में कर सकूँ ?......अथवा यदि उन्हें मेनका के पञ्जे से निकाल कर मुक्त कर दूँ तो ? ठीक है, यही करना होगा। मेनका को चन्द्रसिंह की ओर से सदा के लिए निराश किये बिना उसे फिर से अपनी ओर आकर्षित करना असम्भव है।

नक़ाबपोश की अन्तिम बात सुनकर उनकी आँखों के सामने अन्धकार छा गया। पतन की आशंका से उनका शरीर सिहर उठा। प्रभुत्व का पराभव मृत्यु से भी अधिक भयानक होता है।

क्षण भर स्तम्भित रहने के उपरान्त उन्होंने फिर नक़ाबपोश को पुकार कर पूछा, "परन्तु क्या आप अपनी बातों का कोई प्रमाण दे सकते हैं ?"

"मुझे आपके सामने प्रमाण उपस्थित करने की क्या आवश्यकता है ?" नक़ाबपोश ने हँसकर लापरवाही के साथ उत्तर दिया "और आपको मुझसे इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर पाने का अधिकार ही क्या है ?" कुछ ठहर कर उसने कहा, "हाँ, यदि आप एक काम में मेरी सहायता करने का वचन दें तो मैं भी आपका कौतूहल शान्त करने का प्रयत्न कर सकता हूँ।"

"किस विषय में आप मेरी सहायता चाहते हैं ?" मन्मथसिंह ने उसकी ओर बढ़ कर जिज्ञासा की, "मैं भरसक आपकी सहा-

यता करूँगा यदि आप भी..." नक़ाबपोश ने मानों कुछ प्रसन्न होकर दाहिनी ओर वाली टोकड़ी की ओर संकेत करते हुए पूछा, "आपने क्या कभी उस टेकड़ी पर एक साधू को गुन-गुनाते सुना है !"

"हाँ, हाँ, उस चौड़ी चट्टान पर बूढ़ा मुझे कई बार दिखाई दिया है।" मन्मथसिंह ने कौतूहल के साथ उत्तर दिया।

"मैं उसे अपने अधिकार में करना चाहता हूँ" नक़ाबपोश ने कहा, "क्या आप इसमें मेरी सहायता करने का वचन दे सकते हैं ?"

नक़ाबपोश का प्रश्न सुन कर उनके आश्चर्य की सीमा न रही। जिस साधू के लिए वे स्वयं इतने दिनों से हैरान थे, उसी को यह नक़ाबपोश क्यों अपने अधिकार में करना चाहता है। उनकी समझ में न आता था। अपने मनोभावों को छिपाते हुए उन्होंने उत्तर दिया—"मैं यथा साध्य आप की सहायता करने के लिए तैयार हूँ यदि आप भी मेरी इस प्रस्तुत समस्या को सुलझाने में सहायता करने का वचन दे सकें।"

"सहायता ?" नक़ाबपोश कुछ नैराश्य-पूर्ण स्वर में कहने लगा--"मुझे दुःख है कि मुझमें आपकी सहायता करने की शक्ति नहीं है। मेनका रानी ने महाराज चन्द्रसिंह को 'अलकापुरी' में रखा है। मेनका के अतिरिक्त वहाँ भला किसकी पहुँच हो सकती है। मिथ्या वचन देना मेरी प्रकृति के प्रतिकूल है।" कहता हुआ नक़ाबपोश फिर चलने के लिए उद्यत हुआ। परन्तु

सहसा उसे मानों कुछ स्मरण हो आया। वह ठिठक कर खड़ा हो गया, और बोला—"हाँ, मेनका रानी के अतिरिक्त तिलस्म के उन भागों में जाने की राह यदि कोई जानता है तो वह इन्दु-शेखर नामक एक दुष्ट ऐयार है। परन्तु सुनते हैं वह न जाने कहाँ अन्तर्धान हो गया है। मैंने अपने काम के लिए उसका अनुसन्धान..." मन्मथसिंह की ओर एक रहस्यपूर्ण दृष्टि डालते हुए मधुसूदन ने उत्कण्ठा के साथ नक़ाबपोश से पूछा,—"कौन इन्दुशेखर ? उसे इन तिलस्मी राहों का हाल किसने बताया ?"

नक़ाबपोश ने लापरवाही के साथ उत्तर दिया—"यह भी एक लम्बी कहानी है। इस समय इतना ही कह सकता हूँ कि मैंने उसके पास तिलस्म से सम्बन्ध रखने वाली एक पुस्तक देखी थी। उस पुस्तक का मुख्य अंश एक विचित्र प्रकार की साङ्केतिक लिपि में लिखा हुआ था। उस साङ्केतिक लिपि में ही नवागढ़ के तिलस्म से सम्बन्ध रखनेवाले अनेक गुप्त पथों का रहस्य सुरक्षित है। ओह ! वह लिपि कितनी कठिन थी। उसके कई घण्टों तक समझाने पर कहीं मैं उस लिपि का मर्म समझ सका था। उन दिनों इन्दुशेखर से मेरी घनिष्ठता थी उसकी कुचालों के कारण मुझे उससे अलग होना पड़ा। नहीं तो आज उस दुष्ट साधू को गिरफ़ार करने में वह मेरा सबसे बड़ा सहायक होता। पर जो नहीं है उसकी चर्चा से क्या लाभ ? यदि हो भी तो उस पर फिर से विश्वास करना मेरे लिए कठिन

है। एक ही धूर्त है, मन्मथसिंह जी! सुनता हूँ आज कल संन्यासी बना घूमता है। इसमें भी उसकी कोई न कोई...''

संन्यासी शब्द सुन कर मन्मथसिंह और मधुसूदन चौंक पड़े। उन्हों ने कौतूहल के साथ पूछा—''आप उसी विशाल-काय संन्यासी की चर्चा तो नहीं कर रहे हैं जो प्रायः भानुपुर के आस-पास मँड़राया करता है?''

''सम्भव है।'' नक़ाबपोश ने कुछ विचार-सा करते हुए उत्तर दिया।

''और आप का तात्पर्य उस पुस्तक से तो नहीं है जिसका नाम सुवर्ण-रहस्य है?'' परिवर्द्धित कौतूहल के साथ मन्मथसिंह ने जिज्ञासा की।

''हाँ, हाँ,'' विस्मयसूचक स्वर में नक़ाबपोश बोल उठा—''जान पड़ता है आप भी इस सम्बन्ध में कुछ न कुछ जानते हैं।'' मन्मथसिंह का हृदय आशा से खिल उठा। उन्होंने उत्साह के साथ ताली बजाते हुए उत्तर दिया—''जानता ही नहीं बल्कि इस समय संयोग से वह पुस्तक ही मेरे अधिकार में है।''

''आप के अधिकार में?'' नक़ाबपोश ने मानों विस्मयमिश्रित आनन्द से प्रफुल्लित होकर पूछा—''आप को वह कहाँ मिली?''

''उसी संन्यासी के पास'' मन्मथसिंह ने रहस्य-पूर्ण चितवन से उसकी ओर ताकते हुए उत्तर दिया—''और वह संन्यासी भी इस समय मेरी क़ैद में है। परन्तु...'' कहते कहते उनका चेहरा

कुछ फीका पड़ गया। मानों उन्होंने उस पुस्तक का भेद बता कर कोई भूल की हो।

"परन्तु ?" नक़ाबपोश ने दुहराते हुए कहा—"शायद आप मुझ पर विश्वास करने के लिए तैयार नहीं हैं। आपकी इच्छा— आपकी बातें सुन कर मैंने समझा था कि हमारी सफलता दूर नहीं है। परन्तु अपने स्वार्थ के लिए मैं आप को असमंजस में न डालूँगा। मुझे अपनी शक्ति पर पूर्ण विश्वास है। हाँ, इतना मैं कह सकता हूँ कि मेरी सहायता के विना आप पुस्तक से उचित लाभ न उठा सकेंगे। स्वयं मैं भी उसे भली भाँति समझ सकूँगा या नहीं इसमें सन्देह है। साधू के निकलने का समय आ रहा है एक बार प्रयत्न कर देखता हूँ।" कहता हुआ वह टेकड़ी की ओर अग्रसर हुआ। सारी बातें उसने ऐसे ढङ्ग से कहीं कि मन्मथसिंह प्रभावित हुए बिना न रह सके। उन्हों ने मधुसूदन की ओर देखा। मधुसूदन ने उनका तात्पर्य समझ कर धीरे से कहा—हर्ज क्या है ? हम लोग दो दो हैं। उस पुस्तक को यहीं खड़े-खड़े घड़ी भर देख लेने दिया जाय। शायद मतलब निकल सके। इस समय पुस्तक मेरे पास मौजूद भी है।

मन्मथसिंह ने नक़ाबपोश को पुकार कर कहा—"एक बात सुनते जाइए।"

नक़ाबपोश फिर लौट पड़ा। मन्मथसिंह ने गम्भीर होकर कहा—"साफ़ बात यह है कि यदि आप घड़ी भर यहीं खड़े-खड़े

काम निकाल सकें तो मैं पुस्तक आप को दिखलाने के लिए तैयार हूँ। परन्तु आप को पहले वचन देना होगा कि आप भर-सक मेरी सहायता करेंगे।"

नक़ाबपोश ने हँस कर कहा—"घड़ी भर का समय आवश्य-कता से अधिक है। परन्तु देखता हूँ आपके जीवन पर नवागढ़ राजप्रासाद के विपाक्त वायु-मण्डल का पूरा प्रभाव पड़ चुका है।" मन्मथसिंह का संकेत पा कर मधुसूदन ने बिना कुछ कहे सुने एक छोटी सी पुस्तक नक़ाबपोश की ओर बढ़ा दी। एक अद्भुत वत्ती के प्रकाश में नक़ावपोश कई क्षणों तक उसे उलट-पलट कर देखता रहा। उसने कई पन्ने सरसरी तौर पर पढ़ डाले। सहसा वह प्रसन्नता के मारे उछल पड़ा। और मानों परिस्थिति का ज्ञान भुला कर पागल की भाँति नाचने लगा। उसका वह विचित्र ताण्डव देख कर मन्मथसिंह और मधुसूदन को हँसी आ गयी। उसी भावावेश में नक़ाबपोश ने किताब मन्मथसिंह की ओर बढ़ाते हुए कहा—"आप के नक्षत्र अच्छे हैं मन्मथ-सिंह जी! राह मिल गई। और साधू को भी मेरे चंगुल में आया समझिये। परन्तु आप की सहायता के बिना काम न चलेगा।"

मन्मथसिंह ने उत्साह के साथ उत्तर दिया—"मैं तैयार हूँ, परन्तु पहले आप को अपना वचन पूरा करना पड़ेगा।"

नक़ाबपोश कहने लगा—"तो फिर बिलम्ब करने की आवश्य-

कता नहीं, चलिये पहले इसी काम से छुट्टी पालें परन्तु आप को इतना जनाये देता हूँ कि आप यदि महाराज चन्द्रसिंह से छेड़-छाड़ करने का साहस करेंगे तो लेने के देने पड़ जायँगे। मुझे अपने ढङ्ग पर काम करने दीजिए। आप चुप-चाप देखते रहिये।"

मन्मथसिंह ने सिर हिला कर उसका आदेश स्वीकार किया। नक़ाबपोश दोनों को लिए हुए हीरा बाग़ की ओर अग्रसर हुआ। हीरा बाग़ के पश्चिमी कोने पर एक सुन्दर मीनार बनी हुई थी। इस मीनार में चारों ओर लगभग छः फुट की ऊँचाई पर पक्षियों के बैठने के लिए अनेक छोटे-छोटे आले से बने हुए थे। नक़ाबपोश ने कई बार आलों को इधर से उधर गिनने के उपरान्त एक आले के भीतर हाथ डाल कर कोई यन्त्र घुमा दिया। देखते ही देखते मीनार में एक छोटी सी खिड़की निकल आई। तीनों ने क्रमशः खिड़की के भीतर प्रवेश किया। एक लम्बी सुरङ्ग-सी थी। सुरङ्ग के भीतर अंधकार था। तीनों सुरंगकी दीवार के सहारे लगभग एक फर्लाङ्ग तक बढ़ते चले गये। सुरंग के दूसरे छोर पर पहुँच कर तीनों को ठहर जाना पड़ा। नक़ाबपोश ने अंधकार में ही टटोल-टटोल कर एक छोटा सा हत्था खोज निकाला। एक विशेष ढङ्ग से वह इस हत्थे को कुछ देर तक दाहिने और बाएँ घुमाता रहा। एक हलकी सी आवाज़ के साथ दाहिनी ओर एक बड़ा-सा द्वार निकल आया। वे लोग एक छोटे से चौकोर कमरे में जा पहुँचे।

कमरा किसी खुली हुई जगह में बना हुआ जान पड़ता था। चारों ओर चार दरवाज़े लगे थे। शेष तीनों दरवाज़े अभी तक बन्द थे। उत्तर ओर वाली दीवार में लगभग चार फुट की ऊँचाई पर लकड़ी की एक चौखट जड़ी थी। इस चौखट के बीच धातु के बने कई अक्षर उभरे हुए थे। रोशनदानों की राह से आने वाले क्षीण प्रकाश के सहारे नक़ाबपोश ने उनमें से कुछ अक्षरों को एक विशेष क्रम से दबाना आरम्भ किया। अन्तिम अक्षर के दबते ही चौखट के बीचोंबीच बड़े बड़े सुनहले अक्षरों में 'मेनकारानी' का नाम चमकता हुआ दिखाई देने लगा। नक़ाबपोश ने मध्य-वर्ती 'का' अक्षर को पूरी शक्ति से भीतर की ओर दबाया। एक धीमे शब्द के साथ उत्तरी कोने वाला द्वार खुल गया।

साथ ही चन्द्रमा के मन्द प्रकाश की धारा ने कमरे के भीतर प्रवेश किया। द्वार की राह बाहर निकल कर तीनों एक छोटे से उद्यान में आ पहुँचे। उद्यान के केन्द्र भाग में एक छोटा-सा कमरा बना हुआ था। नक़ाबपोश दोनों को चुपचाप अपने पीछे-पीछे आने का आदेश करने के उपरान्त, इस केन्द्रवर्ती कमरे की ओर अग्रसर हुआ। कमरे का द्वार खुला हुआ था। भीतर एक छोटा-सा दीपक टिमटिमा रहा था। दीपक के क्षीण आलोक में तीनों ने देखा और पहिचाना, महाराज चन्द्रसिंह एक सूखी चटाई पर पड़े सो रहे थे! आगे बढ़ कर नक़ाबपोश ने

उनकी नाक के समीप कोई औषधि रख दी। इस ओर से निश्चिन्त होकर उसने मन्मथसिंह और मधुसूदन को भी भीतर बुला लिया और सन्तोष-सूचक स्वर मे कहने लगा—"लीजिए महाराज चन्द्रसिंह अब आप के बन्दी हैं। परन्तु सावधान! इस नर शार्दूल के साथ खेलवाड़ करने का साहस न कीजिएगा।"

मधुसूदन ने मन्मथसिंह की ओर ताकते हुए कहा—"मैं तो समझता हूँ कि इन्हें बन्दी रूप में अपने पास रख कर मीलूगढ़ से व्यर्थ वैर मोल लेने की अपेक्षा इन्हें यहाँ से हटा कर मुक्त कर देना अधिक अच्छा होगा।"

मन्मथसिंह ने उनका समर्थन करते हुए कहा—"मैं भी यही समझता हूँ। बन्दी रूप में इन्हें रखना विपत्ति से खाली नहीं है। सम्भव है किसी प्रकार मेनकारानी को यह भेद मालूम हो जाय, और मीलूगढ़ के कुशल ऐयार भी चुप न बैठे होंगे।"

मधुसूदन ने मन्मथसिंह के कान के पास मुँह ले जाकर कहा—"सम्भव है सराय वाली घटना में मीलूगढ़ के भी किसी ऐयार का हाथ रहा हो।"

"आश्चर्य नहीं!" मन्मथसिंह ने अस्फुट स्वर में उत्तर दिया।

मन्मथसिंह का प्रस्ताव सुनकर नकाबपोश ने गम्भीरता पूर्वक कहा—"इन बातों का निर्णय बाहर चलकर किया जा सकता है। यहाँ अधिक देर तक ठहरना उचित नहीं।"

मन्मथसिंह का आदेश पा, मधुसूदन ने महाराज चन्द्रसिंह को एक चादर में समेट कर पीठ पर लाद लिया। तीनों उसी सुरंग की राह बाहर निकल आए। नक़ावपोश क्रमशः तीनों द्वार बन्द करता गया। मीनार का द्वार बन्द करने के उपरान्त नक़ाब-पोश ने एक लंबी साँस लेकर मन्मथसिंह की ओर देखते हुए कहना चाहा--"अब आप..."

मन्मथसिंह बोल उठे—"परन्तु आप कहते थे न कि कुमारी चन्द्रावती भी मेनका रानी के अधिकार में है? उन्हें क्या..."

नक़ावपोश ने हिचकते हुए उत्तर दिया--"कुमारी चन्द्रावती को लेकर आप क्या करेंगे? आपकी प्रति-स्पर्द्धा तो महाराज चंद्रसिंह के ही प्रति थी न?"

मन्मथसिंह ने आग्रह पूर्वक कहा—"मैं इस झगड़े का अन्त ही कर देना चाहता हूँ।"

मधुसूदन ने भी उनका अनुमोदन करते हुए कहा—जरूर। और इस प्रकार सहसा अपने दोनों क़ैदियों को अन्तर्द्धान होते देख कर मेनका स्तम्भित हो जायगी। दोनों की इस रहस्य-पूर्ण मुक्ति का संवाद सुन कर उसका हृदय काँप उठेगा। भविष्य में वह सहसा इन लोगों पर हाथ उठाने का साहस न कर सकेगी।

नक़ाबपोश ने विचार करते हुए कहा—"आपका अनुमान ग़लत नहीं है।" कुछ ठहर कर वह कहने लगा—"जहाँ तक मुझे मालूम है मेनकारानी ने उन्हें तिलिस्म के उस भाग में

रक्खा है जो 'पाताल कूप' नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु उसका मार्ग समझने के लिए मुझे एक बार फिर आपकी पुस्तक देखनी पड़ेगी। उस समय जल्दी के कारण मैं इस विषय पर ध्यान न दे सका था।"

"जल्दी क्या, यों कहिये नाचने की धुन में" मधुसूदन ने मुस्कुराते हुए कहा। मन्मथसिंह ने निस्संकोच भाव से पुस्तक नक़ाबपोश की ओर बढ़ा दी। नक़ाबपोश पन्ने उलट कर देखने लगा। एक पन्ने पर ठहर कर वह कई पंक्तियाँ पढ़ गया। अगला पन्ना उलट कर देखते ही वह चौंक पड़ा।

मन्मथसिंह को वह पन्ना दिखाते हुए उसने मानों कुछ घबराहट के साथ कहा—"देखिये, देखिए, इस जगह से इस पुस्तक के कई महत्वपूर्ण पन्ने ग़ायब हैं! उन पन्नों की सहायता के बिना तो पाताल कूप तक पहुँचना असम्भव है!" मन्मथसिंह ने देखा सचमुच पृष्ठों का क्रम ठीक न मिलता था। उनके आश्चर्य की सीमा न रही। उनका चेहरा सूख गया। उन्होंने भर्राए हुए स्वर में कहा—"हैं! मुझे तो अभी तक इस पुस्तक को उलट-पलट कर देखने का अवकाश भी न मिल सका था। अतएव मेरे हाथ से उन पन्नों का कहीं गिर जाना तो सम्भव नहीं है।"

नक़ाबपोश ने पूछा—"आखि़र यह पुस्तक आपको मिली किसके पास थी?"

मन्मथसिंह ने उत्तर दिया—"यह ! यह पुस्तक मुझे भानुपुर की रहने वाली एक स्त्री के पास से मिली थी। वह स्त्री उस संन्यासी की प्रेयसी है जिसका नाम आप के कहने से इन्दुशेखर मालूम होता है।"

"तब क्या यह सम्भव नहीं कि उसी ने कोई ..." कहता-कहता नक़ाबपोश रुक गया।

मन्मथसिंह ने अटकते हुए कहा—"सम्भव !... सम्भव तो है...क्योंकि मेरे विवश करने पर ही उसने पुस्तक मुझे दी थी।..."

"पर वह तो अभी अपने अधिकार में ही है ?" मधुसूदन ने टोंकते हुए कहा "मैं समझता हूँ यदि एक बार प्रयत्न किया जाय तो सम्भव है कुछ पता लग सके।"

मन्मथसिंह कहने लगे—"परन्तु मैं अपने अनुचर को आज प्रातःकाल उसे भानुपुर छोड़ आने का आदेश कर चुका हूँ।"

"तो भी अभी समय है।" मधुसूदन ने कहा।

"क्या आपने उस स्त्री को कहीं दूर पर क़ैद कर रक्खा है ?" नक़ाबपोश ने पूछा।

मन्मथसिंह ने गम्भीरता पूर्वक कहा—'जी हाँ, मैंने उसे यहाँ से लगभग तीन मील की दूरी पर उत्तर वाले वन-प्रान्त में स्थित अपने एक गुप्त स्थान में रक्खा है। देखता हूँ, इस समय तनिक भी विलम्ब हो जाने से एक अमूल्य वस्तु हाथ से निकल जायगी

मैं एक गुप्त-पथ द्वारा अभी वहाँ जाता हूँ। परन्तु महाराज चन्द्रसिंह को वहाँ..."

नक़ाबपोश बोला "तब तक के लिए आप इन्हें किसी सुरक्षित स्थान पर नहीं पहुँचा दे सकते ?"

मन्मथसिंह ने कुछ विचार करते हुए कहा--"नहीं, इन्हें अपने पास रखने की आवश्यकता ही क्या है। अब तो इन्हें शीघ्र से शीघ्र यहाँ से दूर मीलू-गढ़ के सीमाप्रान्त के समीप छोड़ आना ही उचित जान पड़ता है। आप लोग यहीं ठहरिये। मैं सारी व्यवस्था किये देता हूँ। कहते हुए मन्मथसिंह एक अन्धेरी गली में घुस कर अन्तर्धान हो गये।"

लगभग पाव घण्टा के बाद वे दो घोड़े लिए हुए लौट आये। नक़ाबपोश को सम्बोधन करते हुए उन्होंने कहना आरम्भ किया—"यह काम मैं आप को ही सौंपना चाहता हूँ। पहले मैंने विचार किया था कि मधुसूदन को भी सहायता के लिए आप के साथ कर दूँगा परन्तु देखता हूँ मुझे उनकी आवश्यकता पड़ेगी। मुझे आप पर पूरा भरोसा है। आप दोनों घोड़ों का एक साथ सञ्चालन कर सकेंगे ? एक घोड़ा इसलिए है कि उसे आप महाराज चन्द्रसिंह के पास छोड़ दें जिससे कि होश में आते ही वे निर्विघ्न मीलूगढ़ पहुँच सकें।"

नक़ाबपोश ने उत्तर दिया--"मैं तैयार हूँ। परन्तु आप से अब कहाँ मिलूँ ? आशा है आप अपने वचन को न भूलेंगे।"

मन्मथसिंह ने कहा—"आप उस ओर से निश्चिन्त रहिए।

प्रातःकाल तक इस कार्य से छुट्टी पाकर आप उसी वन-प्रदेश में आ जाइयेगा। वह प्रान्त आपका जाना हुआ तो है?"

नक़ाबपोश ने सिर हिला दिया।

"मैं आप को वहीं नहर के किनारे मिलूँगा" मन्मथसिंह ने कहा।

महाराज चंद्रसिंह को घोड़े की पीठ पर लाद कर नक़ाबपोश चलने के लिए उद्यत हुआ। कुछ सोच कर मन्मथसिंह ने कहा—"अच्छा ठहरिये, मैं एक पत्र लिखे देता हूँ। इसे आप चन्द्रसिंह की जेब में डाल दीजिएगा।"

एक कागज़ के टुकड़े पर उन्होंने जल्दी जल्दी तीन चार पंक्तियाँ लिख कर उसे नक़ाबपोश की ओर बढ़ा दिया।

एक घोड़े पर सवार होकर दूसरे की लगाम बाएँ हाथ में थामें हुए नक़ाबपोश ने अपनी राह ली।

मधुसूदन ने कहा—"समझ में नहीं आता यह कौन है?"

मन्मथसिंह ने उत्तर दिया—"मैं भी हैरान हूँ। कोई भी हो, परन्तु कम से कम इस पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता।"

मधुसूदन को लिए हुए मन्मथसिंह उसी पश्चिमी पर्वत की ओर अग्रसर हुए। एक सकरी पगदण्डी की राह चल कर वे लोग सघन तरुसमूहों के बीच पर्वत शिखर पर बनी हुई एक छोटी-सी कुटी के समीप जा पहुँचे। पिछले परिच्छेद में पाठकों ने इसी कुटी के समीप अरुणसिंह, कमल नयन तथा नवलसिंह

को बात-चीत करते सुना था और इसी कुटी में मधुसूदन को अन्तर्द्धान होते देखा था। कुटी के द्वार पर ताला पड़ा हुआ था। मन्मथसिंह ने ताला खोल डाला। एक मोटी जंजीर छत से लटक रही थी। मन्मथसिंह ने उसे अपनी ओर खींच कर छोड़ दिया। फ़र्श में एक चौकोर छेद निकल आया। नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। दोनों ने भीतर प्रवेश किया। लगभग पचास सीढ़ियाँ उतर कर वे लोग एक चौड़ी सुरङ्ग के मुख-द्वार पर आ पहुँचे। आधा घंटे तक इस सुरङ्ग के भीतर चलने के उपरान्त उन्हें ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ मिलीं। दस-बारह सीढ़ियाँ चढ़ कर वे लोग एक छोटे से गोल कमरे में आ निकले। इस कमरे में खिड़की अथवा द्वार आदि का कहीं चिन्ह न था परन्तु एक तेज़ बत्ती के प्रकाश से कमरा जगमगा रहा था। कमरे के फ़र्श पर एक स्त्री और एक पुरुष अचेतावस्था में पड़े हुए थे। हमारे पाठक देखते ही कह देंगे कि पुरुष उनका चिर-परिचित संन्यासी था और स्त्री भानपुर वाली डाली! संन्यासी का सारा शरीर एक सफ़ेद चादर से ढकने के अनन्तर मन्मथसिंह ने स्त्री को चैतन्य करने की व्यवस्था की। डाली आँखें मलती हुई उठ बैठी। अपने सामने मन्मथसिंह को खड़ा देख कर वह गिड़गिड़ाती हुई कहने लगी--"अब आप मुझे किस लिए कष्ट दे रहे हैं?"

मन्मथसिंह ने लाल लाल आँखें दिखा कर कहा—"मेरे साथ छल करने चली है शैतान छोकरी! बता उस किताब के कई पन्ने

फाड़ कर तूने कहाँ रक्खे हैं ? निकाल उन्हें, नहीं तो तेरी खैर नहीं है।"

डाली ने काँपते हुए कहा—"मुझे उन पत्रों का हाल बिलकुल नहीं मालूम।"

मन्मथसिंह ने झल्ला कर मधुसूदन को आदेश दिया—"यह यों न मानेगी, आप इसे उठा कर मेरे पीछे चले आइए। इस दुष्टा को कम से कम मालूम ज़रूर है। मैं अभी सारा भेद इसके पेट से निकाले लेता हूँ।" खूँटी पर टँगी हुई एक नक़ाब उतारकर उन्होंने अपने चेहरे पर लगा ली और एक काले कपड़े से अपने सारे शरीर को ढक कर वे सीढ़ियों की राह उतर गये। मधुसूदन ने डाली को उठा कर उनका अनुसरण किया। मन्मथसिंह ने सबसे नीचे वाली सीढ़ी के किनारे हाथ ले जाकर न जाने कौनसा यन्त्र दबा दिया। सहसा सुरङ्ग की बाईं ओर वाली दीवार में एक छोटी सी खिड़की निकल आई। इस ओर भी ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। लगभग आठ-दस सीढ़ियाँ चढ़ कर मन्मथसिंह ने किसी विचित्र ढङ्ग से ऊपर का एक शिलाखण्ड हटा दिया। शिलाखण्ड के हटते ही ये लोग नवागढ़ के उत्तर ओर वाले वन-प्रान्त में आ निकले। शिलाखण्ड से कुछ ही दूर पर सघन लता-जालों से मण्डित एक पाषाण-स्तूप बना था। कहना न होगा कि यह वही स्तूप था जिसके भीतर उग्रनाथ ने दो व्यक्तियों को बात-चीत करते सुना था।

प्रात:काल होने में कुछ ही विलम्ब था। मन्मथसिंह और मधुसूदन डाली को लेकर एक सघन तरु समूह के समीप जा पहुँचे।

इसके बाद 'सुवर्ण-रहस्य' के खोये हुए पन्नों का भेद जानने के लिए इन लोगों ने डाली के साथ जो व्यवहार किया उसका करुण-चित्र पाठक पिछले किसी परिच्छेद में देख चुके हैं। डाली के अनुनय-विनय से उनका हृदय न पसीजा।

उन्होंने उसे मोटी-मोटी रस्सियों से जकड़ कर एक वृक्ष की डाल से उल्टा टाँग दिया। अनेक प्रकार के भय दिखा कर उन्होंने उन पन्नों का रहस्य पूछना चाहा। परन्तु डाली बराबर यही कहती रही कि "मुझे उन पन्नों का हाल बिलकुल नहीं मालूम।"

अन्त में मन्मथसिंह को एक नया उपाय सूझ पड़ा। उन्होंने मधुसूदन को आदेश दिया—"आप गुफ़ा के भीतर जाकर संन्यासी को उठा लाइए। उसे हम लोगों के अधिकार में देख कर शायद यह भेद छिपाने का साहस न कर सके। मधुसूदन गुफ़ा की ओर जाना ही चाहते थे कि सहसा दूर पर किसी के बोलने का-सा शब्द सुनाई दिया। मधुसूदन को वहीं ठहरने का आदेश देकर मन्मथसिंह उसी ओर अग्रसर हुए जिधर से वह शब्द आ रहा था। कुछ दूर जाकर उन्होंने देखा, दो व्यक्ति इधर-उधर किसी को खोजते फिर रहे हैं।

उन्होंने पहिचाना वे शंकर सिंह और उग्रनाथ थे।

मन्मथसिंह का हृदय धड़कने लगा। वे समझ गये, डाली की

क्रन्दन ध्वनि सुनकर ही ये लोग इधर आ निकले हैं। साँस थाम कर वे दोनों की गति-विधि का निरीक्षण करने लगे। अनुसन्धान का कोई परिणाम निकलता न देख कर शंकरसिंह और उग्रनाथ धीरे-धीरे बातें करते हुए नवागढ़ की ओर चल दिये। मन्मथसिंह ने वृक्षों की ओट में अपने आपको छिपाते हुए उनका अनुसरण किया। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि ये लोग नवागढ़ किस अभिप्राय से जा रहे हैं।

* * * *

बड़ी देर तक मन्मथसिंह के न लौटने पर मधुसूदन को चिन्ता होने लगी। उनका हृदय सशंकित हो उठा। डाली को उसी अवस्था में छोड़ कर वे मन्मथसिंह को खोजते हुए दूर तक निकल गये। परन्तु मन्मथसिंह न दिखाई दिये। उन्हें शंका होने लगी कहीं मन्मथसिंह किसी विपत्ति में तो नहीं फँस गये। अथवा कहीं संन्यासी को लाने के लिए बाहर ही बाहर सुरंग की ओर तो नहीं चल दिये? सन्देह निवारणार्थ वे लपकते हुए शिलाखण्ड वाले द्वार के समीप जा पहुँचे। द्वार अभी तक खुला हुआ था। वे भीतर उतरना ही चाहते थे कि उन्हें एक नक़ाबपोश अश्वारोही भाग कर उसी ओर आता हुआ दिखाई दिया। निकट आकर उसने अपनी नक़ाब उलट दी। मधुसूदन ने पहिचाना वह और कोई नहीं स्वयं मन्मथसिंह थे। मन्मथसिंह ने घोड़े से उतर कर उसे एक कोड़ा मार दिया। घोड़ा भागता हुआ जंगल

में अन्तर्द्धान हो गया। बिना कुछ कहे सुने वे मधुसूदन का हाथ पकड़ कर खींचते हुए नीचे उतर गये और पलक मारते यन्त्र घुमा उन्होंने द्वार बन्द कर लिया। क्षण भर दम लेकर उन्होंने कहा—"ओह! बड़ी उलझन में फँस गया था।" संक्षेप में सारा प्रसंग मधुसूदन को सुनाते हुए वे गोल कमरे में जा पहुँचे। एक चटाई पर बैठते हुए उन्होंने कहा—"उग्रनाथ ने बहुत दूर तक मेरा पीछा किया परन्तु मैं टेढ़ी राहों से होता हुआ उन्हें चकमा देकर निकल ही भागा। हाँ, डाली से कुछ मालूम हुआ ?"

मधुसूदन ने उत्तर दिया—"कुछ नहीं, वह तो बराबर यही कहती रही कि मुझे उन पन्नों का हाल नहीं मालूम !"

मन्मथसिंह ने नैराश्य पूर्ण स्वर में कहा—"तब आखिर वे पन्ने गए कहाँ !"

मधुसूदन ने उत्तर दिया—"समझ में नहीं आता। मैंने डाली से हर प्रकार जानने का प्रयत्न किया परन्तु उसने कुछ भी न बताया। इधर आपको भी गए बहुत देर हो चुकी थी इसलिए मुझे चिन्ता होने लगी कि कहीं आप किसी विपत्ति में न फँस गए हों आपको खोजता हुआ मैं इस ओर आ निकला तब तक देखता हूँ आप स्वयं आ पहुँचे।"

कहना न होगा कि लता-जालों से मुँदा हुआ पाषाण-स्तूप इसी कमरे का वाह्य रूप था और इसी समय उग्रनाथ ने इन लोगों को स्तूप-गर्भ में बात चीत करते सुना

था ।* अभी ये लोग बात-चीत करही रहे थे कि सहसा सीढ़ियों की राह चढ़कर एक नक़ाबपोश ने गोल कमरे में प्रवेश किया।

नक़ाब की बनावट आदि से मन्मथसिंह ने पहिचान लिया कि यह वही नक़ाबपोश है जिसने पिछली रात उनकी सहायता की थी। वे अभी कुछ कहना ही चाहते थे कि नक़ाबपोश यकायक उन पर टूट पड़ा। उसके इस व्यवहार से दोनों स्तम्भित रह गये। उन्होंने बहुत प्रयत्न किया परन्तु नक़ाबपोश के आकस्मिक प्रहार से वे अपने आपको न बचा सके। थोड़ी ही देर में उन्हें नीचे गिरा कर नक़ाबपोश ने एक विषाक्त औषधि की सहायता से उन्हें कई घण्टों के लिए सुला दिया। इस ओर से निश्चिन्त होकर वह मन्मथसिंह की जेबें टटोलने लगा, और अपनी अभिप्रेत वस्तु पाकर एक बार प्रसन्नता से उछल पड़ा।

इसी समय उसकी दृष्टि चादर से ढके हुए एक व्यक्ति पर पड़ी। चादर हटाकर नक़ाबपोश ने एक बार उसके चेहरे की ओर देखा। फिर मुस्कुराते हुए उसी चादर में उसे समेट कर नीचे उठा ले चला। लगभग सौ गज़ सुरंग के भीतर जाकर उसने यत्न पूर्वक बोझा एक किनारे रख दिया। इसके बाद मधुसूदन और मन्मथसिंह को भी क्रमशः सुरङ्ग के भीतर ले जाकर छिपा दिया और कुछ दूर गोल कमरे की तरफ़ लौट कर वह कोई वस्तु टटोलने लगा।

* देखिए तीसरा भाग पाँचवाँ परिच्छेद।

एक पुरुष बेसुध पड़ा था। जिसे शायद नक़ाबपोश ने ही कुछ देर पूर्व वहाँ लाकर रक्खा था। नक़ाबपोश उसे एक ओषधि सुँघा कर सुरङ्ग के भीतर छिप गया। कुछ ही क्षणों के अनन्तर वह पुरुष आँखें मलता हुआ उठ बैठा। परिस्थिति का ज्ञान होते ही वह घबराया हुआ गोल कमरे की ओर दौड़ा। गोल कमरे में उसे कोई न दिखाई दिया। हताश होकर शिलाद्वार खोलता हुआ वह बाहर निकल आया। उचित अवसर देख कर नक़ाबपोश अपना बोझा लिए हुए दबे पाँव उसी के पीछे पीछे शिलाद्वार पर आ पहुँचा। वह पुरुष अभी तक आश्चर्य-चकित होकर इधर-उधर ताक रहा था। नक़ाबपोश ने एक छोटा सा गोला उसके सामने पटक दिया। क्षण भर बाद वह पुरुष माथा थाम कर बैठ गया। उसकी चेतना जाती रही। नक़ाबपोश अपना गट्ठर सँभाले हुए निःशंक भाव से एक ओर चल दिया।

शिलाद्वार से लगभग एक फ़र्लांग के अन्तर पर एक छोटी सी नहर बह रही थी। यह नहर कुछ ही दूर बढ़ कर चन्द्राकार पर्वत के भीतर समा गयी थी और कई मील तक पर्वत के गर्भ से होकर बहती हुई नवागढ़ राजप्रासाद की ओर चली गयी थी। नक़ाबपोश गट्ठर में बँधे हुए व्यक्ति को इसी नहर में छोड़ कर लौट पड़ा। एक वृक्ष की ओट में उसका घोड़ा बँधा हुआ था। घोड़े पर सवार होकर वह पाषाण-स्तूप की ओर अग्रसर हुआ।

बारहवाँ परिच्छेद

उस दिन मीलूगढ़-नरेश द्वारा तिरस्कृत होकर भी विलासिनी मेनका उनकी ओर से बिलकुल निराश नहीं हुई। उसका वह आवेश क्षणिक था। विलासिता की मदिरा ने उसके वास्तविक आत्माभिमान को धोकर बहा दिया था। और उसके हृदय में रह गई थी थोथे अहंकार के रूप में केवल उसकी काली प्रतिच्छाया!

महाराज चन्द्रसिंह के भर्त्सना-पूर्ण वाक्यों से भी उसकी आँखें न खुलीं थीं। उनके वास्तविक रूप को वह न पहिचान सकी थी। उसे अब भी आशा बनी हुई थी कि उसके प्रभुत्व के आगे उन्हें एक न एक दिन अपना सिर झुकाना पड़ेगा। एकान्त में वह प्रायः गर्व के साथ पराजित चन्द्रसिंह का कल्पित चित्र अपने मानस-पटल पर अंकित किया करती और मनही मन उसी

कल्पित चित्र के प्रति मर्म वचन सुना कर अपना हृदय शीतल किया करती थी।

यह सब कुछ था, परन्तु उसका चित्त अशान्त रहने लगा था। उसका मन किसी काम में न लगता था। रूप का अमोघ सम्मोहनास्त्र महाराज चन्द्रसिंह के द्वारा निष्फल कर दिये जाने के कारण मानों अपने प्रेरक को ही विक्षुब्ध करने लगा था।

आज उसे रात भर नींद न आयी थी। अनेक अप्रिय स्वप्न देखते देखते सारी रात बीत गई। उसका मन उद्विग्न हो रहा था। प्रात:काल होते ही उसने ललिता को बुला भेजा, ललिता फूलों का एक सुरुचिर गुलदस्ता लिए हुए आ पहुँची। मेनकारानी उसे देखते ही बोली—"अरी, इतने सबेरे तूने यह गुलदस्ता तैयार कर डाला ? कहाँ पाए ऐसे सुन्दर फूल ?"

"हीरा बाग के तो फूल हैं ?" ललिता ने मुस्कुराते हुए कहा।

"हीराबाग में ऐसे सुन्दर फूल ?" मेनकारानी आश्चर्य प्रगट करती हुई बोली—"मैंने तो अब तक वहाँ ये फूल नहीं देखे थे ! यह लाल और नीली पँखुरियों वाला फूल तो जरूर तू कहीं और से लाई है !"

"आप तो आज कल न जाने रात-दिन किस सोच में पड़ी रहती हैं।" ललिता ने भौंहें नचा कर कहा—"बाग में जाकर भी

मानों आँखें बन्द किए रहती हैं। यह उसी झाड़ी का फूल तो है जिससे सरला ने बीच वाली क्यारी सजायी थी।"

मेनकारानी ने उसे अपने होठों से चूमते हुए कहा—"बड़ा सुन्दर फूल है ललिता! और भी ऐसे दो एक फूल खिले हैं?"

"दो एक?" ललिता ने मुस्कुराते हुए कहा—"सारी क्यारी इन्हीं फूलों से छाई हुई है रानी! आप चाहें तो एक पूरा गजरा इन्हीं फूलों से गूँथ लाऊँ।"

"अच्छा, दासी को कह दे कि थोड़े से और ऐसे ही फूल तोड़ लावे" मेनका ने चपलता के साथ कहा। फिर कुछ रुक कर बोली—"अच्छा, ठहर, मैं स्वयं चल कर फूल चुनूँगी। मेरा मन इधर नहीं लगता। थोड़ी देर जी बहल जायगा।"

ललिता के साथ-साथ मेनका गुप्त पथ से होकर हीरा बाग में जा पहुँची। इस समय पन्ना दाहिने हाथ में एक सुन्दर हजारा लिए हुए उसी केन्द्रवर्ती क्यारी को सींच रही है। आहट पा उसने पीछे की ओर घूम कर देखा। फूलों से लदी क्यारी को देखते ही विलासिनी मेनका का हृदय क्षण भर के लिए खिल उठा। ललिता का संकेत पाते ही पन्ना हाथ का हजारा वहीं छोड़ कर एक छोटी सी टोकरी उठा लाई। मेनका रानी बड़े चाव से उसे दाहिने हाथ के सहारे कमर पर टिका कर अपने मन भाये कुसुमों का चयन करने लगी।

उसे स्मरण हो आया, एक दिन इसी क्यारी से चुन-चुन कर

फूलों का मनोहर गजरा गूँथ उसने बड़ी साध के साथ मन्मथसिंह के गले में पहिनाया था। परन्तु आज का गजरा वह क्या करेगी? आज तो परिस्थिति बदल गयी है। अपने उन्मत्त हृदय के जिस मन्मथ-संविष्ट सिंहासन पर उसने कुछ दिन पहले मन्मथसिंह को बिठाया था उसी पर वह आज महाराज चन्द्रसिंह की मूर्ति प्रतिष्ठित देखती है। चन्द्रसिंह की चन्द्र-प्रभा के आगे मन्मथसिंह का चित्र प्रति दिन धुँधला होता जाता है।

तब क्या आज का गजरा वह उसी साध से अपने हृदय सिंहासन के वर्तमान अधिष्ठाता महाराज चन्द्रसिंह के गले में पहिनाने का साहस कर सकेगी? उसका उत्साह क्षणभर के लिए फीका पड़ गया। एक सुन्दर फूल उसके हाथ से छूट कर गिर पड़ा। कल्पना की तरंगों में डूबती और उतराती हुई मेनका उसे उठाने के लिए नीचे झुकी। उसकी असावधानी के कारण कमर पर सधी हुई टोकरी के कितने ही फूल बिखर गये।

ललिता पीछे खड़ी उसकी तल्लीनता देख रही थी। उसने मुस्कुराते हुए कहा—"किस धुन में भूली हुई हो रानी? सारे फूल तो बिखरे जा रहे हैं।"

मेनका की तन्द्रा भंग हुई। अभी वह कुछ कहना ही चाहती थी कि सहसा पन्ना के मुँह से एक हलकी सी चीख निकल गयी! "हैं, यह कौन?"

मेनका और ललिता ने चौंककर पन्नाकी ओर देखा। क्षणभर



"किस धन में भूली हुई हो रानी ? सारे फूल तो बिखरे जा रहे हैं ।"

बाद ही उसके दृष्टि-पथ का अनुसरण करती हुई उन दोनों की आखें पश्चिम ओर वाले कुंज तक जाकर अटक गयीं। उन्होंने देखा, एक व्यक्ति उस सघन कुंजकी ओट में नन्हीं-नन्हीं टहनियों के बीच मुँह छिपाये हुए उन्हीं की ओर देख रहा था। इन लोगों को सावधान होते देख उस व्यक्ति ने छिपना चाहा। परन्तु पलक मारते ही ललिता ने एक गोला उसी कुंज की ओर फेंक दिया। धुएँ के एक बादल ने कुछ देर के लिये समूचे कुंज को ढक लिया। ललिता लपक कर कुंज के भीतर चली गई और बेसुध व्यक्ति को बाहर उठा लाई। इस समय तक मेनका और पन्ना भी कुंज के समीप जा पहुँचीं थीं। ललिता ने उस व्यक्ति को मेनका के सामने लिटा दिया। तीनों की दृष्टि उसके चेहरे पर पड़ी। उन्होंने पहिचाना—महाराज चन्द्रसिंह! उनके आश्चर्य की सीमा न रही। मेनका के मुँह से बरबस निकल पड़ा—"हैं, महाराज चन्द्रसिंह यहाँ कैसे?"

ललिता ने कहा—"तिलस्मी कारागार से इनका इस प्रकार निकल आना आश्चर्य-जनक है!"

मेनका रानी ने विस्मय सूचक स्वर में कहा—"परन्तु मैंने तो इन्हें ऐसी जगह रक्खा था जहाँ मेरे अतिरिक्त और किसी की भी पहुँच नहीं हो सकती।"

"तब कहीं यह कोई ऐयार तो नहीं है?" पन्ना ने कहा।

"अभी इस सन्देह की निवृत्ति किये लेती हूँ।" कहते हुए

ललिता ने एक तरल ओषधि के दो-चार बूँद उसके चेहरे पर डाल कर रगड़ दिये। देखते ही देखते चन्द्रसिंह का चेहरा बदल गया। ललिता बोल उठी "अरे! ये तो रणसिंह हैं!"

"कौन रणसिंह?" मेनका ने कौतूहल के साथ पूछा—"मीज़ूगढ़ के प्रसिद्ध ऐयार! महाराज चन्द्रसिंह के अन्तरंग मित्र!" ललिता ने उत्तर दिया "हाँ, हाँ वही।"

"परन्तु ये इस उद्यान में किस राह से आ गये?" मेनका बोली। "समझ में नहीं आता" कहती हुई ललिता उनकी जेबें टटोलने लगी। भीतर की जेब में दो पत्र यत्नपूर्वक रक्खे हुए थे। ललिता ने दोनों को मेनका की ओर बढ़ा दिया। एक पत्र पर दीयागढ़-नरेश का नाम लिखा हुआ था। मेनका उसे खोल कर पढ़ने लगी। उसमें लिखा था—

"प्रजारञ्जन, धर्मावतार, वीरसिंह जी!

मैं सकुशल नवागढ़ में हूँ। बड़ी राजकुमारी भी संयोग-वश यहीं आ फँसी हैं। हम लोग 'अलकापुरी' नामक तिलस्म में हैं। आप विशेष चिन्ता न करें।

आपका

चन्द्रसिंह।"

मेनका हैरान थी कि चन्द्रसिंह का लिखा हुआ पत्र रणसिंह के पास किसने पहुँचाया! धड़कते हुए हृदय से उसने दूसरा पत्र खोला। उसमें लिखा था:—

"महाराज चन्द्रसिंह जी !

अब तक आप मेनका रानी के तिलस्मी कारागार में क़ैद थे। आपके एक हितचिंतक ने आपको कारागार से निकाल कर यहाँ पहुँचाया है। इस समय आप मीलूगढ़ के सीमा-प्रान्त में हैं। सेवा के लिए एक घोड़ा प्रस्तुत है। आप सकुशल मीलूगढ़ जा सकते हैं।

आपका—"

मेनकारानी इस पत्र का मर्म कुछ भी न समझ सकी। परन्तु उसके अक्षर पहिचानते उसे देर न लगी। उसे ललिता की ओर बढ़ाते हुए उसने कहा—"देख तो, यह मन्मथसिंह का ही लिखा हुआ है न ?"

"अक्षर तो उन्हीं के हैं !" ललिता ने विस्मय भरे स्वर में कहा—"परन्तु इसका तात्पर्य क्या है ?"

"समझ में नहीं आता।" मेनका पत्र वापस लेते हुए बोली। फिर गम्भीर होकर कहने लगी—"कुछ भी हो, परन्तु देखती हूँ, मन्मथसिंह को चन्द्रसिंह का रहस्य मालूम हो गया है और उन्होंने किसी न किसी प्रकार मेरे काम में हस्तक्षेप करने की चेष्टा अवश्य की है।"

ललिता ने अस्फुट स्वर में कहा—"यह पत्र चन्द्रसिंह-रूप-धारी रणसिंह को जेब में ! और रणसिंह हीराबाग़ में ! इन घटनाओं को साथ मिला कर देखने से तो इस पत्र का सिर-पैर कुछ भी समझ में नहीं आता !"

उसकी बात का कुछ उत्तर दिये बिना मेनका रानी ने पन्ना को सम्बोधन करते हुए कहा—"मैं बँगले में चलती हूँ। तू जाकर ज़रा मन्मथसिंह को बुला तो ला। देख, इस घटना का भेद उन्हें न मालूम होने पावे।"

पन्ना आदेश-पालन के लिए चल पड़ी। मेनका सिर झुकाये हुए उसी बँगले की ओर अग्रसर हुई जिसके भीतर पाठक एक बार कुमारी चन्द्रावती तथा मेनकारानी के साथ हो आये हैं। ललिता ने भी रणसिंह को उठाकर मेनकारानी का अनुसरण किया।

मेनकारानी ने बँगले की सीढ़ी पर पैर रखते हुए गम्भीरता-पूर्वक कहा—"सम्भव है किसी प्रकार महाराज चन्द्रसिंह-सम्बन्धी घटना की गन्ध पाकर मन्मथसिंह ने मुझे चिढ़ाने के लिए कोई स्वाँग रचा हो! जो हो, अब मन्मथसिंह पर दृष्टि रखनी होगी ललिता! लेकिन बहुत सावधानी के साथ! जिसमें उन्हें मालूम न होने पावे।"

ललिता रणसिंह को लिए हुए बँगले के भीतर चली गयी। उन्हें उसने एक कमरे में यत्नपूर्वक छिपा दिया और भीतर से दो कुर्सियाँ लाकर बँगले के बाहरी बरामदे में रख दीं। एक कुर्सी पर मेनका बैठ गई, दूसरी कुर्सी पकड़कर ललिता उसके सामने चुपचाप खड़ी हो गयी।

कुछ ही देर के अनन्तर पन्ना अकेली आती हुई दिखाई पड़ी। ललिता ने दूर ही से पूछा—"क्यों मिले या नहीं?"

पन्ना ने सिर हिलाते हुए उत्तर दिया—"नहीं। घर पर नहीं हैं। उनका अनुचर कहता है कि वे पिछली सन्ध्या से बाहर हैं। घर में कुछ कह कर भी नहीं गये। उन लोगों का तो अनुमान था कि वे आपकी तरफ़ आए होंगे।"

ललिता की ओर देखते हुए मेनका ने कहा—"आश्चर्य है! तू ज़रा उनका पता तो लगा।" ललिता जाने के लिए उद्यत हुई।

पन्ना ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"सरला जी के पिता का एक पत्र-वाहक बाहर खड़ा है। महारानी से मिलना चाहता है। मैं अभी बाहर गयी थी तब मुझे मिला था।"

ललिता ठहर गयी। मेनका ने रहस्य-पूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा--"सरला के पिता कौन? वही वीरभद्र? जिन की उस दिन तूने चर्चा की थी? उनका पत्र-वाहक किस लिए आया है! कहीं......"

"शायद सरला के लिए कोई संदेश लाया हो!" ललिता ने उपेक्षा के साथ उत्तर दिया। कुछ विचार करती हुई मेनका बोली,—"अच्छा, जा पन्ना, उसे सिंह-द्वार की ओर ले चल, मैं अभी दरबार भवन में आती हूँ।" पन्ना फिर हीरा बाग़ के बाहर चली गयी। मेनका ने ललिता को सम्बोधन करते हुए कहा—"देखती हूँ, मीलूगढ़ के ऐयारों को भी किसी न किसी प्रकार चन्द्रसिंह की गन्ध मिल चुकी है। पिछली रात मन्मथसिंह का ग़ायब रहना भी रहस्य से ख़ाली नहीं है। हम लोगों को अब

बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। रणसिंह को लेकर तू इसी समय मेरे साथ चली चल। इन्हें भी तिलस्म के भीतर पहुँचा देना होगा।"

कहती हुई मेनकारानी बँगले के भीतर चली गयी। ललिता ने उसका अनुसरण किया।

× × ×

रणसिंह की ओर से निश्चिन्त होकर ललिता को लिये हुए मेनका दरबार गृह में आ पहुँची। एक उच्च आसन पर बैठने के अनन्तर उसने ललिता को पत्र-वाहक के बुलाने का सङ्केत किया। ललिता चपल गति के साथ दरबार भवन के बाहर हुई और कुछ ही क्षणों के बाद एक युवक को लिये हुए लौट आई। युवक ने सम्मान पूर्वक मेनकारानी को सलाम किया और एक लिफ़ाफ़ा उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"सरला के पिता वीरभद्र ने मुझे आपकी सेवा में भेजा है। मेरे पास सरला के नाम का एक पत्र है।"

मेनका ने लिफ़ाफ़ा फाड़ डाला। भीतर एक पत्र था। मेनका पत्र खोलकर पढ़ने लगी। उसमें लिखा था :—

"मेरी प्यारी बेटी,

इधर कई दिनों से मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। मेरी अवस्था भी अब ढल चली है। मैं चाहता हूँ कि तू कुछ दिन के लिए नवागढ़ छोड़कर मेरे पास रहे। अतएव महरानी से मेरा

नम्र निवेदन सुनाकर अवकाश ले लेना। और पत्र पाते ही पत्र-वाहक के साथ-साथ चली आना।

—तेरा रोग-ग्रस्त पिता, वीरभद्र।"

ललिता की ओर पत्र बढ़ाते हुए मेनका ने एक विशेष संकेत के साथ कहा—"जा, यह पत्र सरला के दे दे, और उसे यहीं भेज दे।" ललिता पत्र लिए हुए बाहर चली गयी और कुछ ही देर बाद सरला बन कर लौट आई। मेनका उसे देखते ही बोली—"तेरे पिता का आदमी आया है सरला! जा उसे समझा देना। अभी क्या जायगी? थोड़े दिन बाद चली जाइयो।"

सरला पत्र-वाहक को साथ लेकर दरबार भवन से बाहर हुई।

× × ×

लगभग दो घंटे की गाढ़ी निद्रा के उपरान्त रणसिंह ने आँखें खोलीं। उन्होंने देखा, वे एक छोटे से चौकोर कमरे में पड़े हुए हैं। एकाएक उनका हाथ जेब में जा पहुँचा। जेब खाली थी। वे चकित होकर चारों ओर देखने लगे। कमरे का द्वार खुला हुआ था।

रणसिंह बाहर निकल आये। सामने एक छोटा सा उद्यान लगा हुआ था। यह उद्यान चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारों से घिरा हुआ था। उद्यान के बीचों बीच एक छोटी-सी नहर बह रही थी। नहर उत्तर ओर वाली दीवार के नीचे से निकल कर दक्षिण ओर वाली दीवार के नीचे समा गयी थी।

रणसिंह कुछ देर तक इधर-उधर घूम कर उद्यान की शोभा का निरीक्षण करते रहे। उन्होंने देखा उद्यान के बाहर निकलने का कोई मार्ग न था। सहसा उनका ध्यान नहर की ओर आकर्षित हुआ। वे सोचने लगे यह नहर भी तो कहीं न कहीं बाहर जाकर निकली ही होगी! वे बहाव के साथ साथ नहर के किनारे किनारे चलते हुए दक्षिण ओर वाली दीवार के समीप आ गये। उन्होंने उस छेद के भीतर झाँक कर देखा जिसमें वह नहर समा रही थी। छेद के उस पार से उन्हें मन्द-मन्द प्रकाश आता दिखाई दिया। अनुमान के सहारे उन्होंने समझ लिया कि लगभग पचास गज़ बहने के बाद नहर किसी खुले हुए मैदान में जा निकली है। उनके हृदय में आशा की एक उज्ज्वल रेखा दौड़ गयी। कपड़े समेट कर उन्होंने अपने आपको नहर के बहाव के साथ डाल दिया।

कुछ ही देर के बाद वे नहर में बहते हुए एक दूसरे उद्यान में आ पहुँचे। यह उद्यान भी ठीक वैसा ही बना हुआ था। रणसिंह बाहर निकल आये और नहर के किनारे किनारे चलने लगे। नहर फिर एक दीवार के पास जाकर अन्तर्धान हो गयी थी। परन्तु इस बार दीवार के उस पार जाने के बदले वह एक गहरे प्रपात का रूप लेकर पृथ्वी के गर्भ में विलीन हो गयी थी। हताश होकर रणसिंह लौट पड़े और अपने भीगे हुए कपड़े निचोड़ उन्हें सुखाने का प्रयत्न करते हुए इस नए उद्यान का

निरीक्षण करने लगे। एक वृक्ष की डाल पर टँगे हुए कुछ कपड़ों से उन्हें वहाँ किसी के रहने का अनुमान हुआ। सहसा उनकी दृष्टि पश्चिमी दीवार से सटे हुए एक छोटे से बँगले पर पड़ी। बँगले का द्वार खुला हुआ था। कौतूहल से भरे हुए रणसिंह सावधानी के साथ उस बँगले की ओर अग्रसर हुए। उन्होंने भीतर झाँक कर देखा एक व्यक्ति द्वार की ओर पीठ किए एक कुर्सी पर बैठा कोई वस्तु निहार रहा था। रणसिंह दबे पाँव सरकते हुए उस व्यक्ति के ठीक पीछे जा खड़े हुए। उन्होंने पहिचाना, महाराज चन्द्रसिंह दाहिने हाथ में एक बाला का चित्र लिए बड़े ध्यान से देख रहे हैं। उनके आश्चर्य की सीमा न रही। भावावेश के कारण उनके मुँह से एक हलकी सी चीख निकल गई। महाराज चन्द्रसिंह ने चित्र को लुकाते हुए चौंक कर पीछे की ओर देखा। रणसिंह को देखते ही उनके मुँह से बरबस निकल पड़ा—"कौन? रणसिंह! तुम यहाँ कैसे आ पहुँचे? और ये तुम्हारे कपड़े कैसे भीग गये?" रणसिंह ने पास ही रक्खी हुई एक कुर्सी पर बैठते हुए उत्तर दिया—"कुछ न पूछिये महाराज! मैं भी मायाविनी मेनका के चंगुल में फँस कर यहाँ तक आ पहुँचा हूँ।"

"तब क्या मेरा पत्र लेकर तुम अभी तक दीयागढ़ नहीं जा सके?" चन्द्रसिंह ने पूछा।

"नहीं महाराज! दुर्भाग्य वश आपका वह पत्र भी मेरे हाथ से निकल गया" रणसिंह ने निराशा-पूर्ण स्वर में उत्तर दिया।

महाराज चन्द्रसिंह ने कौतूहल के साथ पूछा—"कैसे?" रणसिंह संक्षेप में सराय वाली घटना का हाल सुनाने के अनन्तर कहने लगे—"सराय से निकल कर हम लोगों ने नवागढ़ के पश्चिम ओर वाले वन-प्रदेश में किसी प्रकार सारी रात काट डाली। दूसरे दिन वेष बदल कर हम लोग सन्ध्या तक नवागढ़ की गलियों में घूम कर आपके सम्बन्ध में कुछ और बातें जानने का प्रयत्न करते रहे परन्तु कोई परिणाम न निकला। हताश होकर हम लोगों ने दीयागढ़ जाना निश्चित किया। इसी सम्बन्ध में परामर्श करते हुए रात्रि के समय हम लोग उसी वन-प्रान्त की ओर बढ़ ही रहे थे कि सहसा एक नक़ाबपोश ने पीछे से आकर एक बड़ा-सा गोला पटक दिया। हम लोग इतने विषाक्त धुएँ के लिए तैयार न थे। क्षण भर बाद ही हम लोगों की सुध-बुध जाती रही। इसके बाद मैं कितनी देर तक सोता रहा इसका मुझे ज्ञान नहीं। आज ही प्रातः काल मैंने पहले पहल नवागढ़ राज प्रासाद से लगे हुए उद्यान में एक सघन कुंज के नीचे आँखें खोलीं। हाथों और पाँवों में बसी हुई पीड़ा से मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था कि कम से कम दो दिन तक मैं उसी अवस्था में रक्खा गया था। होश आते ही मुझे उद्यान में किसी के बोलने का-सा शब्द सुनाई दिया। कुंज की टहनियों को धीरे से हटाकर देखा, मेनकारानी अपनी दो सखियों के साथ उद्यान में कुसुम-चयन कर रही थी। मैं अभी अपनी परिस्थिति को समझने का

प्रयत्न कर ही रहा था कि सहसा उन लोगों की दृष्टि मुझ पर पड़ गयी। दुर्भाग्य वश उसके साथ एक ऐयारा भी थी। मैं अभी सँभलने भी न पाया था कि छोटा-सा गोला मेरे सामने आ गिरा। मेरी क्षणिक चेतना जाती रही। उसके बाद आँखें खुलने पर मैंने देखा मैं एक दूसरे उद्यान में पहुँचा दिया गया हूँ! सामने वाली नहर उसी उद्यान से होकर आ रही है। इसी नहर में बह कर मैं आपके पास तक आ पहुँचा हूँ। न जाने मेघसिंह किस अवस्था में हों।" रणसिंह चुप हो रहे।

महाराज चन्द्रसिंह अभी कुछ कहना ही चाहते थे कि रणसिंह ने बीच में टोंक कर पूछा—"परन्तु महाराज अभी-अभी यह चित्र किसका देख रहे थे?"

चन्द्रसिंह ने बात टालते हुए कहा—"कुछ नहीं योंही...... तुम पहले अपने कपड़े तो बदल डालो। देखो उधर एक जोड़ी ....."

"योंही तो नहीं था महाराज!" रणसिंह ने कुछ गम्भीर होकर कहा—"देखता हूँ, महाराज अभी तक केलो-तट वाली उस वासन्ती सन्ध्या को नहीं भूल सके।"

"तुम ठीक कहते हो रणसिंह!" चन्द्रसिंह ने एक चित्र पृथ्वी पर पटकते हुए कुछ आवेश के साथ कहा, "मेरे अज्ञान में आज तक मेरे हृदय की यह दुर्बलता मुझ पर विजय पाने का प्रयत्न करती रही है। सचमुच कभी कभी मेरे हृदयाकाश की एक

निराली-सी खिड़की खोल कर यह सुन्दरी मानों झाँकने लगती थी परन्तु आज इस झाँकनेवाली को मैंने अच्छी तरह पहिचान लिया है। रणसिंह, अब वह मुझे अपने छद्म सौन्दर्य में भुला कर न रख सकेगी। उस दिन केलो नदी के तट पर मुझे केवल उसके वाह्य रूप की एक तेज़ झलक दिखाई पड़ी थी। उसकी तेज़ी के आगे मेरी आँखें क्षणभर के लिये झँप गयीं थीं। उस रहस्य-पूर्ण क्षण में उस सुन्दरी का जो धुँधला चित्र मेरे हृदय-पटल पर अङ्कित हुआ था वह उसका स्वाभाविक चित्र न था। उस चित्र में युवती के आन्तरिक रूप का आभास देनेवाली उन सूक्ष्म रेखाओं का अभाव था जिन्हें मैं इस चित्र में स्पष्ट अङ्कित देख रहा हूँ। इसकी मदिरा भरी आँखों में छल है, उन्माद है, कामुकता है, और......और है विलास-जनित चञ्चलता! आज मुझे मालूम हुआ कि जिस शोभा पर मेरा मन भूल रहा था वह केवल मृग-मरीचिका थी। उसमें कोई सार न था। रणसिंह! मुझे उस क्षणिक आकर्षण पर आज पश्चात्ताप हो रहा है।" रणसिंह ने उस चित्र को उठा लिया और ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखते हुए कहने लगे—"ओह! इसके हाव-भाव में कितनी कुटिलता भरी हुई है! परन्तु यह चित्र आपके पास कैसे पहुँचा?"

चन्द्रसिंह ने उत्तर दिया--"मैं इस सम्बन्ध में तुमसे कहने ही वाला था। अभी कुछ देर पहले मैं उस सामनेवाली नहर

के किनारे टहल रहा था। सहसा मुझे एक व्यक्ति नहर में बहता हुआ दिखाई दिया। मैंने उसे खींचकर बाहर निकाला। जान पड़ता है वह बहुत दूर से बहता हुआ आ रहा था, क्योंकि उसका शरीर बिलकुल ठंडा पड़ चुका था। मेरे पास उसे होश में लाने का कोई साधन न था तो भी मैंने उसके गीले कपड़े बदलकर उसके पेट का पानी बाहर निकालने के लिए धूप में उल्टा लिटा दिया। कपड़े उतारते समय मुझे उसकी जेब में एक बटुआ मिला। उसी बटुए में कई कपड़ों में लपेटी हुई यह तस्वीर रक्खी थी। बटुए का कपड़ा मोटा होने के कारण तस्वीर अधिक न भीगने पाई थी।"

रणसिंह ने कौतूहल के साथ पूछा—"आपने उसे कहाँ रक्खा है? चलिए देखें शायद उसकी प्राण-रक्षा की जा सके। बटुए में और कोई चीज़ भी थी?"

"चीज़ें तो कई प्रकार की हैं परन्तु अधिकांश में पानी भिद चुका है। जान पड़ता है कि ऐयारी बटुआ है। वह भी वहीं पड़ा है। चलिए शायद आप किसी वस्तु का उपयोग कर सकें।" कहते हुए महाराज चन्द्रसिंह उठ खड़े हुए और रणसिंह को साथ लेकर एक झाड़ी के समीप जा पहुँचे। रणसिंह ने देखा एक व्यक्ति बेसुध पड़ा है। उसके चेहरे पर काली डाढ़ी थी। और सिर पर लम्बी जटा। रणसिंह के मुँह से निकल पड़ा "अरे! यह तो वही संन्यासी है जिसे हमलोगों ने सराय में छोड़ा था।" उन्होंने

उसके श्वास की परीक्षा की। उसके शरीर में क्रमशः चेतना का सञ्चार हो रहा था। उसके पेट का बहुत सा पानी निकल चुका था। रणसिंह ने उसके बटुए से खोज कर दो तीन गोलियाँ निकालीं। नहर से पानी को अंजुलि भर कर उन्होंने गोली घोल ली और इस तरल औषधि के कई बूँद संन्यासी के मुँह में डाल दिए। संन्यासी ने क्षणभर के लिए आँखें खोलीं परन्तु फिर मूँद लीं। रणसिंह दूसरी गोली घोलने लगे। सहसा उनकी दृष्टि संन्यासी की काली दाढ़ी पर पड़ी। उन्होंने देखा कि दाढ़ी के केश कई जगह से नुच गये हैं। इन केशों की जड़ों पर उन्हें किसी प्रकार के मसाले का-सा चिन्ह दिखाई दिया। उन्हें सन्देह होने लगा कि कहीं यह संन्यासी-वेश-धारी कोई ऐयार तो नहीं है? औषधि तैयार कर उन्होंने फिर संन्यासी के मुँह में डाल दी। आँखें खोलकर उसने मन्द स्वर में कहा—"कौन? रणसिंह!" वह फिर बेसुध हो गया। रणसिंह ने इस बार उसके बटुए से खोजकर एक छोटी सी शीशी निकाली। उसमें भरे हुए तरल पदार्थ के कुछ बूँद संन्यासी के चेहरे पर डाल कर वे मलने लगे। कुछ ही देर के परिश्रम के अनन्तर संन्यासी के चेहरे का गहरा रोग़न उतर गया। उसकी दाढ़ी रणसिंह के हाथ में आ गयी। उन्होंने पहिचाना, जिस व्यक्ति को वे अब तक संन्यासी समझे हुए थे वह वास्तव में मेघसिंह थे! महाराज चन्द्रसिंह भी समस्त व्यापार देख रहे थे। मेघसिंह को पहिचान कर दोनों एक दूसरे का मुँह

ताकने लगे। अधिक विलम्ब किए बिना रणसिंह ने ओषधि की तीसरी मात्रा उनके गले के नीचे उतार दी। मेघसिंह आँखें मलते हुए उठ बैठे। सामने ही महाराज चन्द्रसिंह को देखकर उनके आश्चर्य की सीमा न रही। विस्मय-विस्फारित नेत्रों से उनकी ओर ताकते हुए मेघसिंह ने कहा—"हैं, मैं कोई स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ? इतनी देर से मैं कहाँ था?"

रणसिंह ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—"इतनी देर से आप कहाँ थे? इसका हाल तो आप ही बता सकेंगे, परन्तु इस समय आप नवागढ़ के तिलस्म में हैं।"

"ओह! अब कुछ कुछ स्मरण हो रहा है।" मेघसिंह ने माथे पर हाथ रखते हुए कहा—"मुझे भूख लग रही है रणसिंह! क्या मुझे कुछ खाने के लिए दे सकते हो?" पलक मारते महाराज चन्द्रसिंह बँगले से कुछ मेवा और फल उठा लाये। उन्हें खाकर मेघसिंह के शरीर में शक्ति का संचार हो आया। वे उठ खड़े हुए और रणसिंह से पूछने लगे—"आपने मुझे किस अवस्था में पाया?"

रणसिंह ने उत्तर दिया—"महाराज ने आपको इसी नहर में बहते हुए पाया।"

कुछ ठहर कर उन्होंने मुस्कुराते हुए पूछा—"मुझसे अलग होने के बाद आपने कहाँ कहाँ की सैर की और इस नहर में कैसे डुबकी लगाई?"

"मुझे कुछ भी नहीं मालूम ?" मेघसिंह ने आश्चर्य भरे स्वर में कहा—"मैं तो अभी आँखें खोल रहा हूँ। जान पड़ता है कई दिन से भोजन भी नहीं किया। परन्तु आप इस तिलिस्म में कैसे आ फँसे ?"

रणसिंह ने संक्षेप में अपना वृतान्त कह सुनाया। इसके अनन्तर तीनों साधारण परामर्श करते हुए बँगले की ओर अग्रसर हुए।

तेरहवाँ परिच्छेद

पाठकों को यह समझते देर न लगी होगी कि नवागढ़ के उत्तरी वन-प्रान्त में भयकातरा डाली ने शंकरसिंह का साथ छोड़ कर प्रसन्नता पूर्वक जिस नक़ाबपोश के साथ जाना स्वीकार कर लिया था वह और कोई नहीं उसी का प्रेमी सुवर्णकार संन्यासी था।

लगभग तीन चार घण्टों की कठिन यात्रा के बाद संन्यासी चन्द्राकार पर्वत की चढ़ाई को पार करता हुआ उस सघन वन-प्रान्त के एक खुले हुए भाग में आ पहुँचा। उपयुक्त स्थान देख कर संन्यासी ने घोड़े की गति का अवरोध करते हुए कहा—"अब कोई भय की बात नहीं है। कुछ देर यहीं विश्राम कर लें?"

डाली ने सिर हिला कर स्वीकृति दी। उसके अङ्गों में अभी तक पीड़ा बसी हुई थी। दोनों घोड़े से उतर पड़े। विस्मय भरी

चितवन से चारों ओर निहारते हुए डाली ने पूछा—"यह कौन सी जगह है? भानुपुर यहाँ से कितनी दूर है?"

"बिलकुल पास!" संन्यासी ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—"लगभग चार पाँच मील होगा।" डाली का दाहिना हाथ अपने दोनों हाथों में थाम कर एक वृक्ष के नीचे बैठते हुए उसने पूछा—"हाँ, यह तो बताओ कि तुम इन दुष्टों के चंगुल में कैसे फँस गयीं? सुवर्ण-रहस्य का भेद इन लोगों को कैसे मालूम हो गया?"

एक लम्बी साँस लेकर डाली कहने लगी—"मैं स्वयं हैरान हूँ कि इन लोगों को इसकी गन्ध कैसे मिल गयी! पर इन दुष्टों ने मुझे जैसी जैसी यातनाएँ दी हैं उनके स्मरण मात्र से हृदय काँप उठता है...ओह! मनुष्य इतना स्वार्थी हो सकता है!...आज जो प्राणों की दुहाई देकर प्रेम का अभिनय रचता है वही...मैं भी देखूँगी...बता दूँगी नारी कितनी भयङ्कर हो सकती है।"

न जाने कौन सी स्मृतियों ने डाली के मन को क्षण भर के लिए उद्विग्न कर दिया। भावावेश के कारण उसके होंठ फड़कने लगे। संन्यासी उसके प्रलाप को बिलकुल न समझ सका। उसने आश्वासन पूर्ण स्वर में उसे शान्त करते हुए कहा—"इतना रोष न करो डाली! अभी तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है।"

कुछ देर तक मौन रहने के अनन्तर डाली ने पूछा—"अच्छा पहले यह तो बताओ तुम उस जङ्गल में एकाएक कैसे आ पहुँचे? वह पुस्तक तो मेरे हाथ से निकल गयी!"

संन्यासी ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—"परन्तु वह फिर मेरे अधिकार में आ गई है।"

"कैसे ?" डाली ने विस्मय के साथ पूछा।

पिछले कई दिनों की घटनाएँ संक्षेप में सुनाते हुए संन्यासी ने कहा—"मुझे विश्वास था कि भानुपुर से तुम्हारे अकस्मात अन्तर्द्धान होने का कारण वही मधुसूदन होगा। क्योंकि एक तो उससे सुवर्ण रहस्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है दूसरे कुछ ही देर पहले मैं उसे भानुपुर में सेठ दीनदयाल की लड़की चमेली की रक्षा करते हुए देख चुका था। तुम्हें स्मरण होगा उस दिन भानुपुर की अमराई के समीप अपनी श्वेत भवन वाली घटना का हाल सुनाते हुए मैंने तुम्हें बताया था कि डाकू सरदार ने मुझे जिस दस्यु की देख-रेख में छोड़ा था वह मेरा पुराना शत्रु निकला और उसे पहिचानते ही मैं भय के मारे मूर्छित हो गया था।* वास्तव में वह दस्यु यही मधुसूदन था। उस दिन......"

सहसा डाली बोल उठी—"हैं, तब कहना चाहिए..." कुछ ठिठक कर उसने बात बदलते हुए कौतूहल के साथ कहा—"अच्छा फिर ?"

सन्यासी कहने लगा—"और फिर दूसरे ही दिन अनायास डाकुओं के चंगुल से छूटने के बाद झाड़ी के पीछे छिपे छिपे

*देखिए दूसरा भाग सातवाँ परिच्छेद।

मैंने श्वेतभवन के द्वार पर इसी मधुसूदन को अकस्मात् बेसुध होकर औंधा गिरते देखा था।" *

"परन्तु उसका सुवर्ण-रहस्य से क्या सम्बन्ध है?" डाली ने कौतूहल के साथ पूछा।

"यह भी एक लम्बी कहानी है" संन्यासी ने सकुचाते हुए उत्तर दिया "उसे फिर कभी सुन लेना इस समय इतना ही

* पाठकों को स्मरण होगा कि मधुसूदन के इस प्रकार अकस्मात् बेसुध होकर गिरने वाली घटना के बीच बहादुरसिंह का हाथ था (देखिए दूसरा भाग—आठवें परिच्छेद के अन्तिम पृष्ठ) कहने की आवश्यकता नहीं कि बहादुरसिंह ने श्वेतभवन में जिस डाकू को क़ैद किया था वह यही मधुसूदन था। मधुसूदन सन्यासी को धमकाने के लिए एक पत्र लिख कर उसकी जेब में रखना चाहता था परन्तु इसी बीच संन्यासी बहादुरसिंह के कारण मुक्त हो गया और मधुसूदन स्वयं बहादुरसिंह के चंगुल में फँस गया था।

मधुसूदन की तलाशी लेते समय बहादुरसिंह को उसकी जेब में "इन्दुशेखर" के नाम का एक पत्र मिला था (देखिए तीसरा भाग पहला परिच्छेद)। पाठक अब तक समझ चुके होंगे कि इन्दुशेखर वास्तव में इसी रहस्य-पूर्ण संन्यासी का नाम था। इस घटना के अनन्तर बहादुरसिंह स्वयं डाकू सरदार बनकर इसी मधुसूदन के साथ साथ सूखे कुएँ की राह डाकुओं के अड्डे के भीतर गये थे। तथा अंत में इसी मधुसूदन के पीछे पीछे वे श्वेत भवन वाले तालाब में कूदे थे।

बता सकता हूँ कि इस पुस्तक के सम्बन्ध में उससे मेरी काफ़ी नोंक-झोंक हो चुकी है। यह पुस्तक पहले उसी अमूल्य नीले सन्दूक में सुरक्षित थी जिस की चर्चा तुम सुन चुकी हो और जिसका मेरे जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। और वास्तव में वह अद्भुत सन्दूक इसी मधुसूदन की ही सम्पत्ति थी...”

डाली ने बीच में टोंक कर पूछा—“पर वह नीला सन्दूक अब किसके अधिकार में है ?”

संन्यासी ने शून्य दृष्टि से आकाश की ओर ताकते हुए उत्तर दिया—“इस समय उसका स्मरण न दिलाओ डाली ! सच तो यह है कि मैं स्वयं नहीं जानता। मूर्ख मधुसूदन शायद आज तक नहीं जानता कि उसके अन्दर कैसी कैसी अद्भुत सामग्रियाँ सुरक्षित थीं। कुछ दिन के लिए वह मेरे हाथ लगा था। उसमें से केवल “सुवर्ण-रहस्य” ही निकाल सका था कि वह मेरे हाथ से निकल गया ! अस्तु—

उस दिन भानुपुर में तुम्हें न पाकर मुझे पिछली घटनाओं का स्मरण हो आया। मैं जानता था कि मधुसूदन की मन्मथ-सिंह से गहरी घनिष्ठता है। दोनों ही इस पुस्तक को मुझसे हथियाने की चिन्ता में थे। अतएव मैंने अनुमान किया कि पुस्तक यदि मधुसूदन के हाथ लगी होगी तो यह दुष्ट मन्मथ-सिंह को अपनी सफलता का संवाद सुनाने के लिए नवागढ़ अवश्य जायगा। इसीलिए उसका अनुसन्धान करता हुआ मैं

भी नवागढ़ तक जा पहुँचा। मेरा अनुमान ठीक निकला। मैंने मधुसूदन को दो एक बार नवागढ़ के आस-पास चक्कर काटते देखा। परन्तु उसके पास से पुस्तक हथियाना सहज तो न था। दो-तीन दिन तक लगातार मैं इसी उधेड़-बुन में पड़ा रहा।"

इसके अनन्तर संक्षेप में सराय वाली घटना का हाल सुनाते हुए उसने कहा—"मन्मथसिंह और सुजनसिंह के चंगुल से निकल कर मैं रात और दिन भर निरुद्देश नवागढ़ में घूमता रहा। दूसरी रात मैं कुछ हताश-सा होकर नवागढ़ के पश्चिमी भाग में टहल ही रहा था कि सहसा दो व्यक्ति परस्पर बात-चीत करते हुए पश्चिमी पहाड़ी की ओर जाते दिखाई दिये। कौतूहलवश मैं उनका अनुसरण करने लगा। मैंने पहिचाना उनमें से एक मेरा पुराना प्रतिद्वन्दी मेघसिंह था और दूसरे मीलूगढ़-नरेश महाराज चन्द्र सिंह के अन्तरङ्ग मित्र रणसिंह थे। उन लोगों की बात-चीत से मुझे मालूम हुआ कि नवागढ़ की रानी विलासिनी मेनका ने अपनी कुप्रवृत्तियों से प्रेरित होकर महाराज चन्द्रसिंह को कर्मागढ़-संग्राम के बाद सैनिक शिविर से अपने महल में उठवा मँगाया है। उन्हीं की खोज में वे लोग नवागढ़ आए हुए थे। मुझे यह भी मालूम हुआ कि मीलूगढ़-नरेश दीयागढ़ की राज-कुमारी पर आसक्त हैं। महाराज चन्द्रसिंह को चन्द्रावती की ओर से सदा के लिए निराश कर देने के उद्देश से मेनकारानी ने उन्हें भी किसी प्रकार अपने अधिकार में कर लिया है। उन लोगों

की बातें सुन कर सहसा मुझे एक विचित्र उपाय सूझ पड़ा। मैंने विचार किया कि मेनका रानी ने इस भेद को अपने वर्त्तमान प्रेमी मन्मथसिंह से ज़रूर छिपाया होगा। यदि किसी प्रकार यह भेद उन्हें बता दिया जाय तो वे अवश्य महाराज चन्द्रसिंह को मेनका रानी से दूर हटा देने के लिए व्याकुल हो उठेंगे। मैंने यह भी अनुमान किया कि मेनका रानी ने चन्द्रसिंह को तिलिस्म के किसी ऐसे भाग में ही रक्खा होगा जहाँ मन्मथसिंह की पहुँच नहीं है। 'सुवर्ण-रहस्य' में कुछ अद्भुत तिलस्मी राहों का हाल भी लिखा हुआ है। और सच तो यह है कि मधुसूदन और मन्मथ-सिंह उसे अब तक केवल "अलकापुरी" नामक तिलस्म का एक भूगोल अथवा तिलस्म की प्रवेशिका या कुञ्जी मात्र समझते हैं। पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है। तिलस्म की असली कुञ्जी तो नीले संदूक़ में ही बन्द रह गयी है। सुवर्ण-रहस्य में तो केवल "अलकापुरी" की सैर करने वालों के लिए प्रसङ्ग वश कुछ राहों का भेद बता दिया गया है। जो हो, मैं भली भाँति जानता था कि वे लोग अब तक उस पुस्तक का एक अक्षर भी न समझ सके होंगे। मैंने सोचा यदि अपना सच्चा परिचय दिए बिना मैं किसी प्रकार उन्हें यह जना सकूँ कि सुवर्ण-रहस्य की साङ्केतिक लिपि को मैं समझता हूँ तो स्वभावतः वे उस लिपि को समझाने के लिए मुझसे आग्रह करने लगेंगे। ऐसी अवस्था में कम से कम कुछ देर के लिए पुस्तक उन्हें मेरे हाथ में देनी पड़ेगी।

इसी तर्क-प्रणाली का अनुसरण करता हुआ मैं बहुत दूर तक की बातें सोच गया। मैंने देखा इस षड्यन्त्र में मुझे रणसिंह और मेघसिंह की भी आवश्यकता पड़ेगी। अधिक विलम्ब करना उचित न समझ, एक गोले की सहायता से मैंने दोनों को अपने अधिकार में कर लिया। इसके अनन्तर बड़ी देर तक मैं भविष्य कार्य-क्रम पर विचार करता रहा। सघन अन्धकार के बीच मानों मुझे उज्ज्वल किरण की एक रेखा दिखाई दी। मेरे आनन्द की सीमा न रही। मुझे ऐसी राह सूझ गयी जिस पर चलने से सफलता निश्चित-सी थी। मैंने मेघसिंह को रङ्ग कर अपने रूप में परिणत कर दिया और रणसिंह को चन्द्रसिंह बना डाला।* तिलस्म के अपने जाने हुए एक भाग में चन्द्रसिंह रूपी रणसिंह को ले जाकर मैं गहरी नींद में सुला आया। इसके बाद मेघसिंह को लिए हुए मन्मथसिंह के मकान के समीप जा पहुँचा। मैंने देखा मन्मथसिंह अपने मकान से निकल कर सराय की ओर अग्रसर हो रहे थे। कुछ आगे बढ़ कर मैंने मेघसिंह को राह पर लिटा दिया। मन्मथसिंह की दृष्टि बेसुध मेघसिंह पर पड़ी। मेरे धोखे उसे उठा कर वे नवागढ़ के पश्चिमी पर्वत की ओर लपके। ...”

डाली ने बीच में टोक कर पूछा—“मेघसिंह को अपने रूप में रंग कर उन्हें इस प्रकार मन्मथसिंह के चंगुल में फँसा देने से क्या लाभ था ?”

---

* देखिए तीसरा भाग नवाँ परिच्छेद

संन्यासी कहने लगा—"ऐसा करने में मेरा उद्देश यह था कि मन्मथसिंह मुझे अधिकार में आया समझ कर मेरी ओर से निश्चिन्त हो जायँ। मैंने चुपचाप मन्मथसिंह का अनुसरण किया। पर्वत-शिखर पर सघन तरु समूहों से मुँदी हुई एक कुटी के भीतर जाकर मन्मथसिंह अन्तर्द्धान हो गये। मैं उत्सुकता के साथ उनकी प्रतीक्षा करने लगा। लगभग घंटा भर बाद वे खाली हाथ लौट आए और धीरे धीरे नवागढ़ की ओर अग्रसर हुए। मैंने देखा पहाड़ी के नीचे ठहर कर वे किसी से बात-चीत करने लगे। मैं सावधानी के साथ छिप कर उनकी बातें सुनने लगा। बातों से मालूम हुआ कि वह व्यक्ति और कोई नहीं, वही दुष्ट मधुसूदन था जो कि पहले ही से वहाँ खड़ा उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। मैंने सुना वे लोग चन्द्रसिंह के ही सम्बन्ध में बात-चीत कर रहे थे। उपयुक्त अवसर देख कर अपना वास्तविक परिचय दिए बिना मैं सहसा उन लोगों के सामने प्रकट हो गया। इस समय मेरे चेहरे पर नक़ाब थी और मेरा सारा शरीर एक काले लबादे से ढका हुआ था। मैंने परिस्थिति से पूरा लाभ उठाया। मैंने उन्हें चन्द्रसिंह-सम्बन्धी भेद बता देने का वचन दिया और बदले में उस टेकड़ी पर प्रायः प्रकट होने वाले वृद्ध साधू को क़ैद करने में उनकी सहायता माँगी।..."

डाली ने कौतूहल के साथ पूछा—"वह वृद्ध साधू कौन है? और तुम उसे क्यों..."

संन्यासी ने हँसते हुए कहा—"वास्तव में यह भी मेरी एक चाल थी। वह साधू कौन है? यह तो मैं भी नहीं जानता। हाँ इतना जरूर स्मरण आता है कि दो एक साल पहले मैंने उसे कहीं देखा था। पर उसे क़ैद करने की इच्छा मैंने केवल उन लोगों को भुलावे में डालने के लिए प्रकट की थी। निःस्वार्थ भाव से यदि मैं उनकी सहायता करने के लिए उत्सुकता प्रकट करता तो शायद वे मुझ पर सन्देह करने लगते। इसलिए मैंने एक कल्पित स्वार्थ का सहारा लिया। और अपनी बातों में उन्हें ऐसा उलझाया कि विवश होकर उन्हें पुस्तक मेरे हाथ में देनी पड़ी। कुछ देर तक मैं पुस्तक पढ़ने का अभिनय-सा करता रहा। इसके बाद उन्हें भुलावा देने के लिए, मानों हर्ष और उत्साह के मारे, नाचने लगा। इसी समय उनकी आँखों में धूल झोंक कर मैंने पुस्तक के कई महत्व पूर्ण पन्ने फाड़ लिए और सारहीन पुस्तक उन्हें लौटा दी।* अभी मुझे तुम्हारा भी पता लगाना था। अतएव उन पर विश्वास जमाने के लिए उन्हें तिलस्म के उसी भाग में लिवा ले गया जहाँ मैंने रणसिंह को सुलाया था। और चंन्द्रसिंह रूपी रणसिंह को वहाँ से निकाल कर उन्हें सौंप दिया। अब उन्होंने कुमारी चंद्रावती को भी निकालने के लिए मुझसे आग्रह किया। मैं चक्कर में पड़ गया। मुझे एक नयी चाल सूझ गयी। मैंने एक

*तीसरा भाग ग्यारहवाँ परिच्छेद।

वार फिर पुस्तक उनके हाथ से लेली और कुछ देर तक उसे उलटने-पलटने के बाद मैंने एकाएक उसके फटे हुए पन्ने उन्हें दिखाते हुए आश्चर्य पूर्ण मुद्रा में कहा—देखिए, इस जगह से इस पुस्तक के कई महत्वपूर्ण पन्ने ग़ायब हैं। उन पन्नों की सहायता के विना तो पाताल कूप तक पहुँचना असंभव है। मेरी बात सुन कर उनका मुँह सूख गया।" संक्षेप में संपूर्ण प्रसंग सुनाते हुए संन्यासी ने कहा—"अन्त में चन्द्रसिंह को मीलूगढ़ पहुँचाने का भार भी उन्होंने मुझे ही सौंपा। मुझे एक दिल्लगी सूझी। मन्मथसिंह के हाथ का लिखा हुआ पत्र चन्द्रसिंह रूपी रणसिंह की जेव में रख कर मैं उन्हें अचेतावस्था में ही मेनका रानी के हीरा बाग़ में छोड़ आया। और सबेरा होते होते उसी उत्तर ओर वाले वन-प्रान्त में पहुँच कर नहर के किनारे टहलता हुआ मन्मथसिंह की बाट जोहने लगा। सहसा मुझे सामने से एक व्यक्ति जाता हुआ दिखाई दिया। कौतूहल वश मैं भी उसके पीछे पीछे चला। एक शिलाखंड के समीप जाकर वह अन्तर्द्धान हो गया। पास जाकर मैंने देखा एक गोल गड्ढा-सा था। उसमें नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी थीं। मैं भी नीचे उतर गया। लगभग दस बारह डण्डे उतरने के बाद बाईं ओर ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ मिलीं। सीढ़ियाँ चढ़कर मैं एक गोल कमरे में जा पहुँचा। वह व्यक्ति द्वार की ओर पीठ किए इसी कमरे में खड़ा था। पलक मारते मैंने उसे अपने

अधिकार में कर लिया। इसके बाद कमरे का निरीक्षण करने लगा। एक कोने में चादर से ढके, मेरा रूप धारण किए हुए, मेघसिंह पड़े सो रहे थे। मैं समझ गया कि मन्मथसिंह का गुप्त अड्डा यही है। मैंने सोचा वह व्यक्ति शायद मन्मथसिंह का वही अनुचर हो जिसकी चर्चा उन्होंने रात में मुझसे की थी और शायद उनके आदेशानुसार तुम्हें भानुपुर पहुँचाने के उद्देश से ही वह यहाँ आया हो। परन्तु तुम्हें वहाँ न पाकर मुझे आश्चर्य हुआ। फिर मैंने विचार किया शायद मन्मथसिंह सुवर्ण-रहस्य के पन्नों का भेद पूछने के लिए तुम्हें किसी दूसरी जगह उठा ले गए हों। अनेक प्रकार की कल्पनाओं में डूबा हुआ मैं बेसुध व्यक्ति को लेकर नीचे उतर आया। सामने एक सुरंग थी। मैं सुरंग के भीतर कुछ दूर तक चला गया। और उसे यत्नपूर्वक एक जगह छिपा कर चुपचाप टहलने लगा। कुछ देर बाद मन्मथसिंह और मधुसूदन घबराए हुए नीचे उतरते दिखाई दिए। वे लोग परस्पर बात-चीत करते हुए गोल कमरे में जा पहुँचे।

मैं सीढ़ियों में छिप कर उनकी बातें सुनने लगा। उनकी बातों से मुझे मालूम हुआ कि वे लोग तुम्हें उसी वन-प्रान्त में किसी वृक्ष से लटकती हुई छोड़ आए हैं। अवसर पाकर मैंने अकस्मात् उन पर आक्रमण कर दिया।"

इसके अनन्तर 'सुवर्ण-रहस्य' हस्तगत करने आदि का वृत्तान्त सुनाते हुए उसने कहा— "मेघसिंह मेरा पुराना शत्रु था

अतएव उसे नहर में वहा कर मैं सदा के लिए निश्चिन्त हो गया। अब मुझे तुम्हारी चिन्ता हुई। तुम्हें खोजता हुआ मैं पूर्व दिशा की ओर अग्रसर हुआ। मार्ग में मुझे एक अश्वारोही दिखाई दिया। मैंने एक गोला उसके सामने पटक दिया, वह बेसुध होकर गिर पड़ा। समीप जाकर मैंने पहिचाना वह वास्तव में उसी शंकरसिंह का साथी था जिसके पास मैंने तुम्हें पाया था। उसका नाम उग्रनाथ है। उसकी जेब में रक्खे हुए एक पत्र से मुझे मालूम हो गया कि उसे हम लोगों के झगड़े से कोई मतलब नहीं है अतएव उसे वहीं छोड़ कर मैं आगे बढ़ा। कुछ देर तक इधर-उधर खोजते रहने के बाद मुझे तुम्हारी आवाज़..."

डाली ने बीच में टोंक कर पूछा—"परन्तु ये शंकरसिंह और उग्रनाथ हैं कौन ?"

संन्यासी ने कुछ उपेक्षा का-सा भाव प्रकट करते हुए उत्तर दिया—"होंगे कोई ! हमें उनसे कोई वास्ता नहीं।" कुछ ठहर कर वह बोला, "हाँ, तुम ज़रा शान्त होकर अपना हाल तो सुना जाओ। 'सुवर्ण-रहस्य' की भनक इन लोगों के कानों में कैसे पड़ी ?"

डाली ने एक लंबी साँस लेकर उत्तर दिया—"मैं स्वयं नहीं जानती ! सुवर्ण-रहस्य को मैं सदा अपने पास रखती थी। उस दिन कर्मागढ़ से चमेली के आगमन का समाचार सुन कर मैं उससे मिलने के लिए सेठ दीनदयाल के घर की ओर जा रही

थी। उसी समय एक गली में दुष्ट मधुसूदन खड़ा दिखाई दिया। मैं उसे पहले से पहि..." कहते कहते वह ठिठक गई। फिर बात बदलती हुई बोली—"मुझे देखते ही वह झपट कर मेरे पास आ पहुँचा और बरबस मुझे उसने एक दुर्गन्धिपूर्ण औषधि सुँघा दी। मैं बेसुध होकर गिर पड़ी। उसके बाद नहीं जानती, क्या हुआ!"

संन्यासी ने पूछा—"पर अभी तुम क्या कहती कहती रुक गयीं?"

डाली कई क्षणों तक मौन रही। मानों वह कुछ कहना चाहती थी परन्तु कहने का साहस न होता था। संन्यासी उसके चेहरे के चढ़ाव और उतार को ध्यानपूर्वक लक्ष्य कर रहा था। सहसा मानों अपनी सारी शक्ति बटोर कर शून्य दृष्टि से दाहिने हाथ वाली एक वनलता की ओर ताकती हुई वह कुछ भरे हुए स्वर में कहने लगी—"अब मैं तुमसे कुछ न छिपाऊँगी। उस दुष्ट से मैं इस अपमान का बदला लूँगी और तुम्हें मेरी सहायता करनी होगी।"

क्षण भर ठहर कर बोली—"तुम्हें मालूम नहीं है मेरा घर मीलूगढ़-राज्य के अन्तर्गत केलो नदी के किनारे एक छोटे से गाँव में है। मधुसूदन भी उसी गाँव का रहने वाला है। कुछ दिन पहले मेरा उससे..." कहते कहते उसका मुँह लज्जा से लाल हो गया। उसका सिर झुक गया। वह वाक्य पूरा न कर सकी। तो भी उसने अनुभव किया मानों वह सब कुछ कह गयी।

जिस भेद को प्रकट करते, क्षण भर पहले, वह लज्जा और भय से गड़ी जा रही थी उसके इस प्रकार प्रकाशित होते ही मानों वह कुछ ढीठ हो गयी। कनखियों से एक बार संन्यासी के चेहरे की ओर देखने के बाद वह बोली—

"इसी मधुसूदन से मुझे नीले सन्दूक़ का कुछ हाल मालूम हुआ था। मैं नहीं जानती कि इधर वह डाकू-दल में कब से जा मिला परन्तु अभी थोड़े दिन हुए वही मुझे भानुपुर से श्वेत भवन वाले अड्डे में उठा ले गया था। इस घटना का हाल उस दिन मैंने तुम्हें बताया था परन्तु असली भेद छिपा लिया था। मधुसूदन ने मुझे बाक़ी डाकुओं की निगाह से हटा कर रक्खा था। उसकी इच्छा थी कि मैं सदा उसके साथ श्वेत भवन में रहूँ परतु मुझे उस निर्जन वन में भय लगता था। मेरे भाग्य से दीयागढ़ के बहादुरसिंह उस ओर आ निकले और उन्होंने उस विपत्ति से मेरा उद्धार किया।* इस घटना के बाद दुष्ट मधुसूदन फिर उसी दिन भानुपुर में दिखाई दिया। इस संबंध में एक विचित्र बात मुझे एक विश्वस्त सूत्र से मालूम हुई है। इधर कई महीनों से इस दुष्ट ने सेठ दीनदयाल की लड़की चमेली पर भी निगाह डाली है। जहाँ तक मैं जानती हूँ चमेली भी इस पर आसक्त है। चमेली के विवाह के पहले ही से दोनों का यह प्रेम-अभिनय चल रहा है। मैं समझती हूँ उस

* देखिए पहिला भाग आठवाँ परिच्छेद।

दिन चमेली के आने की सूचना पाकर ही वह भानुपुर गया था।"

पाठक चमेली की विवाह से पहले वाली प्रेम-वार्ता पढ़ चुके हैं तथा विक्रमसिंह को उसके प्रेमी माधव के रूप में उसके साथ प्रेमालाप करते भी देख चुके हैं।* कहना न होगा कि माधव वास्तव में यही मधुसूदन था।

डाली की बात सुन कर संन्यासी के होंठ क्रोध से फड़कने लगे। उसने आवेश के साथ कहा--"ओह, यदि मैं पहले से इस बात को जानता तो वहीं सुरंग के भीतर उसे समाप्त कर देता। ख़ैर देखता हूँ अब वह मेरे वार को कैसे सँभालता है!"

* देखिए पहला भाग चौथा परिच्छेद।

चौदहवाँ परिच्छेद

अनेक सखियों तथा दासियों से रात-दिन परिवेष्ठित रहने वाली राजदुलारी चन्द्रावती आज विषाद की साक्षात् प्रतिमा-सी बनी तिलस्म के एक निराले कमरे में अपनी विपत्ति की घड़ियाँ गिनती हुई चुप-चाप सिर झुकाए अकेली बैठी है। वह नहीं जानती कि वह यहाँ क्यों लाई गई है। ललिता उसे प्रति दिन समय पर भोजन पहुँचा जाती है। उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने दिया जाता तो भी वह क्यों एक क़ैदी की भाँति इस कारावास में रक्खी जा रही है? उसकी समझ में न आता था। अभी उस दिन वह अपनी प्यारी इन्दु के साथ जी भर बातें भी न कर सकी थी कि सहसा इस निठुरता के साथ वह अपने प्रिय-जनों से दूर हटा ली गई! उसने समझा था कि इन्दुमती के उद्धार के साथ ही उसकी विपत्तियों का अन्त हो गया। उसका हृदय उस दिन कुछ हलका

हो गया था। कितने ही दिनों की खोई हुई मन्द मुस्कान उसके होठों पर उस दिन आ विराजी थी। परन्तु इन्दु के साथ अपने उपवन विहार की सुखद कल्पना का वह जी भर आनंद भी न ले पायी थी कि सहसा इस अज्ञात कारागार में पहुँचा दी गयी। संन्ध्या होने में अधिक विलम्ब न था। अनेक प्रकार की चिन्ताओं में डूबी हुई वह एक पलँग पर बैठी अपने भाग्य पर आँसू बहा रही थी। सामने ही संगमर्मर के एक चबूतरे पर एक श्वेत परी अपने दोनों पंख फैलाए एक पाँव के सहारे मानों उड़ जाने के लिए उद्यत खड़ी थी। चन्द्रावती रह रह कर इस परी की ओर देखने लगती थी। सहसा परी ने अपना दूसरा पाँव भी चबूतरे पर रख दिया। चन्द्रावती कुछ सावधान हो गयी। पर इस घटना को देख कर उसे तनिक भी आश्चर्य न हुआ। शायद यह व्यापार वह पहले भी देख चुकी थी। उसने देखा, कुछ ही क्षणों के अनन्तर परी समूचे चबूतरे सहित पृथ्वी से लगभग हाथ भर ऊँची उठ कर दाहिनी ओर हट गयी। चबूतरे के स्थान पर एक छोटा सा द्वार निकल आया। साथ ही भू-गर्भ से एक पुरुष निकलता हुआ दिखाई दिया। राजकुमारी शायद इस पुरुष की प्रतीक्षा ही कर रही थीं। धीरे-धीरे उस पुरुष ने द्वार की राह बाहर निकल कर कमरे में प्रवेश किया। दूसरे ही क्षण परी समूचे चबूतरे सहित उड़ कर पहले की भाँति अपने स्थान पर जा बैठी।

उस पुरुष ने कमरे में प्रवेश करते ही राजकुमारी को सम्मान पूर्वक प्रणाम किया। राजकुमारी चंद्रावती ने मुस्कुराते हुए कहा—"कल कहाँ रहे शिवसिंह ? मैं तो तुम्हारी राह देखती रही।"

शिवसिंह ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया—"कल ठीक इसी समय वही अद्भुत साधू आ गया। उसी के साथ बातें करते करते देर हो गयी ...।"

"कोई नई बात ?" चन्द्रावती ने कौतूहल के साथ पूछा।

"जी हाँ !" शिवसिंह ने सिर हिलाते हुए उत्तर दिया—"साधू के कहने से मालूम हुआ कि मेघसिंह और रणसिंह भी कल इसी तिलस्म में आ फँसे हैं !"

"मेघसिंह और रणसिंह ?" चंद्रावती ने आश्चर्य के साथ पूछा वे लोग यहाँ कैसे आ पहुँचे ?"

"पूरा हाल तो अभी उन्हें भी नहीं मालूम" शिवसिंह ने कहा "हाँ, इतना जरूर कहते थे कि दोनों इस समय महाराज चंद्रसिंह के ही साथ हैं।"

एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए चन्द्रावती ने कहा—"न जाने अभी कितने दिन तक......।"

शिवसिंह ने आश्वासन-पूर्ण स्वर में कहा—"धीरज धरिये, कुमारी ! दुष्टों को एक न एक दिन दण्ड मिलेगा ही। अभी बहादुरसिंह तो बाहर ही हैं। मुझे उनकी शक्ति पर पूरा विश्वास है। और वह साधू......।"

चन्द्रावती कहने लगी—"वह साधू भी एक अद्भुत पहेली है। आश्चर्य है कि वह यहाँ आने-जाने की राह जानता हुआ भी हम लोगों को यहाँ से निकलने में सहायता नहीं कर सकता।"

शिवसिंह ने कहा—"वही तो! इसी से तो मुझे उस पर कुछ सन्देह करने की इच्छा सी होती है।"

चन्द्रावती ने विरोध करते हुए कहा—"परन्तु अभी तक वह बराबर हम लोगों के साथ कुछ न कुछ उपकार ही करता रहा है इसलिए उस पर अविश्वास कैसे किया जाय?"

शिवसिंह कहने लगे—"फिर भी यह तो निश्चित ही है कि उसे बाहर आने-जाने की राहें मालूम हैं। वह स्वयं उन्हीं राहों से होकर आता-जाता है। तब हम लोग उन्हीं राहों से होकर बाहर क्यों नहीं निकल सकते?"

चन्द्रावती ने उनकी बात का कोई उत्तर न दिया। कुछ ठहर कर उन्होंने कहा—"मेरी तो इच्छा होती है कि यदि आपका आदेश पाऊँ तो एक बार बरबस उसके साथ बाहर निकलने का प्रयत्न करूँ।"

चन्द्रावती ने कुछ गम्भीर होकर कहा—"मुझे तो विश्वास है कि उसने कुछ सोच समझ कर ही हम लोगों को धैर्य धारण करने का आदेश दिया होगा। उसकी इच्छा के विपरीत चल कर सम्भव है तुम किसी नई विपत्ति में फँस जाओ और उस अवस्था में मैं यहाँ बिलकुल अकेली रह जाऊँगी।"

शिवसिंह विचार में पड़ गये।

पाठकों को स्मरण होगा कि मेनकारानी के आदेशानुसार सुजनसिंह ने मीलूगढ़ के ऐयार शिवसिंह को कर्मागढ़ जाते समय मार्ग में ही गिरफ़ार कर लिया था* उस समय से शिवसिंह मेनका रानी के ही अधिकार में हैं। मेनका रानी ने पहले तो उन्हें नवागढ़ से कुछ दूर पर एक गुप्त घाटी में क़ैद रक्खा, परन्तु महाराज चन्द्रसिंह के गिरफ़ार हो जाने के बाद उसने इन्हें भी घाटी से हटा कर तिलस्म के एक एकान्त भाग में क़ैद कर दिया। हमारा वही रहस्यपूर्ण साधू समय-समय पर तिलस्म के इन क़ैदियों को आश्वासन देता रहता है। राजकुमारी चन्द्रावती को धीरज बँधाने के लिए उसने शिवसिंह को यहाँ तक आने की राह बता दी थी। शिवसिंह उसी परी वाले चबूतरे की राह आकर समय समय पर राजकुमारी को दिलासा देते रहते थे। परन्तु उसकी समझ में न आता था कि साधू उन्हें अपने साथ बाहर ले चलने के लिए क्यों नहीं राज़ी होता? उनका स्वभाव चञ्चल था। अपनी विवशता पर सन्तोष किए अधिक दिन तक अकर्मण्य पड़े रहना उन्हें सह्य न था। आज अवसर पाकर उन्होंने अपने मनोभावों को राजकुमारी के सामने प्रकट कर ही दिया। वे किसी प्रकार तिलस्म से बाहर निकलने के लिए व्याकुल हो रहे थे। चद्रावती के उत्तर से उनके हृदय को सन्तोष न हुआ।

---

* देखिए पहला भाग बारहवाँ और तेरहवाँ परिच्छेद।

परन्तु वे राजकुमारी का स्पष्ट विरोध करने का साहस न कर सके। वे सोचने लगे, विपत्ति की आशंका राजकुमारी के लिए स्वाभाविक ही है। परन्तु मैं उसकी चिन्ता क्यों करूँ ? आख़िर कब तक धैर्य धारण किया जाय ? एक बार प्रयत्न कर देखने में क्या हानि है ? जिस राह से एक व्यक्ति बाहर जा सकता है उसी से दूसरा न निकल सके, यह बात तो समझ में नहीं आती। उन्होंने मन ही मन संकल्प किया—कुछ भी हो एक बार उसका अनुसरण अवश्य करूँगा। उन्हें विचार में पड़ा हुआ देख कर राजकुमारी चन्द्रावती अभी कुछ कहना ही चाहती थी कि सहसा श्वेत परी फिर पहले की भाँति अपने स्थान से हटती हुई दिखाई दी। दोनों कौतूहल के साथ उसी ओर ताकने लगे। क्षण भर बाद वही वृद्ध साधू निकलता दिखाई दिया। शिवसिंह को देख कर उसने मुस्कुराते हुए कहा—"आप यहीं हैं शिवसिंह जी ! मैं तो आप की तरफ़ गया था। इधर नवागढ़ में मेनकारानी और मन्मथसिंह के परस्पर दाँव-पेंच चल रहे हैं। इसलिये मेनका रानी..."

शिवसिंह ने बीच में ही टोंकते हुए पूछा—"मन्मथ सिंह और मेनकारानी में दाँव पेंच ?"

"हाँ हाँ, दाँव-पेंच" साधू ने निश्चयात्मक स्वर में कहा—"जान पड़ता है कि मन्मथसिंह को मेनकारानी की करतूतों का पता चल गया है और वे किसी प्रकार महाराज चन्द्रसिंह

को मुक्त कर देने के लिए व्याकुल हो रहे हैं। जो हो मेनकारानी अब आप लोगों की ओर से और भी अधिक सतर्क हो गयी है। इसलिए आप लोगों को भी सावधान रहना चाहिए। सम्भव है वह आप लोगों को यहाँ से हटा कर किसी दूसरी जगह रखने की व्यवस्था करे।"

शिवसिंह ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"तब तो हमारे शत्रुओं की इस पारस्परिक नोंक-झोंक में सम्भव है महाराज चन्द्रसिंह को अनायास ही मुक्ति मिल जाय!"

साधू ने हँसते हुए उत्तर दिया—"समस्या इतनी सहज नहीं है शिवसिंह जी! उनके समीप तो अभी तक मैं भी नहीं पहुँच सका। दूर से ही उनसे मिल कर मुझे सन्तोष करना पड़ता है। फिर मन्मथसिंह की तो आप लोगों के पास तक भी पहुँच नहीं है।"

शिवसिंह ने कुछ उदास होकर कहा—"आप भी तो हम लोगों की सहायता नहीं करते। न जाने कितने दिन तक इस कारागार में रहना पड़ेगा।"

साधू ने कुछ गम्भीर होकर कहा—"आप इतने अधीर क्यों होते हैं शिवसिंह जी? समय आने पर सब हो जायगा। मैं अवसर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। जल्दबाज़ी करना अच्छा नहीं। यह तिलस्म है। थोड़ी सी भी असावधानी हो जाने से लेने के देने पड़ जायँगे।"

शिवसिंह ने कुछ तीव्र स्वर में कहा—"आप देख रहे हैं हमारे सभी सहायक क्रमशः इसी गोरखधन्धे में फँसते जा रहे हैं, आप न जाने कब तक अवसर की प्रतीक्षा करते रहेंगे। तब तक..."

साधू ने मुस्कुराते हुए कहा—"शान्त हो शिवसिंह! तुम्हारा सब से बड़ा सहायक ईश्वर है। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ, वह इस गोरखधन्धे में कभी न फँसेगा। अभी..."

शिवसिंह अधीर होकर बोल उठे—"ईश्वर के भरोसे बैठ रहना अकर्मण्यता है। मेरा तो जी ऊब गया है। मैं तो अब अधिक समय तक चुप नहीं बैठ सकता।"

साधू ने देखा शिवसिंह की बातों में दृढ़ता थी, संकल्प था। वह चिन्ता में पड़ गया। कुछ ठहर कर उसने कहा—"इतनी चञ्चलता अच्छी नहीं है शिवसिंह! मैं फिर कहता हूँ बहुत सोच-समझ कर काम करना। मेनकारानी साधारण स्त्री नहीं है। मैं चाहूँ तो अकेले तुम्हें बाहर ले भी जा सकता हूँ। परन्तु रास्ता विपत्ति से ख़ाली नहीं है। फिर उस राह से कुमारी का जाना तो नितान्त असम्भव है। अवसर आते ही मैं अपनी ओर से कुछ उठा न रक्खूँगा।"

शिवसिंह ने कोई उत्तर न दिया। उनकी मुखाकृति से साधू ने समझ लिया कि उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। एक बार फिर उसने गम्भीरतापूर्वक कहा—"सावधान, शिवसिंह कोई उच्छृङ्ख-

लता न कर बैठना। यह तिलस्म है। देर हो रही है। ललिता आती होगी। मैं जाता हूँ, तुम भी जाओ।" कहता हुआ वह सामने वाले द्वार की राह कमरे से बाहर हुआ। शिवसिंह ने भी चन्द्रावती की ओर देखते हुए नम्रता पूर्वक कहा—"मुझे भी आज्ञा दें कुमारी!" चन्द्रावती ने सिर हिला दिया।

शिवसिंह ने चपल गति के साथ साधू का अनुसरण किया। चन्द्रावती ने पुकार कर कहा—"उधर कहाँ जाते हो शिवसिंह?" शिवसिंह ने उत्तर न दिया। साधू की बातें उन्हें असंगत जान पड़ती थीं। न जाने क्यों, उन्हें उसपर कुछ सन्देह-सा होने लगा था। उसके उपदेश का उन पर कोई प्रभाव न पड़ा। उन्होंने विचार किया यदि सचमुच यह हम लोगों का कोई शक्तिशाली सहायक है तो विपत्ति का कोई भय नहीं। और यदि इसके मन में कोई कपट है तो भेद खुलते देर न लगेगी। चारों ओर अंधकार का साम्राज्य स्थापित हो चुका था। शिवसिंह सावधानी के साथ वृद्ध साधू का अनुसरण करते हुए चार पाँच बड़े बड़े कमरों को पार करने के बाद एक उद्यान में आ पहुँचे। उद्यान के बीचोंबीच संगमर्मर का एक चौकोर चबूतरा बना हुआ था। साधू चबूतरे पर बैठ कर कुछ चिन्तन करने लगा। शिवसिंह एक कुञ्ज के पीछे छिप कर चुपचाप उसकी गति विधि का निरीक्षण करने लगे। सहसा उनकी दृष्टि दाहिनी ओर टिमटिमाते हुए एक दीपक पर पड़ी। वे कौतूहल के साथ दबे

पाँव उसी ओर अग्रसर हुए। दीपक प्रतिक्षण दूर हटता जा रहा था। उन्होंने देखा एक बालिका दाहिने हाथ में दीपक लिए हुए पूर्व-दिशा की ओर मन्द गति के साथ चली जा रही थी। साधू का ध्यान शायद इस तरफ़ नहीं गया। अथवा सम्भव है उसने इस घटना को कोई महत्व न दिया हो। अस्तु—

एक छोटे से कमरे को पार करने के अनन्तर बालिका ने एक सुरंग के भीतर प्रवेश किया। सुरंग अधिक लम्बी न थी। लगभग पाव घंटे के बाद उसका अनुसरण करते हुए शिवसिंह एक नहर के किनारे आ पहुँचे। उन्होंने देखा बालिका नहर के किनारे किनारे प्रवाह-दिशा में बढ़ती हुई एक ऊँची दीवार के समीप जा पहुँची। नहर इस दीवार के नीचे जाकर अन्तर्द्धान हो गयी थी। बालिका ने दीवार के समीप पहुँच कर दीपक को साव-धानी के साथ नहर में बहा दिया। कुछ ही क्षणों के अनंतर दीवार के उस पार से एक आवाज़ आई "आ गयी बेटी? अच्छी तो है?" शिवसिंह को जान पड़ा किसी वृद्धा का स्वर है।

बालिका ने भरे हुए कण्ठ से उत्तर दिया—"अच्छी हूँ माँ!"

वृद्धा ने मानों गद्गद् कण्ठ से कहा—"कब तक तेरा मुँह देख सकूँगी बेटी?"

बालिका ने आश्वासन पूर्ण स्वर में कहा—"चिन्ता न करो माँ! पिता जी कहते थे अब अधिक विलम्ब नहीं है।" उसका गला रुँध गया। कुछ ठहर कर उसने कहा—"जाती हूँ माँ!

इस समय एक व्यक्ति मेरा पीछा कर रहा है इसलिए अधिक बातें न कर सकूँगी।" शिवसिंह अपना भेद खुलते देख कर चौंक पड़े। उन्होंने उच्च स्वर में पुकार कर कहा—"ठहरो बाले! तुम कौन हो? मैं तुम्हें हानि न पहुँचाऊँगा।" बालिका उनकी ओर ध्यान दिए बिना दक्षिण ओर वाली दीवार के समीप जाकर सहसा अन्तर्द्धान हो गयी।

शिवसिंह हताश होकर उसी उद्यान में लौट आए, जहाँ उन्होंने साधू को छोड़ा था। उन्होंने देखा साधू अब तक निश्चल भाव से उसी चबूतरे पर बैठा हुआ था। एक बार उनकी इच्छा हुई कि चल कर उसे इस घटना का हाल सुना दें। परन्तु फिर उन्होंने विचार किया कि साधू को मेरा यह कपट-व्यवहार अच्छा न लगेगा। उन्हें साधू के समीप जाने का साहस न हुआ। पहले की भाँति एक कुंज के नीचे छिप कर वे उसकी गति-विधि का निरीक्षण करने लगे। कई क्षणों के अनन्तर उन्होंने देखा साधू उठ कर चबूतरे के नीचे लगा हुआ कोई यंत्र घुमाने लगा। वे समझ गए कि साधू कोई द्वार खोलने का प्रयत्न कर रहा है। वे जानते थे कि तिलस्मी द्वार प्रायः भीतर प्रवेश करते ही आप से आप बन्द हो जाया करते हैं। इसलिए वे सरकते हुए चबूतरे के बिलकुल समीप जा पहुँचे और उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

× × × ×

शिवसिंह को साधू के पीछे-पीछे जाते देख कर राजकुमारी चन्द्रावती का हृदय सशंक हो उठा। वह व्यग्रता-पूर्वक शिवसिंह की प्रतीक्षा करने लगी। परन्तु वे बड़ी देर तक न लौटे। राजकुमारी घबरा कर कमरे के बाहर निकल आई और व्याकुलता के साथ सामने वाले बरामदे में टहलने लगी। सहसा एक धड़ाके का शब्द सुनाई दिया। राजकुमारी शब्द के सहारे बिजली की भाँति लपकती हुई उसी उत्तर ओर वाले उद्यान में जा पहुँची। चन्द्रावती ने देखा उद्यान का केन्द्र-भाग धुएँ के गहरे बादलों से छाया हुआ था। किसी अनिष्ट की आशंका से उसका हृदय काँप उठा। कुछ ही क्षणों के अनन्तर उसने किसी को कहते सुना "नासमझ ऐयार! तूने यह क्या किया।"

आवाज़ नीचे से आ रही थी। राजकुमारी ने पहिचाना, उसी साधू की आवाज़ थी।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

सरोजिनी के बाएँ कपोल पर हौले-हौले झूलने वाली अलकों को मानो सँवारने के लिये ऊषा देवी ने मन्द-मन्द मुस्कान के साथ धीरे-धीरे अपने वात्सल्य-अनुरञ्जित सुखद कर फैलाये। परन्तु सरोजिनी की विचार तन्द्रा भंग न हुई। उसे अपनी भूल का ज्ञान न हुआ !

आज उसका मन उद्विग्न था। रात भर उसे भली भाँति नींद भी न आई थी। मन बहलाने के लिए नियमित समय से पहले ही वह अश्वारोहण के वास्ते निकल पड़ी। न जाने किस चिन्ता में डूबी हुई थी कि चलते समय अपनी बिखरी हुई अलकों को सवाँरना भी भूल गई। अपनी ही धुन में भूली हुई वह सूर्योदय से पहले वीरपुर को कई मील पीछे छोड़ आयी। धीरे-धीरे ऊषा देवी ने पक्षियों के कलरव के मिस विश्व को भगवान् भुवन भास्कर के आगमन की सूचना दी।

परन्तु उसकी विचार-तन्द्रा भंग न हुई। उसे परिस्थिति का ज्ञान न हुआ।

उसकी स्वाभाविक बाल चपलता आज उसका साथ छोड़ कर न जाने कहाँ चली गयी थी। आज शायद वह स्वयं अपने आपको न पहिचान रही थी। इन थोड़े ही दिनों के भीतर उसके स्वभाव में यह परिवर्तन कैसे होगया वह स्वयं न जानती थी।

वह नवलसिंह को प्यार करती थी। परन्तु प्यार करना तो उसके लिये कोई नई बात न थी। बचपन से प्यार की सुखद छाया में ही तो वह पली थी!

तब बचपन के उस प्यार और आज के इस प्यार में क्या अन्तर था इसका वह ठीक-ठीक विश्लेषण न कर सकती थी।

तो भी वह यह अनुभव करती थी कि यह प्यार उस प्यार से भिन्न था।

अपनी स्नेहमयी माता को उसने किस दिन से प्यार करना आरम्भ किया? उसे याद न था—तब उसे होश न था।

परन्तु नवलसिंह ने उसके चञ्चल मन को कब अपनी ओर खींच लिया? यह वह बता सकती थी। वह घड़ी, वह क्षण उसे याद था—तब वह पूरे होश में थी।

तो भी इस प्यार का रहस्य वह न जानती थी!

एक पर्वत की टेकड़ी के समीप पहुँच कर उसका घोड़ा

सहसा ठिठक गया। मानो उसने अपनी स्वामिनी से पूछना चाहा, 'अब किधर चलूँ ?'

सरोजिनी की तन्द्रा भंग हुई। उसने चकित होकर चारों ओर देखा। इस स्थान पर वह पहले भी कई बार आ चुकी थी। उसने देखा कि वीरपुर से वह लगभग आठ-दस मील निकल आई है! घोड़े पर बैठे ही बैठे उसने एक अँगड़ाई ली। घोड़े से उतर कर वह धीरे-धीरे टेकड़ी पर चढ़ गयी, और एक शिलाखंड पर बैठ कर प्रकृति की अनुपम छटा में अपने मन को बहलाने का प्रयत्न करने लगी।

सरोजिनी के पिता के पास एक अद्भुत दूर-वीक्षण यंत्र था। इस यंत्र की सहायता से दूर-दूर के दृश्य भी स्पष्ट देखे जा सकते थे। दो-दो तीन-तीन मील की वस्तुएँ इस यंत्र द्वारा देखने वाले को समीप आई हुई-सी जान पड़तीं थीं। सरोजिनी की रुचि देख कर कल ही ठाकुर साहब ने इस यंत्र का प्रयोगात्मक चमत्कार दिखाया था। सरोजिनी इस समय उस यंत्र को अपने साथ लेती आई थी। ऊँचे स्थान पर बैठते ही उसे यंत्र का स्मरण हो आया। कौतूहल वश उसे निकाल कर उसने अपनी दाहिनी आँख के सामने लगा लिया और उसके अग्र भाग में लगे हुए एक चक्र को आगे-पीछे दाहिने-बाएँ घुमा कर टेकड़ी के नीचे खड़े हुए अपने घोड़े को देखने का प्रयत्न करने लगी। कुछ ही क्षणों के अनन्तर सहसा घोड़े का मुँह यंत्र से

बिलकुल लगा हुआ-सा दिखाई देने लगा। सरोजिनी ने यंत्र को आँख के सामने से हटा कर देखा, घोड़ा जहाँ का तहाँ खड़ा था। वह अपनी सफलता पर फूली न समाई। यंत्र को फिर आँख के सामने लगा कर वह दूर-दूर के दृश्य देखने का प्रयत्न करने लगी।

सहसा उसकी दृष्टि पर्वत की ऊँची-ऊँची चट्टानों के बीच से प्रवाहित होने वाली मान्द नदी की निर्मल धारा पर पड़ी। उसने देखा सरिता की प्रशस्त धारा बड़े वेग के साथ गिरि-प्रदेश को पार करती हुई विस्तृत मैदान की ओर अग्रसर हो रही थी। सामने वाली चट्टानों के बीच की भूमि समतल थी। अतएव पर्वत-प्रान्त से बाहर निकलते ही धारा की गति एकाएक मन्द हो गयी थी। सरोजिनी आज से पहले भी इस मनोरम दृश्य को देख चुकी थी, परन्तु आज यंत्र की सहायता से वह धारा के एक बहुत बड़े भाग को एक साथ देख सकती थी। आज उसे इस दृश्य में कोई ऐसा अनोखापन दिखाई दे रहा था जो उसने पहले कभी न देखा था। वह बड़ी देर तक स्थिर दृष्टि से उसी ओर देखती रही।

पर्वत राज निरन्तर उसी गति के साथ अपार जलराशि उगलता जा रहा था। परन्तु उसका अनन्त भण्डार क्षीण होता न दिखाई देता था। सरिता की धारा विशाल शिलाखण्डों से टकरा टकरा कर जगह जगह क्षीर-मन्थन का-सा दृश्य उपस्थित कर रही थी। सरोजिनी आकाश में उड़ने वाली नन्हीं-नन्हीं

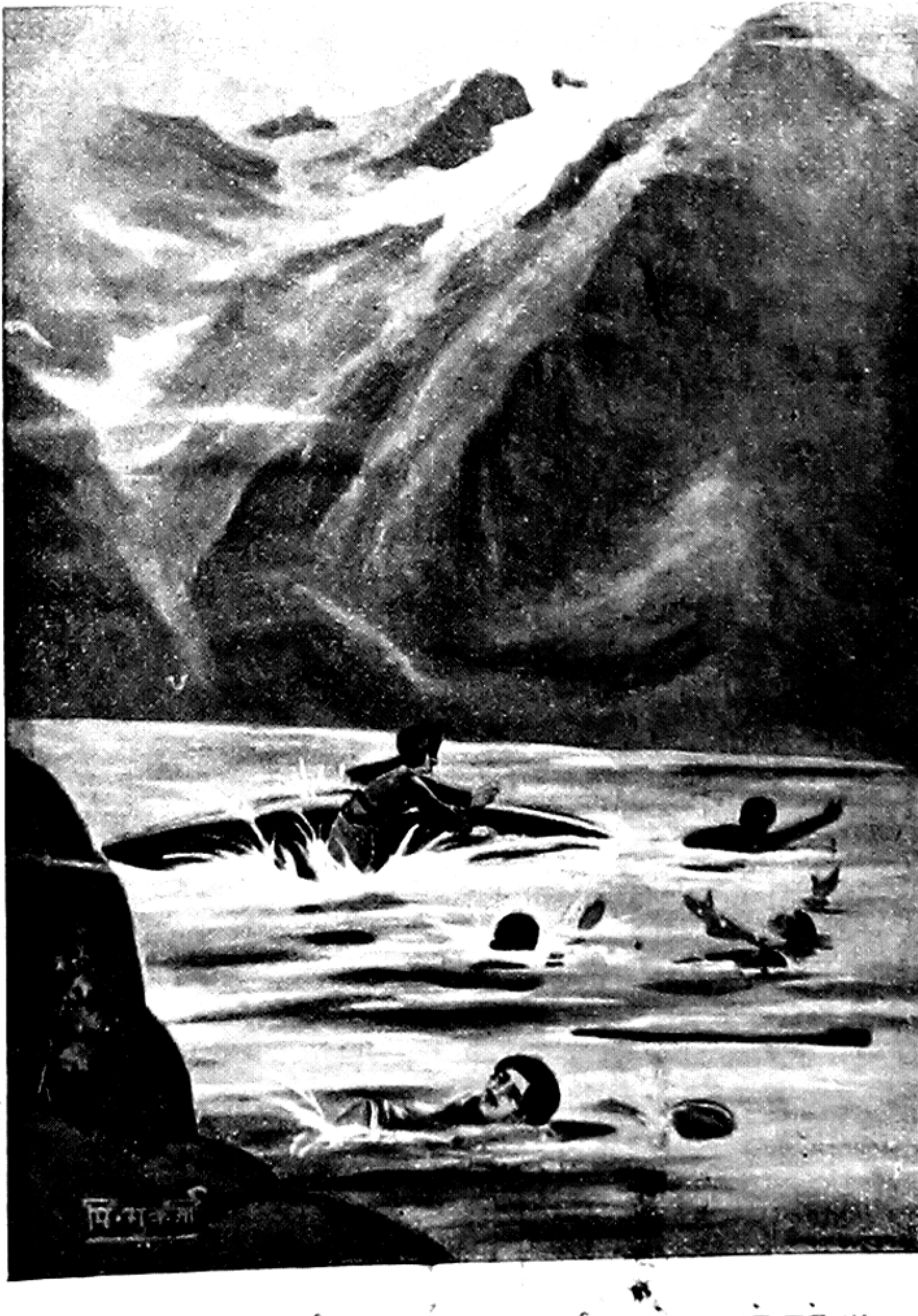
बूँदों को भी देख सकती थी। कुछ क्षणों के लिए वह अपने हृदय की वेदना को भूल गयी।

सहसा चट्टान के पीछे से निकल कर तीन व्यक्ति नदी-तट की ओर अग्रसर होते दिखाई दिये। एक व्यक्ति की पीठ पर एक बहुत बड़ा गट्ठर लदा था। तीनों की पीठ सरोजिनी की ओर थी। सरोजिनी ने देखा नदी-तट पर पहुँच कर उस व्यक्ति ने गट्ठर नीचे रख दिया और प्रवाह-दिशा की ओर मुँह करके ताली बजाने लगा। कुछ देर बाद एक नाविक एक छोटी सी नाव लिए हुए उन लोगों के समीप आ पहुँचा। उस व्यक्ति ने गट्ठर खोल डाला। एक बेसुध व्यक्ति लेटा हुआ दिखाई दिया। उनमें से दो व्यक्ति हाथ का सहारा देकर उसे नाव पर चढ़ाने लगे। इसी समय सरोजिनी की दृष्टि बेसुध व्यक्ति के चेहरे पर पड़ी। उसने पहिचाना—कर्मागढ़-नरेश महाराज कर्णसिंह! उसके कौतूहल की सीमा न रही। दूसरे ही क्षण उन लोगों ने नदी-तट पर खड़े हुए तीसरे व्यक्ति के भी हाथ पकड़ कर नाव पर चढ़ाया। सरोजिनी ने इस व्यक्ति को भी पहिचाना—उसके ही मामा, कर्मागढ़ के प्रधान ऐयार चतुरसिंह! सरोजिनी का हृदय आश्चर्य से भर गया। उसने समझ लिया कि उसके मामा चतुर-सिंह तथा कर्मागढ़-नरेश इन लोगों की क़ैद में हैं। वह चिन्तित हो उठी। परन्तु परिस्थिति पर उसका कोई वश न था। अपनी बेबसी पर पछताती हुई वह चुपचाप सारा दृश्य देखती रही!

नाव यात्रियों को लेकर दूसरे तट की ओर अग्रसर हुई। देखते ही देखते नाव धारा के मध्य भाग में जा पहुँची। अकस्मात् यात्रियों को जल के भीतर न जाने कौन-सी वस्तु दिखाई दी, वे लोग लपक कर नाव के बाएँ किनारे पर आ खड़े हुए और उसी तरफ झुक कर ध्यानपूर्वक जल की ओर देखने लगे। शायद कौतूहल के कारण उन्हें परिस्थिति का ध्यान न रहा। कर्णसिंह भी नाव के उसी भाग में लेटे हुए थे। नाव हलकी थी। चार-चार व्यक्तियों का भार एक ओर पड़ते ही सहसा नाव उलट गयी। क्षण भर बाद यात्री डूबने उतराने लगे।

सरोजिनी घबरा कर उठ खड़ी हुई। घटनास्थल लगभग तीन फर्लाङ्ग पर था। सरोजिनी उछल कर घोड़े की पीठ पर जा बैठी और विद्युद्वेग के साथ नदी-तट की ओर अग्रसर हुई। कुछ ही दूर जाने के बाद उसने एक बार फिर यंत्र लगा कर देखा। कुछ देर पहले उसने जिस चट्टान के पीछे से उन यात्रियों को निकलते देखा था उसी चट्टान के पीछे से निकल कर एक चौथा व्यक्ति नदी-तट की ओर लपकता दिखाई दिया। देखते ही देखते वह चौथा व्यक्ति अपने कपड़े समेट कर नदी में कूद पड़ा। इस समय सारे यात्री प्राण-रक्षा के लिए नदी की प्रबल धारा में अपने हाथ पाँव पटक रहे थे।

नाविक कुशल तैराक था। सरोजिनी ने देखा वह तैरता हुआ तट के समीप तक पहुँच चुका था। शेष यात्री भी अपने



"सहसा नाव उलट गई । क्षण भर बाद यात्री डूबने उतराने लगे ।"

आप को सँभालने का प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु कर्णसिंह का कहीं पता न था। सरोजिनी हैरान थी—कर्णसिंह कहाँ गायब हो गये! उसने सोचा कहीं वे किसी जल-जन्तु के चंगुल में तो नहीं फँस गये!

देखते ही देखते सरोजिनी भी नदी के समीप जा पहुँची। एक चट्टान की ओट से उसने देखा, चतुरसिंह और उनके साथ वाले दोनों अपरिचित व्यक्ति नदी के दूसरे तट पर खड़े थे। उनकी सहायता के लिए कूदने वाला चौथा व्यक्ति तथा नाविक—दोनों नदी में बार-बार डुबकियाँ लगा लगा कर कर्णसिंह को खोज निकालने का प्रयत्न कर रहे थे। चतुरसिंह को निरापद पार होते देख कर सरोजिनी की चिन्ता दूर हुई। एक निराले स्थान में अपने घोड़े को छोड़ कर वह उसी चट्टान की ओर अग्रसर हुई जिसके पीछे से वे लोग कुछ देर पहले निकले थे।

सरोजिनी ने देखा एक विशाल शिलाखंड पर एक बेसुध व्यक्ति लेटा हुआ था। पास ही तीन घोड़े बँधे हुए थे।

सरोजिनी को ध्यान आया, उसने इस व्यक्ति को कमलगढ़ में अपने मामा चतुरसिंह के यहाँ अनेक बार आते-जाते देखा है। उसे यहाँ तक स्मरण था कि मामा चतुरसिंह उसे "सेठ जी" कह कर सम्बोधन किया करते थे। पिछले कई दिनों में विक्रमसिंह, बहादुरसिंह तथा नवलसिंह के मुँह से सुनी हुई घटनाओं के आधार पर उसने अनुमान किया शायद कमलगढ़-नरेश

के मित्र सेठ जमनालाल ही हों! पर वह कुछ स्थिर न कर सकती थी।

शिलाखंड के नीचे ही लकड़ी का एक सन्दूक रक्खा था। सन्दूक खुला था। सरोजिनी कौतूहल वश सन्दूक के भीतर की सामग्रियों को उलटने-पलटने लगी। सहसा उसकी दृष्टि सोने के एक छोटे से बहुमूल्य जड़ाऊ सन्दूक पर पड़ी। वह उसे हाथ में उठा कर देखने लगी। सन्दूक भारी था। एक ओर बीचों बीच एक छोटा सा चित्र बना हुआ था। सरोजिनी इस चित्र को देखते ही चौंक पड़ी। उसने पहिचाना चित्र-लिखित व्यक्ति वही था जिसका एक चित्र उसे भानुपुर के समीप उस दुखिया वृद्धके चले जाने पर मिला था।

उसने सोचा, तब कहीं यह उसी वृद्धा के स्वर्गीय पति भानु-पुर के भूतपूर्व ज़मीन्दार साहब का ही चित्र तो नहीं है? उसे वृद्धा की सारी बातें स्मरण हो आईं। उसने सोने के एक जड़ाऊ सन्दूक की चर्चा की थी जिसमें उनकी सम्पत्ति का दान-पत्र सुरक्षित था। कहीं यह वही सन्दूक़ तो नहीं है?

पर बुढ़िया ने उस चित्र की चर्चा तो न की थी। शायद भूल अथवा संकोच के कारण न कह सकी हो। पर यह यहाँ कैसे आ गया? सम्भव है भानुपुर के सेठ दीनदयाल से इन सेठ जमनालाल का कोई सम्बन्ध हो—सरोजिनी ने कल्पना की।